हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार काव्य में भक्ति
एक
विश्लेषणात्मक अध्ययन

HINDI KRISHNA BHAKTHI KAVYA EVAM ALWAR KAVYA MEIN BHAKTHI : EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis Submitted to

THE COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

Doctor of Philosophy

By

Mrs. N.LAKSHMI *M.A., M.Phil., B.Ed.,*

Supervising Teacher
Dr.R.Sasidharan
Professor, Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi – 682 022

Dr-A.Aravindakshan
Head of the Department
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi – 682 022

DECLARATION

I here by declare that the thesis entitled **HINDI KRISHNA BHAKTHI KAVYA EVAM ALWAR KAVYA MEIN BHAKTHI – EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN** is an original work carried out by me under the supervision of **Dr.R.Sasidharan**, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology. I also declare that no part of this work has hither to been submitted for a degree in any university.

N. Lav

Signature

Kochi – 22

Date : 14.06.04

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **HINDI KRISHNA BHAKTHI KAVYA EVAM ALWAR KAVYA MEIN BHAKTHI – EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN** is bonafide record of research work carried out by Mrs. N.LAKSHMI, Research Scholar, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi-22 under my supervision and that this thesis either in full or in part has not been submitted for Degree in any other University.

Kochi – 22

Date .14.6.04

Dr.R.Sasidharan
Professor
Department of Hindi
CUSAT, Kochi - 22

प्राक्कथन

प्राक्कथन

भारत एक आध्यात्मिक देश है, जहाँ भक्ति का उद्भव अत्यंत प्राचीनकाल में ही हो गया था। धर्म प्राण देश भारत में भक्ति के बीज महात्माओं, दार्शनिकों व भक्त कवियों के द्वारा बोये गये हैं। इनकी विचार वर्षो से भारतीय भक्ति साहित्य आप्लावित हुआ है।

जो भावना यांत्रिकता एवं तनाव से पूर्ण सामाजिक परिस्थितियों से त्रस्त मानव के मन को शांति एवं आह्लाद प्रदान करती है, उसका नाम 'भक्ति' है। स्वार्थ की दलदल में गले तक डूबी हुई भारतीय आत्मा अपने निजत्व को निर्वाचित कर रही है। भक्ति में ऐसी अद्भुत व अप्रतिम शक्ति है जो भारतीयों की इस खोयी हुई अस्मिता को लौटा सकती है। हृदय में शांति उत्पन्न करके रसोद्वेग पैदा करने की अनुपम, असीम शक्ति भक्ति में है। भारतीय भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों के पुनः मंथन के पीछे यही उद्धेश्य रहा है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। विभिन्न परिवेश में विभिन्न व्यक्तियों से उसकी मुलाकत होती रहती है। विभिन्न संदर्भों में मन की स्थिति के अनुसार उनकी भावनाएँ बदलती रहती है। मन की सोच के अनुसार वह अपनी भावनाओं को प्रकट करता आ रहा है। भावनाओं की तीव्रता जब भाषा का रूप धारण कर लेती है तब काव्य का निर्माण होता है, भारतीय काव्य में इस प्रकार की भावनाओं की अधिकता एवं तीव्रता को देखा जा सकता है। कभी वह प्रेम के रूप में, कभी करुणा के रूप में, कभी श्रृंगार के रूप में या कभी भक्ति के रूप में उभर कर ऊपर आ जाता है। हृदय के भावोद्गारों के बिना साहित्य ही नहीं होता।

भगवान के प्रति पवित्र, कामनारहित, असीम, अव्यक्त श्रद्धा के साथ रखनेवाली अनुरक्ति भक्ति कहलाती है। वह पवित्र हृदय एवं असीम अनुराग से जुड़ी रहती है। भक्ति में अपने आराध्य भगवान का गुणगान होता है, मन की

एकाग्रता होती है। भगवान का नाम सदा रहते हुए उस अलौकिक परमात्मा के दिव्य–सौंदर्य को मन में दर्शन करते हुए एकाग्रता से, एकांत में इनका ध्यान करना भक्ति है।

भक्ति साहित्य में तो कवि एक अलौकिक विराट शक्ति की अपूर्व महिमाओं को खुद स्वानुभव द्वारा पहचानकर रहस्यात्मक आनंदानुभूति का अनुभव करके उसका वर्णन करते हैं, जिसमें मधुरता से पूर्ण भक्ति रस का समावेश हो जाता है। इस प्रकार के वर्णन में उनकी भावनाओं का स्रोत उनका हृदय ही है। इन भावनाओं को काव्य रूप देने के बाद आध्यात्मिक प्रगति के लिए जिसे नित्य जीवन के अनुष्ठान हेतु उनके आधार पर शास्त्रों का निर्माण होता है। इसीलिए काव्य के निर्माण के पहले काव्यशास्त्रों का निर्माण होना असंभव है। काव्य के निर्माण के बाद उसे सैद्धांतिक विवेचन करके क्रम करके उनमें चर्चित काव्यांशों को सिद्धांतों के रूप में शास्त्रकार प्रस्तुत करता है। याने व्यवहार पक्ष में जो काव्य आचरण योग्य बन जाता है उसके बाद ही उसका सैद्धांतिक विवेचन होता है। भक्तिशास्त्र भी इसका अपवाद नहीं। भगवान के प्रति भक्तों ने जो अव्यक्त असीम अनुभूतियों का अनुभव किया है, उसे जब शास्त्रीय रूप दिया गया है तभी भक्तिशास्त्रों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार काव्य से ही शास्त्रों का जन्म होता है। इसीलिए जहाँ तक भक्ति साहित्य है, वह पूरा अनुभूतिपरक है। उस विराट पुरुष भगवान के समक्ष भक्त अपना सब कुछ न्यौछावर करके उनके लीलागान में, महिमाओं को देखकर उनसे प्रेरित होकर उनकी याद में तन्मयता से उसके दिव्यदर्शन के लिए तड़पता है, तरसता है, उस परम विराट के तत्वों को प्रकृति में दर्शन करने की चेष्टा में उनके हृदय से याने अंतराल से जो भावानुभूति पैदा होती है वह अकथनीय है, असंप्रेषित है, वह गूँगे का गुड जैसा है। उस आनंद में भक्ति परवशता के कारण उनके मुँह से अनायास से भगवान से संबंधित जो गीत निकलते हैं वहीं अमर चिरस्मरणीय भक्ति साहित्य का आधार है।

यह कोई जरूरी नहीं कि हर एक भक्त का साहित्यकार होना है या हर साहित्यकार भक्त होना है। जहाँ तक हिंदी के कृष्ण भक्त कवि और तमिल के आलवार है सभी लोग पहले भक्त थे, बाद में कवि हुए और सभी लोग अच्छे गायक भी।

अपने उपास्य के प्रति इन्होंने भक्ति की तन्मयता में भावना के साथ संगीत ध्वनियों को जैसे राग, ताल, लय बद्ध करके जो गीत गाये थे, वही भक्ति एवं गीत का अनमोल संगम है, उनमें भक्त का रूप, कवि का रूप, गायक का रूप तीनों का सम्मिश्रण होता है जो सोने में सुहाग जैसा। ऐसे महान विभूतियाँ हैं हिंदी के कृष्ण भक्त कवि और तमिल के आलवार, जो पूर्ण रूपेण गीतिकार भी थे साहित्यकार भी। इसी वज़ह से इनकी भक्ति में शब्दोपासना एवं नादोपासना दोनों का अनुपम संगम मिलता है। इनका साहित्य जन सुलभ जनरंजक आह्लाद जनक साहित्य रहा। इन्होंने प्रेमाभक्ति के सिवा किसी और पर बल नहीं दिया। उनकी भक्ति में कर्मकाण्ड, विधि–निषेध, जाति–पाँति भेदभाव अमान्य है। पवित्र मन से, प्रेम से भगवद्ध्यान करना तद्द्वारा उनकी कृपा का पात्र होना उनका ध्येय रहा।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में प्रमुख कवियों ने भक्ति पर केन्द्रित रचनाएँ रची है। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई इस समय के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचनाएँ ईश्वर तथा भक्ति से संबंधित हैं। तमिल साहित्य के अंतर्गत आलवारों ने भक्ति से संबंधित कई रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जो अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। कृष्ण–भक्ति को विषय बनाकर हिंदी के भक्तकवि तथा तमिल के आलवार कवियों ने जो रचनाएँ की हैं उनमें भक्तिशास्त्र के महत्वपूर्ण विषय जैसे भक्ति के स्वरूप, भक्ति के भेद, उसका महत्व, भक्तिसाधनाएँ की उक्तियाँ मिलती है। उत्तर और दक्षिण के इन कवियों की भक्तिपरक रचनाओं में भक्तिशास्त्र के आधार पर कई समानताएँ देखी जा सकती है।

भक्तिशास्त्र के अंतर्गत नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्तिसूत्र, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, भक्ति रसामृत सिन्धु आदि का नाम गिनाया जा सकता है। इन में बताये गये तत्वों के दर्शन हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों के एवं तमिल के आलवारों के काव्य में देखा मिलते हैं। इसको उद्घाटित करना ही प्रस्तुत शोध प्रबंध का उद्देश्य रहा है।

यों तो हिंदी भक्तिसाहित्य को आधार बनाकर हिंदी में अनेक शोध प्रबंध तैयार किये गये हैं। इनमें हिंदी कृष्ण भक्त कवि और आलवारों के साहित्य पर केन्द्रित डॉ.मलिक मुहम्मद का शोध प्रबंध, आलवार भक्तों का तमिल प्रबंधम् और हिंदी कृष्ण–काव्य उल्लेखनीय हैं। इसमें सामान्य रूप से हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल आलवारों के ग्रन्थों के अध्ययन के साथ–साथ भक्ति का भी विश्लेषण हुआ है, लेकिन भक्ति शास्त्र को आधार बनाकर भक्ति के शास्त्रीय विवेचन का उसमें भी अभाव देखा जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यह शोध प्रबंध तैयार किया गया है। 'हिंदी के कृष्ण भक्ति कवि एवं तमिल आलवारों के द्वारा प्रकटित भक्ति को भक्तिशास्त्रों के संदर्भ में देखा गया है।

पूरा शोध प्रबंध 6 अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय का शीर्षक है "भक्ति का स्वरूप"। इसमें भक्ति एवं उसके सामान्य स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत भक्ति के स्रोत ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र, अष्टादशपुराण, पांचरात्र, भागवत आदि में वर्णित भक्ति की चर्चा भी की गयी है। भक्ति के स्वरूप एवं विश्लेषण के साथ–साथ भक्ति के प्रकार एवं भक्ति साधनाओं का वर्णन इन ग्रंथों के आधार पर किया गया है।

दूसरे अध्याय है 'हिंदी और तमिल के कृष्णभक्त कवि'। इस में हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर ध्यान केन्द्रित किया

बाई जी अवकाश प्राप्त हो चुकी थी। इसके बाद इस प्रबंध की पुनः प्रस्तुति के लिए आवश्यक सुझाव और निर्देशन डॉ.आर.शशिधर ने किया था। उनके प्रति भी अत्यंत आभारी हूँ। विश्वविद्यालय के प्रभारी कुलसचिव मानविकी संकाय अध्यक्ष और विभाग के वर्तमान अध्यक्ष ए.आचार्य डॉ.अरविन्दाक्षन ने हौसला बढ़ाया था, मेरी मदद की थी उनके प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ। विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने समय समय पर मेरी मदद की है।

मेरे पिताजी की इच्छा थी कि मैं पीएच.डी उपाधि प्राप्त कर लूं। लेकिन उनके जीवनकाल में मैं उनकी इच्छा को पूरा न कर सकी। उनका निधन मेरे जीवन का सबसे बड़ा धक्का रहा उनके प्रति मेरी जो संवेदना है, उसे शब्दों में अंकित करना मुश्किल है। उनकी इच्छा को पूरा न कर पानेवाली यह अभागिन उनकी याद में नतमस्तक होकर यह शोध–प्रबंध पुनः प्रस्तुत कर रही है। यह शोध कृष्ण भक्ति से संबंधित होने के कारण यह अश्रु सहित उन्हें समर्पित है।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के कुलसचिव, डॉ.पी.एच.सेतुमाधव रावजी, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के पूज्य गुरुगण डॉ.चेलरजी, डॉ.चंद्रशेखर रेड्डीजी के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने शोध संबंधी संदेहों की निवृत्ति करके मुझे प्रेरणा दी। मेरी माँ जिन्होंने पग पग पर मेरी मदद की उन्हें हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा–आन्ध्र, हैदराबाद के माननीय सचिव श्री शीर्ल धनंजयुडुजी, सभा के प्रबंधक श्री पांडुरंगारावजी एवं लिपिक श्री नागेश्वर रावजी को भी मैं आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने सही समय पर टंकण करके मेरी मदद की।

N. La

एन.लक्ष्मी

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार काव्य में भक्ति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन

अध्याय – एक 1 – 59

भक्ति का स्वरूप

प्रस्तावना

भक्ति की व्याख्या

1. वेदों में भक्ति
2. उपनिषदों में भक्ति
3. पुराणों में भक्ति
4. श्रीमद् भागवत में भक्ति
5. भगवद्गीता में भक्ति
6. भक्ति सूत्रों में भक्ति
   - क. नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति
   - ख. शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति
   - ग. भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति
7. विभिन्न मुनियों की भक्ति की परिभाषाएँ
8. भक्ति के लक्षण
9. नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति के लक्षण

10. शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति के लक्षण
11 भक्ति के भेद
12. भक्ति के साधन
13. भक्तों के भेद
निष्कर्ष

अध्याय – दो 60 – 129

हिंदी और तमिल के कृष्ण भक्त कवि

प्रस्तावना

1. प्राचीन हिंदी साहित्य में कृष्ण चरित
2. मध्यकालीन हिंदी कृष्ण भक्त कवि
3. अष्टछाप के कवियों का प्रेरणास्रोत : पुष्टि–मार्ग
4. अष्टछाप के कवि
4.1. अष्टछाप के प्रमुख कवि : सूरदास
4.2. अष्टछाप के अन्य कवि
5. मुसलमान कृष्ण भक्त कवि : रसखान
6. संप्रदाय निरपेक्ष भक्त कवयित्री : मीराबाई
7. मध्यकाल के अन्य कृष्ण भक्त कवि और उनका काव्य
8. तमिल में कृष्ण भक्ति साहित्य
9 तमिल में आलवार पूर्ववर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य
10. आलवार और उनकी रचनाएँ
निष्कर्ष

अध्याय – तीन 130–189

हिन्दी और तमिल के कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में भक्ति का स्वरूप

प्रस्तावना

1. **हिन्दी के कृष्ण** काव्य एवं तमिल के आलवारों के पाशूरों में "सगुण भक्ति"
2. हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में "अवतारवाद"
3. हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में 'श्रीकृष्ण के रूपसौंदर्य और पराक्रम'
4. कृष्ण काव्य में पराभक्ति का स्वरूप
5. **हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में 'भक्ति की अनुभूतियाँ' :**

    5. (1) भक्ति अनिर्वचनीय है।

    5 (2) भक्ति प्रेम स्वरूपा है।

    5 (3) भक्ति में अनन्यता है।

    5 (4) भक्ति में समर्पण है।

    5 (5) भक्ति में अविस्मृति है।

    5 (6) भक्ति उपास्य सुखापेक्षी है।

    5 (7) भक्ति में निष्कामना है।

    5 (8) भक्ति में समदर्शिता है।

    5 (9) भक्ति में शांति हैं, परमानंद है।

    5 (10) भक्ति अमृत स्वरूपा है।

निष्कर्ष

<u>अध्याय – चार</u> 190–269

<u>हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार काव्य में चित्रित भक्ति के विविध रूप</u>

प्रस्तावना

1. भगवद्गीता में वर्णित भक्ति के विविध रूप

(गुणों के आधार पर)

1.1. आर्त

1.2. अर्थार्थी

1.3. जिज्ञासु

1.4. ज्ञानी

2. भागवत् में वर्णित भक्ति के विविध रूप (गुणों के अनुसार)

2.1. तामस भक्त

2.2. राजस भक्त

2.3. सात्विक भक्त

3. आलंबन के आधार पर भक्ति के विविध रूप

3.1. निर्गुण भक्ति

3.2. सगुण भक्ति

4. साधन भेद के आधार पर भक्ति के विविध रूप

4.1. वैधी भक्ति

4.2. रागानुगाभक्ति

5. स्तर की दृष्टि से भक्ति के विविध रूप

5.1. गौणी भक्ति

5.2. पराभक्ति

6. नारद एवं शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में भक्ति के विविध रूप

नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित एकादश भक्ति या
पराभक्ति के भेद

7.1. गुणमाहात्म्यासक्ति

7.2. रूपासक्ति

7.3. पूजासक्ति

7.4. स्मरणासक्ति

7.5. दास्यासक्ति

7.6. सख्यासक्ति

7.7. वात्सल्यासक्ति

7.8. कांतासक्ति

7.9. आत्मनिवेदनासक्ति

7.10. तन्मयतासक्ति

7.11. परमविरहासक्ति

8. हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार पाशुरों में 'नवधाभक्ति'

8.1. श्रवण

8.2. कीर्तन

8.3. स्मरण

8.4. पदसेवन

8.5. वंदन

8.6. अर्चन

8.7. दास्य

8.8. सख्य

8.9. आत्मनिवेदन

निष्कर्ष

अध्याय – पाँच 270–302

हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं नालायिर दिव्य प्रबंधम् में चित्रित भक्ति के साधन

प्रस्तावना

1. साधन का महत्व

2. भक्ति शास्त्रों में वर्णित भक्ति के साधन

2.1. विषय भोग और विषयासक्ति का त्याग
हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में विषय भोग विषयासक्ति का त्याग

2.2. दुस्संग का त्याग
हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में दुस्संग का त्याग

2.3. सत्संगति का महत्व
हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में सत्संगति का महत्व

2.4. निरंतर भजन
हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में निरंतर भजन का महत्व

2.5. गुरु महिमा
हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में गुरु महिमा

निष्कर्ष

उपसंहार 303–316

संदर्भ ग्रंथ सूची 317–321

अध्याय – एक

अध्याय – एक

भक्ति का स्वरूप

प्रस्तावना

भक्ति की व्याख्या

1. वेदों में भक्ति
2. उपनिषदों में भक्ति
3. पुराणों में भक्ति
4. श्रीमद् भागवत में भक्ति
5. भगवद्गीता में भक्ति
6. भक्ति सूत्रों में भक्ति

   क. नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति

   ख. शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति

   ग. भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति

7. विभिन्न मुनियों की भक्ति की परिभाषाएँ
8. भक्ति के लक्षण
9. नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति के लक्षण
10. शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति के लक्षण
11 भक्ति के भेद
12. भक्ति के साधन
13. भक्तों के भेद

निष्कर्ष

अध्याय – एक

भक्ति का स्वरूप

प्रस्तावनाः–

भक्ति यानि भगवान के प्रति परा अनुरक्ति अथवा भगवत् प्रेम की भावना प्राचीन काल से मानव मन को आप्नवित करती आ रही है। जिस दिन मानव मन ने इस संसार की नियामक शक्ति या शक्तियों से भय करने के स्थान पर प्रेम करना सीखा उसी दिन उसमें भक्ति भाव का बीजारोपण हुआ, जो निरन्तर फलता–फूलता गया। क्रमशः यह विदिन होने लगा कि अलग–अलग प्रतीत होनेवाली शक्तियाँ वास्तव में एक ही महाशक्ति के विविध रूप है। भक्ति के मूल में श्रद्धा और प्रेम का समन्वित अस्तित्व है। उस परम तत्व को सत्, चित् आनंद स्वरूप मानकर, कर्म को सत् से, ज्ञान को चित् से और भक्ति को आनंद से जोडा गया।

भारतीय साधना पद्धति में भक्ति का बडा महत्व है और आरंभ से ही यहाँ भक्ति साहित्य प्राचुर्य रहा है। दक्षिण की भाषाओं में विशेषतया तमिल में भक्ति भावना का प्राबल्य अपेक्षाकृत अधिक रहा है और वहॉ का भक्ति साहित्य के इतिहास में सामान्यतया छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का समय भक्ति काल के नाम से प्रसिद्ध है। इसी काल में प्रसिद्ध वैष्णव भक्ति के कवि आलवार और शैव भक्ति के कवि नायन्मार हुए। इस काल में तमिल में जिस साहित्य का निर्माण हुआ, वह पूर्णतया भक्ति साहित्य है। इस युग की कविताओं में भक्ति ही प्रमुख रही है। इसी प्रकार हिंदी साहित्य का पूर्व मध्यकाल भक्तिकाल नाम से प्रसिद्ध है। हिंदी भक्ति साहित्य में भी भक्ति का स्वर काफी मुखर है। इसलिए दोनों साहित्य में अभिव्यक्त भक्ति के स्वरूप के अध्ययन का काफी महत्व है। इन दोनों में अभिव्यक्त भक्ति के स्वरूप के अध्ययन के पहले यह देखना समीचीन होगा कि भक्ति का स्वरूप क्या है?

भक्ति की व्याख्याः–

भारत देश अपनी उज्जवल संस्कृति के लिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं, जिसमें भक्ति का स्थान सर्वोपरि है। भक्ति के उद्भव एवं इतिहास का वर्णन करना बहुत कठिन है क्योंकि वह अत्यंत प्राचीन धर्म भारत के सनातन धर्म से जुडी हुई है। भक्ति के स्वरूप को जानने के लिए वेद, पुराण भक्ति शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ जैसे "नारद भक्ति सूत्र", "शांडिल्य भक्ति सूत्र" "भक्ति रसामृत सिन्धु", "भागवत" भगवद्गीता आदि में भक्ति की चर्चा कैसी की जाती है इसका अध्ययन करना आवश्यक है। इन "ग्रन्थों" के आधार पर भक्ति के स्वरूप एवं लक्षण निर्धारित किये जाते हैं।

भगवान के प्रति दिखानेवाले अव्यक्त अटूट, असीम, अचंचल, निष्कलंक प्रेम ही भक्ति है। "भक्ति" शब्द का कोशगत अर्थ है "सेवा, सुश्रुषा, पूजा, अर्चन आदि। "भज" के साथ "क्ति" प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द उत्पन्न हुआ है। भजनं भक्तिः ऐसी भी व्याख्या की जाती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भक्ति का अर्थ है भगवद् सेवा। अर्थात् भगवान के प्रति अनन्य प्रेम रखना, भगवान के सान्निध्य की मनोकामना के साथ उनके प्रति पवित्र प्रेम रखना ही भक्ति है।

1. वेदों में भक्तिः–

भगवान के प्रति विनय और आदर की भावना रखना सभी आस्तिकों का विशेष कार्य है। इसी आधार शिला पर ही भक्ति का विशाल भवन खडा है। भक्ति का स्रोता सबसे पहले वैदिक साहित्य में ही दिखाई देता है। वेद ही वह प्राचीनतम साधन है जिससे आर्यों की सबसे पुरानी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दशा का ज्ञान हो जाता है और धार्मिक तथा दार्शिनिक तत्वों पर प्रकाश पड़ता है। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सब वेदान्त के नाना मत है।(1) इस प्रकार भक्ति के सारे सम्प्रदायों की नींव वेद ही सिद्ध होता है। भारतीय इस

जगत् के मूल में एक महनीय शक्ति की सत्ता को स्वीकार करते है, तो महाभाग्य से महनीय ऐश्वर्य से सम्पन्न है और उसी की यहाँ विशिष्ट प्रकार से स्तुति की जाती है।(2) उसी महान एकात्मक सत्ता की उपासना ऋग्वेदी लोग "उक्थ" में अर्ध्वयु लोग अग्नि में तथा समावेदी लोग "महाव्रत" नामक याग में किया करते है। (3) वेदों में अनुरागसूचक भक्ति का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्म निवेदन, अभिलाषा आदि अंगों के संकेत कई वैदिक मंत्रों में प्राप्त होते है।(4) विष्णु या रुद्र का आधुनिक रूप वेदों में नहीं मिलता। ऋग्वेद में विष्णु और रुद्र के बारे में कई सूत्र मिलते है। (5) उपनिषद काल में आकर भक्ति का रूप – विकास अवश्य मिलता है।(6)

<u>ऋग्वेद में भक्तिः</u>–

ऋग्वेद में भक्ति का महत्व भगवान के रूप, गुण महिमा का वर्णन विस्तार रूप से मिलते है। भगवान विष्णु के लिए प्रधानता दी गयी ऋचाओं में इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक नामों से भगवान की स्तुति की गयी है। ऋग्वेद में विष्णु का निवास भक्तों का हृदय बताया गया है।(7) ऋचा 23,24 में विष्णु को अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाला, भवसागर को पार करानेवाले के रूप में स्तुति की गयी है और विष्णु को भक्तों को ज्ञान प्रदान करनेवाले के रूप में चित्रित किया गया है। भक्ति की विशेषता एवं महाविष्णु से भक्ति करने से लाभ भी बताया गया है। (8)

ऋग्वेद के षष्टम सूक्त, अष्टम सूक्त में विष्णु के परब्रह्म तत्व का प्रतिपादन और अन्य सभी ऋचाओं में सर्वत्र विष्णु महिमा (9) गायी गयी है। इनके अलावा चार वेदों में विष्णु का उल्लेख (10) और सभी वेदों में वर्णित विष्णुतत्व (11) का वर्ण इस प्रकार मिलता है।

<u>चार वेदों में विष्णु का उल्लेख</u>: ऋग्वेद में एक एक ऋचा में चार वेदों में वर्णित विष्णु तत्व का प्रतिपादन किया गया है।

"गायन्तित्वा गायत्रिणोर्चन्त्यर्कमर्किणः
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशामिव येमिरे (12)

सभी वेदों में विष्णु तत्व का वर्णन इस प्रकार ऋग्वेद में मिलता है। "हे महाविष्णु तुम ज्ञानसंपन्न हो। सामवेदाध्ययन करनेवाले गायत्री के माध्यम से ऋग्वेद विद्ग्गण ऋचाओं के माध्यम से, यजुर्वेदाध्येत ब्रह्म तुम्हें ऊर्ध्व इन्द्रध्वज की तरह तुम्हारे गुणगान कर रहे है।"

विष्णु की श्रेष्ठता का वर्णन ऋग्वेद में मिलने के साथ–साथ शंकर, देवेन्द्र लक्ष्मी–वसुंधरा द्वारा की गयी विष्णु वंदना का विवरण भी है।(13)

ऋग्वेद में भक्ति का बोध एक परमतत्व के रूप के माध्यम से होता है। ऋग्वेद संहिता के अनुसार संसार में किसी का भी अस्तित्व न था। दिन–रात, भाव–अभाव जीवन–मौत का एकाकार रूप था। तब तप की अंतर्मयी शक्ति से वह एक (14) एकंतत्–परमतत्व प्रकट हो गया। उस एकंतत् तत्व से देवगण, पैदा हुए। उस परमतत्व को ही ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है। वह मानव का परम आश्रय (15) मृत्य एवं अमरत्व का दाता है। इसी का उल्लेख ज्यों का त्यों अथर्ववेद में भी मिलता है। यजुर्वेद में उस सर्वव्यापक, विराट परमात्मा जो अनेक नामधारी को सब का भाई, जनक पोषक के रूप में बताया गया है। (16) वह विराट् परमात्मा जो पंचभूतों, लोक–लोकांतरों, समस्तप्राणियों में विराजमान है, उसे उपासना करके ज्ञानी आत्मस्वरूप से उसमें प्रविष्ट होते है, (17) भक्ति साहित्य का आधार भी यहीं है। ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय, भक्ति साहित्य के सभी महत्वपूर्ण सिद्धान्त यजुर्वेद संहिता (18) में मिलते हैं।

समावेद तो भक्तिमय गीतों से पूर्ण रचना है।

2. उपनिषदों में भक्तिः–

वेदान्त विषयों का सार उपनिषदों में ज्ञान और तप की प्रधानता का वर्णन मिलता है। उनमें भक्ति बीज रूप में मिलती है। उपनिषदों में ब्रह्म को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनंदमय देखने का भाव मिलता है। अन्नोपसाना की पद्धति से ब्रह्म की भावना विष्णु रूप से प्रतिष्ठित हुई हैं। उपनिषदों में वर्णित अनेक कथाओं में ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त रूपों की व्याख्या की गयी और उसे दोंनों से परे बताया है। उपनिषदों में भक्ति की महिमाएँ परमेश्वर की शरण में जाने के लिए आवश्यक साधन, कामना रहित निष्काम भावना से करनेवाली भक्ति आदि का वर्णन मिलता है। ईश्येवास्योपनिषद में संपूर्ण प्राणियों में भगवद्रूप देखनेवाले को श्रेष्ठव्यक्ति कहा गया है। (19) भक्ति के साधक याने भक्तों के संदर्भ में कहा गया है "इन्द्रियों को वश में रखनेवाला संसार से पार होकर परमेश्वर के परम पद को पाता है। (20)

मुण्डकोपनिषद में विश्वव्यापी परमेश्वर का वर्णन (21) "निष्काम भाव से सेवा करने से परमात्मा के ब्रह्मधाम तक भक्त पहुँच जाता है। "सिद्धांत का प्रतिपादन(22) भक्ति की महिमाएँ (23) भक्ति की साधनाएँ (24) आदि का सविस्तार वर्णन मिलते है। प्रश्नोपनिषद में भक्ति से संबंधित विषयों का वर्णन इस प्रकार है– "जो मनुष्य उस अविनाशी परमेश्वर को जान लेता है वह सर्वज्ञ जोता है, परमेश्वर में लीन हो जाता है। उसी परमेश्वर में सर्व प्राण, पंचभूत, सभी इन्द्रियों और विज्ञानत्मा आश्रित है।(25) श्वेताश्वतर उपनिषद में भक्ति युक्त उपासना की प्रधानता दी गयी। इसमें ब्रह्म के लिए भगवान शब्द का प्रयोग किया गया हैं। उनके अनुसार भगवान संपूर्ण जीवों के अंतःकरण में स्थित व्यापी है। (26) यह पराभक्ति का महत्व सूचित करनेवाला उपनिषद है, (27) इसी उपनिषद में "मुमुक्षैव शरण महं प्रपद्ये" कहकर शरणागति भाव की ओर संकेत किया गया है।(28)

इस प्रकार भारत के प्राचीनतम साहित्यकाल वैदककाल में ब्रह्म की निराकार भावना उत्पन्न हो चुकी थी। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में ईश्वर को विराट

पुरुष के रूप में, जिनका नाम इन्द्र, वरुण, अग्नि इन सब को विष्णुस्वरूप बताया गया, बाद के ब्राह्मण ग्रन्थों में उस पुरुष को "नारायण" बताया गया है।

3. पुराणों में भक्तिः–

पुराणों को वेदज्ञान में सहायक के रूप में बताया गया है। पुराणों की संख्या अठारह बतायी गयी है। पुराण ईश्वर प्रेम में ओतप्रोत भक्ति के महत्व को बतलानेवाले है। पुराणों में भक्ति मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा है। पुराणों में वेदों के सार की व्याख्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। महाभारत तक की घटनाओं का वर्णन पुराणों में मिलता है, जिससे उसकी प्राचीनता का पता लगना कठिन है। पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति एवं गणेश आदि देवताओं के कीर्तन एवं महिमाएँ सबंधी कथाएँ है। सभी पुराणों में पंचदेवोपासना (विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति) की प्रधानता है।

महाभारत काल तक विष्णु नारायण में परिणत हो गया। (29) गीता में ज्ञान कर्म, भक्ति और संन्यास की चर्चा आयी है। महाभारत के बाद पुराणों में, विशेष रूप से ब्रह्मवैवर्त, पद्म, विष्णु, भागवत पुराणों में विष्णु, शैवपुराण में शिव और शक्त पुराण में शक्ति की उपासना का विस्तृत विकास हुआ है। वास्तव में पुराणों में भक्ति का पूर्ण उदय और विकास नहीं हुआ। उसमें भक्ति की प्राचीन परम्परा का रूप ही मिला। (30)

ब्रह्मपुराणः–

इसमें विस्तार पूर्वक श्रीकृष्ण की कथा दी गयी है। कृष्ण की स्नान–विधि एवं स्नान महात्म्य (31) विष्णुलोकवर्णन (32) कृष्णाचरितारंभ एवं कृष्ण से संबंधित अनेक कथाएँ (33) श्री विष्णु के अवतारों का वर्णन (34) आदि मिलते है। इस पुराण के पैंतीस अध्याय श्रीकृष्ण भक्तिरस से पूर्ण है।

विष्णु पुराण

इसमें श्रीकृष्ण के जन्म का एवं उनकी लीलाओं का वर्णन है। (35)

श्रीमद्भागवत पुराणः–

वैष्णव संप्रदाय के सभी आचार्यों के आधार महापुराण है जो भक्ति एवं ज्ञान से पूर्ण हैं। श्रीकृष्ण की लीलाएँ, महिमाएँ श्रीकृष्ण भक्ति के महत्व आदि के विस्तारपूर्वक वर्णन मिलते है। यह पुराण आदि से अंत तक कृष्ण भक्ति रस का भण्डार है। विशेषतः इसके दशम स्कंध में श्रीकृष्ण की बाल्यलीलाओं के मनोरम वर्णन मिलते हैं, जिसके आधार पर अनेक वैष्णवाचार्यों ने अपने भक्तिमार्ग के सिद्धान्तों का प्रचार किया। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग का आधार भी यहीं है।

अग्निपुराणः–

इसके 12 वें अध्याय में श्रीकृष्ण महात्मय का वर्णन मिलता है।

ब्रह्म वैवर्त पुराणः–

इसमें भी विष्णु की महिमा का प्रतिपादन मिलता है। इसके ब्रह्मखण्ड में श्रीकृष्ण को परमात्मा और समस्त जगत का कारण माना गया है। कृष्ण–जन्म खण्ड में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है।

वराह पुराणः–

इसमें भगवद्गीता का महात्म्य वेंकटगिरि का माहात्मय वर्णित किया गया है, जो आगे चलकर तमिल वैष्णव कवियों (आऴ्वारों) द्वारा वर्णित श्रीमहाविष्णु के निवास (तिरुमल) याने वेंकटगिरि महिमा के लिए आधार बन गया है।

मार्कण्डेय पुराणः–

इसमें श्रीकृष्ण की लीलाएँ यत्र–तत्र मिलती है।

कूर्म पुराणः–

इसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है।

गरुड पुराणः–

इसके आचार कांड में श्रीकृष्ण की आठ पत्नियों का उल्लेख, गोपियों का उल्लेख मिलता है। इसके साथ विष्णुधर्मोत्तर, वेंकटगिरि माहात्म्य आदि के वर्णन मिलते है।

ब्रह्माण्ड पुराणः–

इसके बीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण के आविर्भाव एवं उनसे संबंधित कथाओं का समावेश है।

देवी पुराणः–

इसके चतुर्थ स्कंथ में भी श्रीकृष्ण की कथा आयी है।

हरिवंश पुराणः–

इसमें विस्तारपूर्वक विष्णु भगवान का चरित श्रीकृष्ण की कथा तथा ब्रज आदि में की गयी उनकी लीलाओं का मनोहर वर्णन मिलता है। विष्णु से संबंधित कहानियाँ विस्तार रूप से वर्णित हैं। इसके 35 वे अध्याय में श्रीकृष्ण जन्म वर्णन है। इसकी गणना उप–पुराण के अंतर्गत ही की जाती है।

पुराणों में भगवान विष्णु के अवतारों को महत्व दिया गया है। विष्णु के ब्रह्मरूप लीलाकारी भगवद्रूप, विष्णु भक्ति का व्यावहारिक पक्ष का वर्णन विस्तार रूप से प्राप्त है, विष्णु भक्ति से ओतप्रोत एवं पुराणों के अंतर्गत विष्णु भक्ति प्रधान पुराण की दृष्टि से भागवत पुराण का स्थान सबसे ऊँचा है। दूसरा स्थान विष्णु पुराण का है जहाँ वैष्णव सिद्धान्तों के मूल तत्व वर्णित है, जो आगे चलकर

वैष्णव पुराण को है जो वैष्णव आचार्यों का मार्गदर्शी बन गया है। भगवान् विष्णु के अवतारों में प्रमुख अवतार श्रीकृष्णावतार है। श्रीमद्भागवत कृष्ण भक्ति का परमोत्कर्ष है। विशेषतः इसके दशमस्कंध में वर्णित श्रीकृष्ण लीलाएँ भक्ति रस से कूटकूटकर भरी हुई है।

इस प्रकार पुराणों के मुख्य ध्येय भक्ति रहा। सभी पुराणों में भगवान के गुण, माहात्म्य का वर्णन प्राप्त है। भक्ति साहित्य की वृद्धि का हर महत्व पूर्ण अंग है पुराण।

4. श्रीमद्भागवत में भक्तिः–

इसमें वर्णित पवित्र निष्काम भक्ति का आश्रय भगवान श्रीकृष्ण है। भागवत एक अलौकिक ग्रन्थ है जहॉ कृष्ण भक्ति रस यथेष्ट रूप से प्रवाहित हुआ है। भागवत के रचनाकार को लेकर विद्वानों के कई मतभेद है। लेकिन प्राप्त प्रमाणों से कहा जा सकता है कि इसकी रचना महर्षि वेदव्यास ने की। वेदव्यास ने उसे अपने पुत्र श्रीशुक महर्षि को पढाया, जिन्होंने मृत्यु मुख पर बैठे महाराजा परीक्षित को सुनाया। (36) श्रीमद् भागवत आदि से अंत तक श्रीकृष्ण भगवान के महत्व से संबंधित एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। भागवत में भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया गया है –

सवै पुंसा परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता ययऽऽत्मा संप्रसीदति।। 1–2–6

भगवान पर भक्ति होना ही मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है, भक्ति भी निष्काम हो और निरंतर रहनेवाली हो। उस प्रकार की भक्ति से हृदय आनंद स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके सफल हो जाता है। यहॉ भगवान से मतलब श्रीकृष्ण से है। श्रीमद्भागवत में विशुद्ध भक्ति, नवधाभक्ति प्रेमाभक्ति का निरूपण मिलता है। श्रीमद्भागवत का ग्यारहवाँ स्कंध तो श्रीकृष्ण भक्ति रस से पूर्ण है।

भागवत में श्रीकृष्ण का कथन उद्धव से भक्ति एवं भक्त के महत्व को स्पष्ट करते है। (37)

श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं "मेरी बढ़ी हुई भक्ति जिस प्रकार मुझ को सहज ही प्राप्त करा सकती है उस प्रकार न तो योग, न ज्ञान, न धर्म न वेदों का स्वास्थ्य न तप और न ध्यान ही करा सकता है। मैं सन्तों का प्रिय आत्मा हूँ, एक मात्र श्रद्धा संपन्न भक्ति से ही मेरी प्राप्ति सुलभ है। मेरे प्रेम से जब तक शरीर पुलकित नहीं हो जाता, हृदय द्रवित होकर आनंद के अश्रुओं की झडी नहीं लग जाती तब तक ऐसी मेरी भक्ति के बिना अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता है? भक्ति के आवेश में वाणी गद्‌गद होकर चित्त द्रवित हो कभी रोता है, जो कभी हॅसता है, जो कभी बिना संकोच के उच्च स्वर से गुणगान करते हुए नृत्य करता है ऐसा मेरा भक्त स्वयं पवित्र हैं, वह तीनों लोकों को पवित्र कर देता है। जिस प्रकार अग्नि से तपाये जाने पर सोना शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार मेरे भक्ति योग के द्वारा आत्मा भी कर्मवासना से मुक्त होकर मुझे (श्रीकृष्ण) प्राप्त कर लेता है। (38) स्वयं भगवान श्रीकृष्ण का कहना है कि वह सदा भक्तों के पीछे फिरते रहते है और उनकी चरण–रज से पवित्र होता है(39) और अपने को भक्तों के अधीन कहता है। (40)

भक्त के सामने भगवान अपने को भी कम मानते है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं "अपने भक्तों का एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ, इसीलिए भक्तों के सिवा मुझे कुछ भी प्यार से नहीं लगता। न अपने आप को चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धांगिनी विनाश रहित लक्ष्मी को .... मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तों का हृदय स्वयं मैं हूँ।" (41)

गीता में भी कृष्ण भगवान इसे स्पष्ट करते हैं कि सर्व भूतों के हृदय में वे रहते हैं –

"अहमात्मा गुढ़ाकेशः सर्वभूताशयस्थितः
अहमादिश्य मध्यंच, भूताना मंत येवच। (42)

भागवत् में बताया गया है कि श्रीकृष्ण के प्रति की गयी प्रेममयी भक्ति से संसार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती है, हृदय में आनंद स्वरूप भगवान कृष्ण का साक्षात्कार होता है। (43) भागवत में मोक्ष से भी बढ़कर भक्ति को महत्व दिया गया है। (44) भागवतकार ने भक्ति की उत्पत्ति एवं विकास उसी के द्वारा कहलवायी है। (45) भागवत में साधन एवं साध्य रूपा दोनों भक्तियों का विस्तार रूप से वर्णन मिलता है। भागवत् में भक्तों के त्रिगुणों के आधार पर भक्ति के तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण भेदों के लक्षण बताये गये है। (46)

तामस भक्ति :–

हृदय में हिंसा, दंभा, मात्सर्य का भाव रखकर करनेवाली भक्ति।

राजस भक्ति :–

विषय, यश और ऐश्वर्य की कामना से करनेवाली भक्ति।

सात्विक भक्ति :–

पापों को क्षय करने के लिए अर्पण भाव से करनेवाली भक्ति।

निर्गुण भक्ति :–

यह योगियों की भाक्ति हैं मूर्ति का तिरस्कार करके भगवद् भाव को प्रेमरूप अप्राकृतिक स्वरूप को प्राप्त करनेवाला है। (47) इनके द्वारा उपासित

भगवान निर्गुण निराकार है, अलौकिक है घट घट व्यापी है, अगोचर है, वर्णनातीत है। भारतीय दर्शन के अनुसार सगुण भक्ति का पूर्ण विकसित रूप हैं निर्गुण भक्ति जहाँ भक्त अपने चिंतन में, ध्यान में, स्मरण में, नाम महिमा में भगवान को देखता है, न कि विशेष स्थान में। गीता में भी इस प्रकार की भक्ति का वर्णन मिलता है लेकिन गीता में कहा गया कि यह जन सुलभ नहीं। (48)

भागवत् में भगवान्नाम स्मरण की महिमा से संबंधित सैकड़ों श्लोक उधृत हैं। श्रीकृष्ण के स्मरण एवं कीर्तन की महिमा भागवत में सूतजी (49) द्वारा शुकदेव जी द्वारा (50) बतायी गयी है। श्रीमद्‌भागवत् विष्णुभक्ति से विशेषतः विष्णु के प्रमुख अवतार कृष्णभक्ति से भरी हुई एक महान् कृति है। इसमें विष्णु भक्ति से संबंधित कहानियाँ जैसी अजामिल–मोक्ष (51) प्रह्लाद की अनन्यभक्ति(52) कृष्णावतार एवं इनकी लीलाओं का सविस्तार वर्णन (53) और ऋषभ पुत्रों द्वारा भागवत धर्म, भक्त के लक्षण, भक्ति की महिमा का वर्णन (54) बताया गया है। इसमें प्रेमालक्षणा भक्ति, वैधी भक्ति, नवधा भक्ति, निर्गुण भक्ति, वात्सल्य भक्ति आदि का वर्णन किया गया। भागवत् में बताया गया है कि श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा है।

"अन्येचांशकलाः सर्वेकृष्णस्तु भगवान् स्वयं (55) अर्थात् दूसरे अवतार अंशावतार अथवा कलावतार है जबकि कृष्ण स्वयं भगवान है।

भागवत् में वर्णित भक्ति रस का मूल आधार श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण के नाम स्मरण, भक्ति–विधान लीलाओं का सुन्दर चित्रण इसमें मिलते है। भागवत् में मुख्यतः प्रेमाभक्ति को प्रधानता दी गयी है जो निष्काम भक्ति है। इसके अलावा त्रिगुणों के आधार पर भी तीन प्रकार की भक्ति का वर्णन मिलता है। योगियों की निर्गुण भक्ति, यशोदा के माध्यम से प्रकटित वात्सल्य भक्ति, उद्धव, सुदामा,द्वारा

साख्य भक्ति आदि का सविस्तार सुरम्य रीति से वर्णन किया गया है। इसके अलावा अंबरीष, व्यास द्वारा प्रकटित शांत भक्ति, दास्यभक्ति का वर्णन भी मिलते हैं। प्रह्लाद द्वारा भागवत् में नौ प्रकार की भक्ति बतायी गयी है। भगवान के गुण, लीला, नामादि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण भगवान के चरणों की सेवा, अर्चना, वन्दना, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन आदि नौ प्रकार की भक्ति है। (56) भागवत् में भक्ति की पवित्रता के बारे में बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं। कुत्ते का मांस खानेवाला चंडाल भी मेरी भक्ति से पवित्र होता है और धर्मशास्त्र ज्ञानी का मन भी मेरी भक्ति के बिना पूर्ण रूप से पवित्र नहीं होता है।(57) भक्ति प्राप्त करने के बाद भक्त की स्थिति है। एक प्रकार की उन्माद स्थिति है। वह भक्ति में डूबकर इहलोक भूल जाता है। भागवत् में प्रह्लाद के संदर्भ में कहा गया है – वह भगवान की सोच में कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी जोर से गाता है, कभी चिल्लाता है, कभी नाचता है। कभी अपने को भगवान मानकर उनकी लीलाओं को दिखाता है। कभी विह्वल होकर, भक्ति की तन्मयता में आँख मूंदकर अश्रु बहाते हुए मौन होकर रहता है। भागवत् में निष्काम भावना से पूर्ण भक्ति को प्रधानता दी गयी है। (58)

भागवत् में भगवद्–कथा–स्मरण की महिमाएँ बतायी गयी है। ईश्वर संबंधी कथाओं को सुनने मात्र से भगवान की प्राप्ति होती है, पापों का नाश होता हैं।(59) भागवत् में गोपियों की पवित्र भक्ति जो कर्मकांड, विधिनिषेधों से परे पवित्र प्रेमा भक्ति की बात बतायी गयी है। गोपियाँ अपनी परिपूर्ण प्रेम भावना के कारण अपने बन्धुजनों को या अपने शरीर को अपने पास या दूर की चीजों को नहीं पहचान सकी। वे भक्ति में डूबी हुई थी जैसे समाधि ग्रस्त मुनि और सागर में विलिप्त नदियों की तरह। (60) यह भक्ति की चरम स्थिति है।

5. <u>श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति</u> :–

भगवद्गीता महाभारत के अन्तर्गत आनेवाले एक परिपूर्ण भक्ति ग्रंथ है जिसमें युद्ध से विमुख पार्थ को अनासक्त योग का विवरण कृष्ण परमात्मा द्वारा दिया गया है। भगवद्गीता का सार, जो अर्जुन के लिए ही नहीं बल्कि सारे विश्व के लोगों के लिए मंगल मार्गदर्शी है। भगवद्गीता अष्टदशाध्याय से पूर्णभक्ति से ओत प्रोत एक महान् विभूति है।

भगवद्गीता में भक्ति की प्राप्ति के लिए श्रद्धा से पूर्ण ज्ञान की प्रधानता दी गयी हैं। (61) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अनन्य मन से भगवान के सदा स्मरण की आवश्यकता है –

"अनन्यचेताः सततं योमां स्मरति नित्यशः
तसाह्यम् सुलभः पार्थ नित्युक्तस्ययोगिनः (62)

भक्ति की साधनों पर भी गीता में बल दिया गया है। भगवद्गीता में भक्ति की पूर्णावस्था का वर्णन, श्रेष्ठ भक्त, भक्तों के प्रकार आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। भगवान श्रीकृष्ण का कहना है "कुछ लोग मेरे गुणगान, दिव्यनाम, अद्भुत लीलाओं का गान करते हुए भक्ति में डूबकर प्रणाम करके दृढ़ निश्चय के साथ इन्द्रिय एवं मन को काबू में रखकर मुझ में लीन होकर सदा उपासना करते हैं।(63) और कुछ लोग मुझे ज्ञान यज्ञ से आवाहन करके उपासना करेंगें एक रूप में या पृथक रूप में और विश्व में व्याप्त भगवान की पूजा करते हैं। (64) भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि उसके भक्त होने के लिए उसे अर्चना, प्रणाम करने के साथ साथ चित्त को भी उसे समर्पित करना है।

मन्मनाभव मद्भक्तों, मद्याजीमां नमस्कृत
मामे वैष्यसि सत्यंते प्रतिजाने दियो सिमें।। (65)

भागवत् में वर्णित नवधा भक्ति के अन्तर्गत आनेवाली वंदना, दास्यभक्ति, साख्य भक्ति, आत्मनिवेदन भक्ति आदि पर गीता में बल दिया गया है।

अनन्य भक्ति को श्रेष्ठता भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण द्वारा बतायी गयी है। विश्वरूप संदर्शन के बाद कृष्णभगवान अर्जुन से कहते हैं 'मुझे जानने के लिए, मेरे दर्शन पाने के लिए, मुझ में ऐक्य होने के लिए मात्र साधन अनन्य भक्ति ही है।(66) अनन्य भक्ति के लिए मन में अनन्य भाव की आवश्यकता है। अर्थात् भगवान की सोच के सिवा अन्य को छोडकर रहना। भगवान कृष्ण कहते हैं कि 'कितना ही पापी क्यों न हो लेकिन अनन्य मन से मेरी आराधना करने वाले लोग साधुओं की गणना में ही आते हैं। आराधना से वे शीघ्र ही धर्मात्मा बनकर परमशांति प्राप्त कर लेते हैं। हे अर्जुन! मेरे भक्त का कभी भी नाश नहीं होता

''अपिचेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हिसः
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्रवच्छांन्तिं निगच्छति।
कोन्तेयनप्रतिजा नीहि न भक्तः प्रणश्यति।। (67)

अनन्य भक्ति के कारण दृष्ट भी परम साधु बन जाता है। यही भक्ति की विशेषता है।

6. भक्ति–सूत्रों में भक्ति :–

भक्ति शास्त्र के प्रमुख ग्रंथ जैसे नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र, भक्ति रसामृत सिन्धु, श्रीमद्‌भागवत, भगवद्‌गीता आदि में भक्ति का प्रतिपादन हुआ है।

क) नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति :-

नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति का विशद निरूपण है। इसमें भक्ति को 'परम प्रेम रूपा' (68) एवं 'अमृत स्वरूपा' (69) बताया गया है। सभी चीजों का त्याग करके सिर्फ भगवान पर करनेवाला पवित्र प्रेम पर आधारित भक्ति है। उसके लिए उदाहरण है ब्रज की गोपिकाएँ (70)। भक्ति को प्राप्त करने के बाद भक्त किसी के प्रति चिन्ता नहीं रखता है, द्वेष, राग, उत्साह नहीं रखता है (71)। वह भगवान के सिवा किसी की शरण में नहीं जाता है।(72)

नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति को जन सुलभ बताया गया है और दैनिक जीवन में भी निज कार्यों का आचरण करते हुए भक्ति करने की संज्ञा दी गयी है। भगवान के गुणगान गाते हुए अपना दैनिक जीवन के कर्तव्यों का आचरण करने की बात कहीं गयी है। (73) भक्ति के संदर्भ में नारद भक्ति सूत्रों में कहा गया है कि भक्ति प्राप्त करने के बाद जीव मत्त हो जाता है (याने भक्ति की उन्माद स्थिति में) स्तब्ध हो जाता है, आत्मानंद पाता रहता है।(74) अर्थात् भक्ति में डूब जाता है। इस प्रकार की भक्ति भावना आलवार साहित्य में भी यथेष्ट रूप से मिलती है। भक्त कुलशेखर आलवार का कहना है (75) उस प्रकार की भक्ति कामना-रहित है। (76) उस भक्ति में अनन्यता है। महामुनि पराशर के पुत्र वेदव्यास भक्ति की व्याख्या देते हुए कहते हैं कि भगवान की पूजा लीला-गान जप-तप, भजन, कीर्तन आदि भक्ति के अंतर्गत ही आते हैं। गर्ग मुनि के अनुसार भगवान की लीलाओं से संबंधित कथाओं का श्रवण करना भक्ति है। (77)

नारद की भक्ति पूर्ण रूपेणा सम्पूर्ण भक्ति है। सभी आचरणों को अर्पित करके उसकी विस्मृति में परम व्याकुल होना भक्ति है। (78) सभी प्रकार के

आचार अर्थात् काम, क्रोध, अभिमान आदि को भी उस ईश्वर को अर्पित करना चाहिए। (79)

भक्ति में भक्त अपने सुख से भी ज्यादा भगवान से प्रीति रखता है। भगवान को प्रसन्न हो देखना, उन्हें परम संतोष देता है। उस प्रकार की पराभक्ति याने परमभक्ति कर्म, ज्ञान, योग से भी श्रेष्ठ है। (80) नारद के अनुसार भक्ति स्वयं प्राप्य फल का रूप हैं। (81)

लोक–व्यवहार में भी भगवान के लीलागान, श्रवण, कीर्तन करने पर जोर दिया गया है। भक्ति एक अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप है। (82) और गूंगे के गुड़ का स्वाद जैसा है। (83) वह गुण रहित, कामना रहित प्रेम है जो प्रतिक्षण भगवान के प्रति दिन–ब–दिन बढ़नेवाला अविच्छिन्न प्रेम है। वह सूक्ष्माति सूक्ष्म अनुभव रूप है। उसका अनुभव ही कर सकते है। (84) उस भक्ति को पाने के बाद उसे ही देखता है, उसे ही सुनता है, उसके बारे में ही बोलता है, उसी के बारे में ही सोचता है याने भक्ति में तन्मय हो जाता है।(85) वह किसी प्रमाण पर आधारित नहीं होकर स्वयं प्रमाण बनकर रहता है। (86) 'प्रमाण' शब्द का विवरण एवं उसकी व्याख्या पतंजलि योग सूत्र में इस प्रकार दिया गया है 'प्रमाणः प्रत्यक्ष – अनुमान – आगमः

<u>प्रत्यक्ष</u>	स्वयं उसको देखकर अनुभव प्राप्त करना।
<u>अनुमान</u>	बुद्धि बल से कारण ढूँढकर जान लेना। उदाः धुआँ से आग की पहचान जैसे।
<u>आगम</u>	ब्रह्मानंद को प्राप्त महापुरुषों के वाक्य। इसे शब्द या आप्त वाक्य भी कहते हैं।

नारद के अनुसार भक्ति का प्रमाण भक्ति ही है। उस अनुभव को हम वर्णन नहीं कर सकते। नारद भक्ति को फल का रूप बताया है। अर्थात् भक्ति को कर्म, ज्ञान, योग का फल बताया गया है। (87) इसी बात का प्रमाण भागवत् में भी मिलता है। जिस प्रकार खाते समय एक एक कौर तृप्ति एवं पुष्टि देकर भूख मिटाते हैं उसी प्रकार भगवद् भजन करनेवाले को भक्ति के साथ ईश्वरानुभव, वैराग्य तीनों एक ही बार प्राप्त होता है। (88)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारद भक्ति सूत्रों में समर्पण भाव से पूर्ण प्रेमाभक्ति को प्रधानता दी गयी है। उसे कर्म, ज्ञान, योग से भी श्रेष्ठ बताया गया है।

ख) शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति :–

शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में बुद्धिवाद पर आधारित दार्शनिकता ज्यादा मिलती हैं शांडिल्य की भक्ति में दर्शन ज्यादा है। शांडिल्य 1) प्रमाण (ज्ञान के वाहक या माध्यम) 2) प्रकृति, 3) प्रमेय के अनगिनत अंश (Constituents) याने ईश्वर, जीव, प्रकृति पर बल देते हैं। सृष्टि के यथार्थ पर विश्वास करते हुए ज्ञान से मुक्ति पाने के सिद्धांत का खंडन करते हैं। शांडिल्य का कहना है कि ज्ञान के कारण मुक्ति नहीं मिलेगी, बल्कि एक मात्र भक्ति के कारण मुक्ति मिलती है। उनकी भक्ति निम्नलिखित दार्शनिक सिद्धांत पर आधारित है।

भगवान, ईश्वर, परा, चित् भजनीय नाम से जाने जाते है। भक्ति के कारण हमें मुक्ति मिलती है न कि भगवद् विषयक ज्ञान। भगवान की शक्ति माया या प्रकृति से जाना जाता है। भगवान चेतन का प्रतिरूप है। जीवों के प्रति असीम दया के कारण अपनी शक्ति को पवित्र शरीर में प्रवेश कराके जन्म लेते हैं और असुरों का नाश करता है।

भक्ति की अनेक साधन होने पर भी कोई एक साधना को श्रद्धा से अपनाने से भगवान प्रसन्न होते हैं।(89) जब भक्त इस संसार से पराभक्ति प्राप्त करने के पहले अगर अपने शरीर छोड़ते है तो पुनर्जन्म लेकर फिर अपनी साधना में मग्न रहते हैं। साधना की परिपक्व स्थिति में भगवान को प्राप्त करते हैं।

शांडिल्य के भक्ति सूत्र निम्नलिखित चार तत्वों पर आधारित है –

1. प्रमाण या ज्ञान का वाहक (माध्यम) Means of Knowledge
2. प्रमेय या ज्ञान के माध्यम से प्राप्त विषय
3. साधनाएँ : मुक्ति पाने केलिए आवश्यक व्यावहारिक साधनाएँ
4. मुक्ति या सांसारिकता से पूर्ण रूप से मुक्त होना

1. <u>प्रमाण</u> : शांडिल्य और उसके सूत्रों के भाष्यकार श्री स्वप्नेश्वर की मान्यता है कि जीवन एवं ईश्वर दोनों के बीच का संबंध यह है कि प्रवाह बंधन में दोनों में भेद है और मुक्ति में अभिन्नता है। अर्थात् ईश्वर और जीव एक ही है। सांसारिक बंधन में जब जीव फँसता है तो भगवान से भिन्न होता है। मोक्ष की स्थित में भगवान से मिल जाते है। ज्ञान के माध्यम प्रत्यक्ष अनुमान शब्द है।

I. प्रत्यक्ष याने इन्द्रिय गोचर

II. अनुमान या संदेह

III. शब्द याने वैदिक मंत्र

इनमें शब्द ही प्रमुख हैं। प्रत्यक्ष में ज्ञान दो अवस्थाओं के माध्यम से प्राप्त हैं।

1. इंद्रिय विषयों के संपर्क में आने पर
2. ज्ञान के ऊपर छाये कुछ अज्ञान जब मिट जाता है तब मन में (आत्मा में) ज्ञान ज्योति जग जाती है।

उत्तम भक्ति को प्राप्त करने के पहले जीव इस संसार को छोड़ते हैं फिर इस जन्मचक्र में फॅसकर जन्म लेकर ईश्वर प्राप्ति के लिए लगातार साधना करने लगते हैं। वे ही हमारे कार्यों का फलदाता है और अपनी भक्ति साधना की परिपक्व स्थिति में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्रत्येक जीव (या) आत्मा जो चेतन है, भगवान से समानता रखता है जिसे ब्राह्मण (ब्रह्मण) की संज्ञा दी गयी है। जीवन अस्तित्व भगवान से भिन्न है जो उसकी बुद्धि या अंतःकरण पर आधारित है। उसकी बुद्धि या अंतःकरण के अंतर्गत त्रिगुण और उपाधि आती हैं। इसके परिणाम स्वरूप जीव भक्ति के अभाव में सांसारिक बन्धन में फॅस जाता है और न उसके ज्ञान की कमी में।

प्रकृति (जो भगवान से सृष्टि की गयी) में केन्द्रित यह उपाधि भी सत्य है, मिथ्या नहीं। इसलिए इसे ज्ञान से मिटाया नहीं जा सकता। जब एक लाल गुलाब एक शीशे के अंदर रखा जाता है तो शीशे भी लाल दीखता है। कितने भी गौर से देखने पर भी दोनों लाल ही दीखते हैं। उसी प्रकार उपाधि सत्य है।(90) उसी प्रकार आत्मा अमर एवं व्यापक है और उपाधि को उसमें विलीन करवाना। बुद्धि को प्रकृति में विलीन करना। यह परम भक्ति से ही संभव है, तब मुक्ति मिलेगी। प्रत्येक जीव वास्तव में भगवान का अभिन्न अंग है। इस अनंत बुद्धिजीव के कारण आत्मा भी अगणित दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के रूप में सूर्य की किरणों के सामने रखे गये अनेक दर्पण। सभी दर्पणों में सूर्य की किरणों की कांति प्रसारित होती है। जब सारे दर्पण हटाये जाते हैं तब प्रतिबिंब निजवस्तु याने सूरज में लीन हो जाते हैं। उसी प्रकार एक–एक आत्मा एक–एक दर्पण जैसे हैं। जिस प्रकार एक दर्पण हटाये जाने पर उसका प्रतिबिंब सूर्य में विलीन होता है उसी प्रकार एक आत्मा मुक्ति पाने पर भी सैकड़ों आत्माएँ मुक्ति नहीं पातीं। एक–एक दर्पण एक–एक आत्मा जैसा है।

चेतन–अस्थित्व दो प्रकार के हैं। (ईश्वर और प्रत्येक आत्मा)। ईश्वर और जीव (आत्मा) चेतन का स्वरूप है और प्रकृति जड़ हैं। इन दोनों के अलावा कोई सत्य नहीं। यह प्रकृति ईश्वर की शक्ति है, और माया 'प्रबंधन' नाम से भी जाना जाता है। यह सृष्टि में भौतिक है। ईश्वर की शक्ति होने के कारण यह भी सत्य है, मिथ्या नहीं। यह जगत्, सृष्टि जो प्रकृति की देन भी तथ्य (सत्य) है। प्रकृति अभौतिक सृष्टि है। यह व्यापक है। यह जड़ होने के कारण खुद इस संसार में भ्रमण नहीं कर सकता है। किसी की बुद्धि से इसका चलन संभव नहीं है। यह ईश्वर से ही कराया जा सकता है। सृष्टि का निर्माण क्रमशः ईश्वर द्वारा ही होता है जैसे सांख्य वेदांत तत्व। इसके विपरीत प्रलय होता है। ये सूत्र सत्कार्यवाद पर बल देते हैं। अतः सृष्टि और प्रलय का आविर्भाव और तिरोभाव (अदृश्य) होता रहता है।

शांडिल्य के अनुसार भक्ति साधनाएँ निम्नलिखित वर्णित है।

भक्ति का मतलब है मुक्त होना। भगवान से रखनेवाली परम अनुरक्ति ही भक्ति कहा गया है। (91) उपेक्षित आत्माएँ भक्ति मार्ग में जाकर मिलती है। भक्ति निम्नलिखित हेतुओं से ज्ञान मार्ग से संबंध नहीं रखता है। (i) ज्ञान के अभाव द्वेष के कारण होता है।(92) द्वेष भावना से ज्ञान का विकास शायद होता है न कि। संस्था का अर्थ भक्ति ही है न कि ज्ञान। ज्ञान भक्ति से कम महत्व रखता है। (93) (ii) ज्ञान की वृद्धि भक्ति के कारण क्रमशः हो जाती है। (iii) भक्ति द्वेष रहित है, द्वेष भावपरक है, भक्ति भी भावपरक है। द्वेष के विपरीत प्रेम है न कि ज्ञान। (iv) भक्ति एक ऐसा रस है जो राग याने भगवान से अनुराग रखता है। (94) ब्रज की गोपियाँ जो भक्ति से मुक्ति पायी वह प्रेमा भक्ति थी, वह ज्ञान से संबंध नहीं रखती। भक्ति की पहचान क्रिया से या इच्छा से या ज्ञान

से नहीं होती है। (95) क्योंकि भक्ति अनुभवपरक हैं। (V) ब्रज की गोपियाँ जो मुक्ति पायी वह प्रेम से है वे ज्ञान से संबंध नहीं रखती। (96)

शांडिल्य के अनुसार भक्ति से जीवन मुक्त हो जाते है। भगवान से रखनेवाली परम अनुरक्ति ही भक्ति है। सभी प्रकार की तिरस्कृत (उपेक्षित) आत्माएँ भक्तिमार्ग में जाने योग्य हैं।

भक्ति का संबंध ज्ञान से नहीं प्रेम से है। ब्रज की गोपियाँ जिन्होंने भक्ति से मुक्ति पायी न कि ज्ञान से। गौणी साधना से मन की मलिनताएँ दूर होती है और भक्ति का विकास होता है।

शांडिल्य के अनुसार प्रस्थान त्रय (उपनिषद्, गीता, वेदांत सूत्र) को ब्रह्मकांड कहते हैं न कि ज्ञान कांड। उनका वाद है ज्ञान पूर्वमीमांसा (कर्मकांड) और उत्तर मीमांसा दोनों का माध्यम है। विषयों के ज्ञान का विकास करना उसका लक्ष्य है। उसमें कर्मकांड से हम अपने कार्यों का आचरण करते हैं फिर ब्रह्म से भक्ति रखकर मुक्ति पाते हैं, जिसे संस्था कहते हैं। (97)

भगवान के भक्त ज्ञानकांड के योगी (याने ध्यान, वैदिक कांड से पूर्ण कर्मों का आचरण करनेवाला) से, कर्मकांड के साधक से भी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मकांड भक्ति प्राप्त करके समाप्त होता है क्यों कि उससे ज्ञान का विकास होता।

शांडिल्य के अनुसार भक्ति दो प्रकार की है। 1. परा (या) परमभक्ति, 2. गौणी भक्ति।

पराभक्ति ही उत्तम भक्ति है जिसकी प्राप्ति गौणी भक्ति के द्वारा होती हैं

परांभक्ति भक्ति की परिपक्व स्थिति है। भगवान से गौरव रखकर, श्रद्धा, प्रीति रखकर उनके वियोग में तड़पकर, उनकी महिमाओं को गाकर(98), उनकी याद में ही जीवन बिताना, कीर्तन नमस्कार करके अनन्यश्चिन्त होकर उनकी पूजा करना, भगवान के लिए पत्र पुष्प से पूजा करके सब कुछ अर्पण करने आदि सब कुछ पराभक्ति के अंतर्गत आते हैं। (99)

ये सब पराभक्ति की प्राप्ति के लिए सहायक है। किसी भी एक साधना को श्रद्धा से आचरण करने से भगवान प्रसन्न होते है (100) और पराभक्ति की प्राप्ति है। भक्ति के अंतर्गत भगवान के पादोदक पूजनीय है। (101)

पराभक्ति प्रत्येक आत्मा की उपाधि का नाश करती है, बुद्धि या अंतःकरण को मुक्त कराती है।

गौणी भक्ति के साधनों को श्रद्धा से आचरण करने से पराभक्ति की प्राप्ति होती है।

गौणी भक्ति के अन्य साधनों के अंतग्रत कीर्तन (भगवान की प्रशंसा करना) नमस्कार (वंदना करना) अनन्याश्चिन्तन (भगवान के सिवा अन्य को नहीं सोचना), याजना(102) (उनकी पूजा करना), पात्रादिपाना, अर्पण (समर्पण), आदि आती है। इन सब साधनों के द्वारा आत्मा शुद्ध होकर पराभक्ति का उदय होता है। इन सभी साधनों को अपनाने की जरूरत नहीं सिर्फ एक साधन को बड़ी श्रद्धा से पालन करने से भी पराभक्ति की प्राप्ति होती है।

पराभक्ति बंधन को नाश करके मुक्ति प्रदान करती है। श्रुतियों से भी भगवान को जान सकते हैं। पराभक्ति उपाधि को नाश करती हैं बुद्धि या अंतः कंरण को मुक्त कराती है। मुक्त जीव जीवन्मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इसे पहले ही सूर्य एवं शीशे प्रतिबिंब के उदाहरण के माध्यम से यह समझाया गया कि मुक्ति न प्राप्त आत्माएँ अगणित संख्यक उपाधियों से फिरती रहती है।

मुक्ति धीरे धीरे मिल जाती है। गौणी भक्ति की साधनाओं के बाद,पराभक्ति प्राप्त करने के पहले अगर जीव मर जाता है तो वे अर्किरधि–मार्ग (ज्योतिमार्ग ब्रह्म जगत् की ओर) से जाते हैं। गौणी भक्ति धीरे धीरे मोक्ष की ओर ले जाती है लेकिन पराभक्ति सीधे मुक्ति प्रदायिनी है। (103) यही शांडिल्य का विचार है। पराभक्ति एकांतिक भाव है जो श्रेष्ठ है (104) जिसे गीता में भी कहा गया है।

इस प्रकार शांडिल्य की भक्ति पद्धति बुद्धिवाद पर आधारित है।

ग) भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति :

भक्ति रसामृत सिन्धु भक्ति रस प्रतिपादक शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसके अंतर्गत आनेवाले चार अध्यायों का नाम रूपगोस्वामी ने –अपनी कल्पना के आधार पर रखा है – पूर्व विभाग, दक्षिण विभाग, पश्चिम विभाग और उत्तर विभाग। इस ग्रन्थ में भक्ति की व्याख्या, भेद, प्रेम निरूपिका भक्ति का वर्णन मिलता है।

पूर्व विभाग – प्रथम लहरी में उत्तम भक्ति की व्याख्या इसप्रकार दी गयी है – अन्य किसी की अभिलाषा से शून्य ज्ञान और कर्मों आदि से अनाच्छादित, सर्वधा अनुकूल भावना से श्रीकृष्ण का अनुशीलन ही भक्ति है। (105) भक्ति की महिमा गाते हुए रूपगोस्वामी का कहना है कि भक्ति को क्लेशों का नाश करनेवाली, शुभ देनेवाली, मोक्ष को भी तुच्छ बना देनेवाली, सुदुर्लभा अपरिमेय आनंद विशेष से परिपूर्ण और भगवान को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली बतायी गयी है। (106)

दूसरी लहरी में साधन भक्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। साधक के कार्य से सिद्ध होनेवाली भक्ति और उसके भेद बताया गया है। भक्ति के अधिकारियों का वर्णन किया गया है। जाति, वर्ग, कर्म, ज्ञान, वैराग्य योग से भी भक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है।

तीसरी लहरी में भाव भक्ति का निरूपण मिलता है। पवित्र मन की सत्वगुण प्रधान भावना ही भाव है। भगवान के ध्यान में, गान में, तन्मय स्थिति पाकर अश्रु रोमांच आदि सात्विक भावों के साथ भक्त अपनी भक्ति को प्रकट करता है वहीं भाव भक्ति हैं। साधनों के अनुष्ठान से भी भावभक्ति का उदय होता है। इस प्रकार भाव भक्ति के भी दो भेद हैं 1. साधनाभिनिवेराजन्य 2. भागवत्कृपाजन्य।

भाव भक्ति उत्पन्न होने के बाद में कुछ बाह्य चिह्न भी प्रकट होते हैं जिन्हें अनुभव कहते हैं। भावभक्ति के अनुभव के अंतर्गत – शांति (सहनशीलता), समय को व्यर्थ न खोना 3. वैराग्य, 4. अभिमान–शून्यता, आशा, समुत्कण्ठा, नाम कीर्तनों में रुचि, भगवान के गुणगान में प्रेम, भगवान के वासस्थान में प्रेम आदि आते हैं।

चौथी लहरी में प्रेमभक्ति का निरूपण किया गया है।

दूसरा अध्याय याने दक्षिण विभाग में साहित्यशास्त्र की रसप्रक्रिया का अवलबंन कर भक्ति को स्वतंत्र रस सिद्ध करने का प्रयास किया है। इस विभाग को विभाजन पाँच लहरियों में रखा है। इसमें रस सिद्धांत को आधार बनाकर कृष्णभक्तों का वर्गीकरण, उद्दीपन, विभाव अनुभव आदि का वर्णन किया है। सात्विक भावों का वर्णन, व्यभिचारी भावों का वर्णन, स्थायी भावों का वर्णन किया गया है।

वैष्णव भक्ति पद्धति में मूल स्थायी भाव श्रीकृष्ण विषय रति है। उसे आधार बनाकर रूपगोस्वामी ने विस्तार रूप से उसे वर्णन किया हैं।

पश्चिमी विभाग पाँच लहरियों में विभक्त किया गया है। इसमें मुख्य भक्ति रसों का वर्णन है। शान्त, प्रीति, प्रेयान्, वत्सल और मधुर भक्ति ये पाँच मुख्य भक्ति रस स्वीकार किये गये हैं। प्रत्येक लहरी में एक–एक रस का सांगोपांग निरूपण किया गया है।

7. विभिन्न मुनियों की भक्ति की परिभाषाएँ :–

कई मुनियों और आचार्यों ने भक्ति की परिभाषा विभिन्न प्रकार से की हैं। नारद के भक्ति शास्त्र में भक्ति का वर्णन भावात्मक, साधनात्मक, रीति से किया गया है जबकि शांडिल्य के भक्ति मार्ग ज्यादा बुद्धिवाद पर बल देता है। शांडिल्य ने भक्ति को एक दर्शन के रूप दिया वे नारद ने उसे साधनात्मक (साधनापरक) बताया।

वेदव्यास ने भक्ति को अनुराग से करनेवाली पूजा माना है। (107) गर्ग मुनि का कथन है भगवान का गुणगान ही भक्ति हैं। (108) नारद मुनि के अनुसार भक्ति के लिए सभी कार्यों का समर्पण के साथ अपने को भी भगवान की शरण में ले जाना और भगवान की विस्मृति में परम व्याकुल होने की आवश्यकता होती है। (109) भक्ति मूलतः प्रेमपरक एवं अनुभूति परक है। उसका आस्वादन किया जा सकता है न कि वर्णन। वह अकथनीय है, असंप्रेषित है, वह गूँगे के गुड के समान है।

शांडिल्य के अनुसार ईश्वर के प्रति रखनेवाली परम अनुरक्ति ही भक्ति है। (110) शांडिल्य के भक्ति सूत्रों के अंतर्गत 1. प्रमाण या ज्ञान के वाहक (माध्यम) 2. प्रमेय या विषय (जो ज्ञान से प्राप्त विषय) 3. साधनाएँ या मुक्ति प्राप्त करने के

लिए आवश्यक व्यावहारिक पद्धतियाँ, 4. मुक्ति : सांसारिक बंधन से पूर्ण रूप से मुक्त होना (मोक्ष की स्थिति) का विशद रूप से वर्णन मिलता है।

शांडिल्य का कहना है कि ईश्वर, परा, चित्, भजनीय आदि शब्द उस अलौकिक भगवान का पर्यायवाची शब्द है। भगवान पर करनेवाली भक्ति ही मुक्ति प्रदान करती है। उनके अवतारों पर भक्ति रखने से मुक्ति मिलती है। उनके अनुसार भक्त परमभक्ति को पाने के पहले अपने शरीर को इस संसार में छोड़ते है। फिर इस लोक में जन्म (पुनर्जन्म) लेकर भक्ति साधना लगातार करते रहते हैं और लगातार भक्ति साधना से पराभक्ति या परमभक्ति (पूर्ण भक्ति) को प्राप्त करते हैं। शांडिल्य ने भक्ति को 'परा' एवं गौणी नाम से दो श्रेणियों में बाँटा है। इनका विस्तार वर्णन अगले किया गया है।

8. भक्ति के लक्षण :–

किसी वस्तु के असाधारण धर्म का जो कि केवल उस पदार्थ में रहता है – का वर्णन करना उसका लक्षण कह लाता है। यह लक्षण दो प्रकार के हैं (अ) स्वरूप लक्षण (आ) तटस्थ लक्षण। भक्ति के भी ऊपर लिखित दो लक्षण हैं ।

रूपगोस्वामी के अनुसार उत्तम भक्ति का लक्षण है "आनुकूलयेन कृष्णनुशीलनं भक्तिरुत्तमा(111) कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकार की क्रियाओं का ग्रहण अनुशीलन शब्द से किया जाता है। अपने इष्टदेव को प्रिय लगने वाली प्रवृत्ति का ग्रहण 'अनुकूल्य' पद से होता है। 'कृष्ण' शब्द यहाँ परमात्मा का वाचक है। चूँकि भक्ति सिद्धांत सिर्फ कृष्ण भक्तों का द्योतक है। अनुकूल्य से अर्थात् परमात्मा के प्रिय शारीरिक वाचिक और मानसिक व्यापारों को करना ही भक्ति कहलाती है। यह भक्ति का स्वरूप लक्षण है।

भक्ति के तटस्थ लक्षण इस प्रकार दिया जाता है – ''अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञान कर्माधनावृतम्' अर्थात् अन्याभिलाषिता शून्य, ज्ञान कर्माधनावृतम् दोनों भक्ति के तटस्थ लक्षण के रूप में है। ज्ञानकर्माद्यनावृता का मतलब है ज्ञान मार्ग के अनुयायी वेदांती आदि ब्रह्म के स्वरूप से परिज्ञान को ही प्रधानता देकर उनकी उपासना करते हैं।

उत्तमा भक्ति निष्कामभाव से की जाती है और प्रभु के लिए करनेवाले कार्य ही उत्तम भक्ति है। 'अन्याभिलाषिता शून्यता और ज्ञान कर्माद्यनावृतता ये दोनों भक्ति को ज्ञान, कर्म आदि अन्यों से भिन्न करते हैं। इसीजिए वे भक्ति के लक्षण तो है, लेकिन भक्ति के स्वरूप के अंतर्गत नहीं हैं। (112)

9. नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के लक्षण :

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के लक्षण निम्नलिखित रूप में वर्णित है। ''भक्ति प्राप्त करने के बाद भक्त मस्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, आत्मा में रत होकर रहता है, किसी के प्रति आकर्षण नहीं। (113) हमेशा भगवद्ध्यान में रहता है। भक्ति की प्राप्ति के बाद भक्त गुण रहित कामना रहित होकर प्रतिक्षण अपने आराध्य से अविच्छिन्न (अन्योन्य) अनुराग रखता है, जो प्रतिक्षण बढ़नेवाला है। वह सूक्ष्माति सूक्ष्म अनुभव है। (114) इसीलिए वह अकथनीय है, अवर्णनीय है। भक्ति प्राप्त करने के बाद भक्त सिर्फ भगवान के बारे में ही सोचता है, सुनता है, बोलता है अर्थात् भगवान संबंधी विषयों पर ही आसक्त रहता है। (115) इस प्रकार के भक्तों में जाति, कुल, धन, विद्या, रूप, क्रिया आदि को लेकर भेदभव नहीं है। (116) क्योंकि नारद के अनुसार सारे भक्त गण तो भगवान के ही है। (117) भक्ति परम शांति रूपा एवं परमानंद प्रदायिनी है। (118) भक्त अपने कार्यों की या अपनी चिंता न करता है क्योंकि उसने अपने को भगवान के सामने पूर्णतः समर्पित किया है।(119)

नारद भक्तिसूत्रों में भक्ति के लिए आवश्यक लक्षणों के अंतर्गत 'संपूर्ण समर्पण' पर बल दिय गया है। भक्ति के लक्षणों में मुख्य है 'समर्पण' । सभी प्रकार के कार्यों को भगवान के लिए समर्पित करके खुद आत्मा को भी समर्पित करनी है। उनकी विस्मृति में परम व्याकुल होना है। (120) ऐसी संपूर्ण समर्पण स्थिति में लोक व्यवहारों के कारण उसे बाधाएँ नहीं होतीं। वह कर्मयोगी बनकर नित्य कर्म भी भगवान को समर्पित कर बैठता है।(121) भक्त समर्पण भावना से भगवान के ही हो जाते हैं भक्ति में प्रेम का आधिक्य होता है। प्रेम की पराकाष्ठा समर्पण में है। समर्पण भाव से प्रेम सार्थक हो जाता है। समर्पण के दूसरे रूप हैं आत्मनिवेदन, शरणागति, प्रपत्तिवाद जो भक्ति का मुख्य लक्षण है। जिनका पालन सभी कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। नारद के अनुसार सभी चीजों को त्याग करके सिर्फ भगवान पर करनेवाला पवित्र प्रेम पर भक्ति आधारित है। इसके लिए उदाहरण ब्रज की गोपिकाएँ। (122) उनके प्रेम निस्सवार्थ से पूर्ण अलौकिक प्रेम है। श्रीकृष्ण के लिए गोपियाँ सब कुछ छोड़ने को तैयार हो जाती है। उनकी निष्कामना से पूर्ण भक्ति है। उनके प्रेम की तुलना उस प्रेमी के प्रेम से की गयी है जो अपनी उपपत्नी की मन चाहतों की पूर्ति करता रहता है। अर्थात् उपपत्नी स्वार्थी होकर उनसे मन चाहे रीति से अपनी इच्छाओं को प्रकट करती है। प्रेमी तो उनकी पूर्ति प्रतिफल की अपेक्षा न करके पूरा करता हैं उसी प्रकार गोपिकाओं की भक्ति श्रीकृष्ण से निस्सवार्थ एवं निष्काम भक्ति है। वे श्रीकृष्ण के आनंद के लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाती हैं। अर्थात् उनकी प्रेमपूर्ण भक्ति स्वार्थ रहित है। (123) अपने सुख को वे श्रीकृष्ण के सुख में देखती है। (124)

10. शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति के लक्षण :–

शांडिल्य भक्ति सूत्रों में 'परम अनुरक्ति' को ही भक्ति की संज्ञा दी गयी है। अर्थात् भगवान के प्रति रखा गया असीम प्रेम ही भक्ति है। इस अनुरक्ति या अचंचल प्रेम पर ही पतंजलि ने जोर दिय है। (125) यह परिशुद्ध प्रेम का अनुभव

हम अपने सामान्य जीवन में करते रहते है (126) जैसे किसी आत्मीय या प्रिय जन की याद में, (या) उनके देखते ही आँखों में आँसू भरना, विह्वल होना आदि। शांडिल्य के द्वारा वर्णित परमभक्ति जिसका दूसरा नाम पराभक्ति है। यह भक्ति की परिपक्व स्थिति। अर्थात् पहली भक्ति गौणी भक्ति दूसरी परा। गौणी भक्ति के द्वारा पराभक्ति की प्राप्ति होती है। पराभक्ति के लक्षण उन्होंने इस प्रकार बताया। (i) भगवान के प्रति अत्यंत गौरव रखना, श्रद्धा रखना, प्रीति रखना, उनके वियोग में तड़पना उनकी महिमाओं को गाना, तदर्थ प्राण स्थान अर्थात् उनकेलिए ही उनकी याद में जीवन बिताना .... सब कुछ उनका मानना, सर्वव्यापी के रूप में उन्हें मानना, भगवान के प्रतिकूल कार्य न करना आदि से पराभक्ति की प्राप्ति होती है। कीर्तन, नमस्कार करना, भगवान के बारे में सोचना (अनन्याश्चिन्तन) याजन (उनकी पूजा करना), पत्रादिदान (भगवान के लिए पत्र, पुष्प सब कुछ अर्पण करना) ये सब पराभक्ति की प्राप्ति के लिए सहायक है। किसी भी एक साधना को श्रद्धा से आचरण करने से भगवान प्रसन्न होते हैं और पराभक्ति की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार शांडिल्य भक्तिसूत्रों में भी आत्म समर्पण पर बल दिया गया है। समर्पण के आवश्यकअंगों के अंतर्गत शांडिल्य ने अपने भक्ति सूत्र में इस प्रकार बताया। 1. सम्मान, बहुमान, प्रीति, रह, संदेह, गुणगान की प्रशंसा, सब कुछ उनको समर्पित है। जीवन उनके लिए जीना, सब कुछ उसके लिए, समस्त जगत् में उनका दर्शन पाना, उनके अनुसार जीना आदि समर्पण के अंतर्गत आते हैं।(127)

11. भक्ति के भेद :–

भक्ति के भेदों (या) रूपों का निर्णय करना कठिन है। भक्ति के अनेक प्रकार की होती है और उसके आधार भी भिन्न–भिन्न हो सकते हैं।

श्रीमधुसूदन सरस्वती ने भक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है –

> द्रुतस्य भगवद्धर्मात् धारावाहिकतां गता।
> सर्वेशे मनसा वृत्तिः भक्ति रित्यभिधीयते।। (128)

भक्ति मूलतः दो प्रकार की है। 1. निर्गुण और 2. सगुण।

अव्यक्त, अगोचर, सर्वव्यापी, नाम, गुण, रूप रहित अलौकिक परब्रह्म की भक्ति ही निर्गुण भक्ति है जिसे हिंदी साहित्य के ज्ञानमार्गियों ने अपनाया हैं साकार, सरूप, गोचर, लीलाकारी, लोकरंजन, सगुण रूपी भगवान के रूप सौंदर्य से मुग्ध होकर उनकी लीलाएँ गाना सगुण भक्ति के अंतर्गत आता है जिसे हिंदी साहित्य के सगुण मार्गियों ने (राम एवं कृष्ण भक्ति शाखा के कवि) अपनाया है।

वैदिक साहित्य एवं प्राचीनकाल के प्रमुख ग्रन्थों में भक्ति के भेद विभिन्न प्रकार से किये गये है। रूप गोस्वामी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति के दो भेद बताये । उनके अनुसार भक्ति के भेद इस प्रकार हैं –

भक्ति
- गौणी
  - वैधी भक्ति (या) मर्यादामयीभक्ति
  - रागानुगा
    - साधनाभक्ति
    - भावभक्ति
    - प्रेमाभक्ति
- पराभक्ति

गौणी भक्ति : साधन दशा की भक्ति है। प्रारंभिक अवस्था में करनेवाली भक्ति

पराभक्ति : सिद्ध दशा की भक्ति

वैधी भक्तिः शास्त्रानुमोदित भक्ति, अर्थात् शास्त्रों में वर्णित भिन्न–भिन्न पद्धतियों के साथ भगवान के प्रति करनेवाली भक्ति।

रागानुगा भक्ति : विषयों के प्रति आसक्ति दिखाकर भक्त भगवान के प्रति आकर्षित होता है। यह उत्तमा भक्ति है।

इन सबका विस्तार रूप से वर्णन इस प्रकार है –

भक्ति की आरंभिक अवस्था 'गौणी' भक्ति के नाम से अभिहित है। गौणी आचार–अनुष्ठान के साथ की जानेवाली है और आत्म साधना से भक्ति को उच्च स्थान दिलानेवाली भक्ति है। पराभक्ति में समन्यात्मकता ज्यादा है। पराभक्ति में पवित्र प्रेम के लिए उच्चस्थान दिया गया है। प्रेमस्वरूप भगवान के सामने भक्त अपना प्रेम व्यक्त करता है और दोनों (भगवान एवं भक्त) प्रेमस्वरूप हो जाते हैं। इसीलिए भक्ति मार्ग को अपनानेवालों को प्रारंभिक अवस्था में मूर्ति की आवश्यकता होती है। अर्थात् अपने हृदय में एकाग्रता लाने के लिए सगुण मूर्तिमान भगवान की मूर्ति का वह आश्रय लेता है। श्रद्धा के साथ उस मूर्ति का पूजानुष्ठान किया जाता है। भक्ति की चरमावस्था में पूजा अनुष्ठान करने के समय भी भगवद्ध्यान करके भक्त पूर्ण ज्ञानी हो जाता है। यही पराभक्ति की अवस्था है जहाँ प्रेममय भगवान की सोच के साथ संपूर्ण समर्पण भावना ही रह जाती है। (129)

पराभक्ति के लिए निष्काम प्रेम चाहिए। पराभक्ति से भक्त पूर्णज्ञानी हो जाता है। उनकी स्थिति का वर्णन भगवद्गीता में इस प्रकार वर्णत है –

समश्शत्रौच मित्रेच तथा मानावमात्रयोः
शीतोष्ण सुख दुःखेषुं, समस्संग विवर्जितः
तुल्य निंदास्तुतिर्मोनि, संतुष्टो येन केन चित्
अनिकेतस्थितमतिः भक्तिमान्मे प्रियो नरः (130)

भक्त शत्रु एवं मित्रों को भी समदृष्टि से देखता है, मानापमान शीतोष्ण, सुख–दुःख, निंदा–स्तुति आदि को समान रूप से देखता है, किसी भी वस्तु के प्रति भी निष्काम होकर संतुष्ट होकर मौन, होकर स्थिर मन के साथ निर्वेदभाव से रहता है। वह समस्त भूतों में भगवान का दर्शन करता है, वहीं भगवान श्रीकृष्ण के लिए प्रिय है। (131)

नारद भक्ति सूत्र के छप्पनावें सूत्र में गुण एवं आर्ताति भेद के अनुसार गौणी भक्ति के तीन प्रकार के भेद बताया गया है। (132) शास्त्रों में वैष्णवभक्ति का विभाजन त्रिविधा रूप से किया गया है। 1. विभिन्न स्रोतों के आधार पर, 2. उपास्यदेवों के आधार पर, 3. प्रवृत्तियों के आधार पर। वेदांत देशिक के "पांचरात्र रक्षा" ग्रंथ में कालोत्तर के अनुसार वैदिक, तांत्रिक, श्रोत और मिश्र ये चार प्रकार की उपासनाएँ है।(133) बोपदेव ने श्रीमद्भागवत की भक्ति के विभिन्न भेदों को मुक्ताफल में सुन्दर व्यवस्थित ढंग से संग्रहीत किया है जो निम्नलिखित है :–

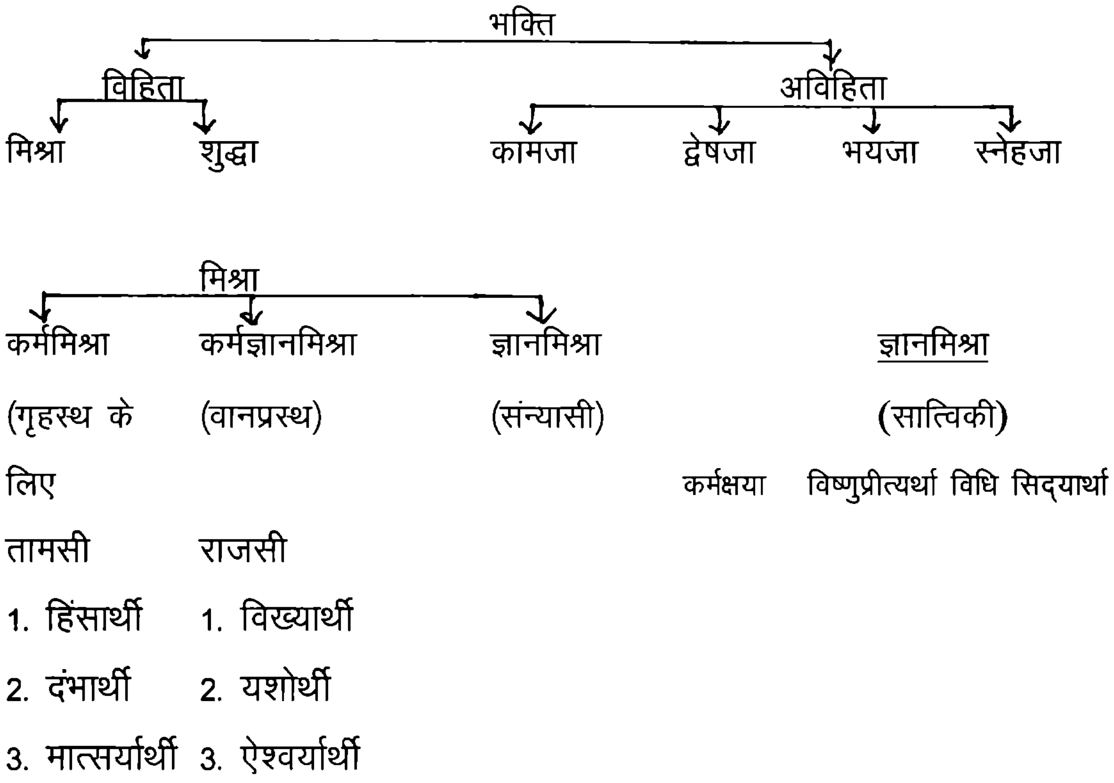

इसका विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

विहिता भक्ति :–

वेदों में प्रतिपादित मर्यादा का पालनकरते हुए भगवान में मनोभिनिवेश विहिता भक्ति है। विहिता भक्ति के ये प्रकार 'सगुण' भक्ति के नाम से अभिहित हुए है। पर चतर्थाश्रमी भिक्षुओं के लिए कही गयी भेद रहित, ज्ञानमिश्र विहिता भक्ति 'निर्गुण' बतायी गयी है।

अविहिता भक्ति :–

मर्यादा का ध्यान न रखते हुए भगवान में मनोभिनिवेश 'अविहिता' भक्ति है। गोप्यः कामाद्भ्यात् कंसो द्वेषा च्चैधादये नृपः संबंधा दृष्णस्स्नेहाद्यूयम्यभक्त्सा वयं विभो(134) अर्थात् अविहिता भक्ति के अंतर्गत आनेवाली चार प्रकार की भक्ति का विभाजन इस प्रकार है :

अविहिता :
1. कामजा : गोपियाँ
2. द्वेषजा : चैद्यवंश के राजा
3. भयजा कंस
4. स्नेहजा : वृष्णि वंशी लोग

इन चारों द्वारा की गयी भक्ति में मर्यादा का ध्यान नहीं रखा गया है। इन सबके अलावा वल्लभ ने अपने पुष्टि मार्ग में चार प्रकार की भक्ति का वर्णन किया है। पुष्टि का अर्थ 'भगवान के अनुग्रह से है। (135) वल्लभाचार्य के अनुसार भक्ति चार प्रकार की है। 1. प्रवाह पुष्टि, 2. मर्यादा पुष्टि, 3. पुष्टि पुष्टि, 4. शुद्ध पुष्टि।

1. प्रवाह पुष्टि :–

सांसारिक जीवन प्रवाह में पतित होते हुए भी भगवद्कृपा से सदाचरण करके भगवान की प्राप्ति प्रदान करनेवाली भक्ति।

2. <u>मर्यादा – पुष्टि</u> :–

विषय तृष्णा से पराङ.सुख होकर इन्द्रियों को अपने वश में रखते हुए भगवान की लीला के श्रवण,कीर्तन आदि के द्वारा अपना मन भगवान में अर्पित करके भजने वालों की भक्ति।

3. <u>पुष्टि – पुष्टि</u>

जो लोग भगवान से अधिक पुष्टि (ईश्वरानुग्रह) पाकर भक्ति के अनुकूल ज्ञानार्जन करने की क्षमता संपादित करते हैं ऐसे लोगो की भक्ति।

4. <u>शुद्ध – पुष्टि</u>

सिर्फ भगवत्प्रेम में मग्न रहकर जिनका एक मात्र लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है ऐसे लोगों की भक्ति। इस संबंध में शुक्लजी का कथन है "शुद्ध पुष्टि प्राप्त लोग केवल भगवत्प्रेम में डूबे रहते है, उनकी बुद्धि प्रयत्न प्रक्षीण और भजन कीर्तन एक मात्र व्यसन हो जाता है। (136)

श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति 1. साधन, 2. भाव और 3. प्रेम नाम के तीन भेद दिया है। (137) पर जीव गोस्वामी अंतिम दो भेदों को साध्य कोटि में रखते है। (138) साधन रूपी भक्ति के पुनः दो भेद किये गये है वैधी तथा रागानुगा (139) वैधी ही बोपदेव की विहिता भक्ति एवं वल्लभाचार्य का मर्यादा मार्ग है। (140) साधना रूपी भक्ति के रूप गोस्वामी ने दो भेद किये है कामानुगा तथा संबंधानुगा (141) रागानुगा के ये भेद वास्तव में बोपदेव की कामजा और स्नेहजा नामक अविहिता भक्ति के भेदों से अभिन्न है। (142) रूप गोस्वामी ने पुष्टिमार्ग का संबंध इसी रागानुगा साधन भक्ति से जोड़ा है। (143)

रूप गोस्वामी के अनुसार भक्ति के प्रकार निम्नलिखित है:

भक्ति

- साधन
  - वैधी
  - रागानुगा
    - कामानुगा
    - संबंधानुगा
- भाव
- प्रेमा

जीव गोस्वामी ने अंतिम दो भेद भाव एवं प्रेमा भक्ति को साध्य कोटि में रखा है। साध्या रूपा भक्ति के अंतर्गत आनेवाली भावभक्ति एवं प्रेमाभक्ति में मात्राकृत वैषम्य है। भाव से रूप गोस्वामी का तात्पर्य उन चित्त वृत्तियोंसे है जो विभाग जनित और शरीरेन्द्रिय विकारों की विधायिका होती है। (144) भक्त को भगवान के प्रति उत्पन्न भाव आस्वादनीय रति का रूप लेता है और सान्द्रात्मक रूप होने पर 'प्रेमा' में परिणत हो जाता है।(145)

रसतत्व के आधार पर भक्ति के दो भेद किये गये हैं – शास्त्र भक्ति और रस भक्ति। ब्रह्म रसरूप है। रसास्वादन के लिए ब्रह्म एक से दो हो जाते है – कृष्ण रूप और राधा रूप । राधा एवं कृष्ण में हित (याने) प्रेम तत्व का प्रतिपादन मिलता है। हित तत्व की तीन विशेषताएँ है (क) प्रणय भक्ति, (ख) राधा और कृष्ण के युगल तत्व की साधना, (ग) किशोरी रूप से उपासना। प्रणय भक्ति में दिव्य रति का वर्णन मिलता है। सूफ़ियों की भक्ति भी इस पर आधारित हैं। उन्होंने अपने उपास्य को प्रिय अथवा प्रिया के रूप में कल्पित करके उसके प्रति अपना प्रणय निवेदन किया हैं पर युगल तत्व का अभाव इन दोनों मार्गों में है।

भारत में 'प्रणय भक्ति' हित संप्रदाय के पूर्व से ही मिलती है। तमिल साहित्य के वैष्णव संत आलवारों ने गोपी भाव से कृष्ण की उपासना की है । शठ गोप नम्मालवार स्त्री वेशधारण कर अर्चना किया करते थे। उपास्य के दर्शन को

वे "आध्यात्मिक सहवास" के रूप से वर्णन करते थे। (146) आंडाल की भक्ति भी माधुर्य भाव से पूर्ण गोपी भाव की थी।

इस प्रकार भक्ति के दो प्रमुख भेद है, 1. शास्त्रा भक्ति, जो देवालय में प्रचलित आगमिक परंपरा के अनुसार की जानेवाली भक्ति। 2. रस भक्ति कामिक यौगिक परंपरा से संबद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित भक्ति में चार प्रकार के भेद हैं। 1. आर्त भक्ति, 2. अर्थार्थी भक्ति, 3. जिज्ञासा भक्ति, 4. ज्ञानी भक्ति। श्रीकृष्ण भगवान स्वयं अपने भक्तों के बारे में उनकी भक्ति के बारे में कहते हैं –

"चतुर्विधा भजन्ते मां, जनास्सुकृतिनोऽर्जन।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षम।। (147)

आर्त भक्ति

अपनी आपदाओं से बाधाओं से विमुक्ति पाने केलिए भगवान के प्रति की जानेवाली भक्ति। द्रौपदी एवं गजेन्द्र आर्त भक्त है।

अर्थार्थी

जगत् से संबंधित सुख, संपदा ऐश्वर्य आदि वांछाओं के साथ भगवान के प्रति की जानेवाली भक्ति। ध्रुव इसका उदाहरण है।

जिज्ञासु भक्ति

ज्ञानासक्ति के साथ भक्ति करनेवाले यही मुमुक्षुजन है, जो साधक की भक्ति है। उदा : कुछ मुनि।

ज्ञान भक्ति

साधना के बाद अपरोक्षानुभूति से पूर्ण जीवन्मुक्त है। नारद, विभीषण, व्यास, शुक भीष्म आदि ज्ञान भक्त है।

श्रीमद् भागवत् में भक्ति के दो प्रमुख भेद साधना एवं साध्य रूपा भक्ति का वर्णन किया गया है।

साधना भक्ति

मन की एकाग्रता से भगवान् का नित्य–निरंतर श्रवण कीर्तन और आराधन आदि भक्ति का साधन पक्ष है। साधनाओं के द्वारा की जानेवाली भक्ति साधना भक्ति है।

साध्य भाक्ति

भगवान में परानुरक्ति अथवा अहैतुकी अप्रतिहिता भक्ति भावना प्रेमा भक्ति उसका साध्य पक्ष की भक्ति है। (148)

साधन रूपा भक्ति – नवधाभक्ति (या) वैधी भक्ति कहते हैं।

साध्य रूपा भक्ति – प्रेमा भक्ति (या) रागानुगा (या) रागात्मिक भक्ति को कहते हैं।

गुणों के आधार पर भी भक्ति का विभाजन है। तमोगुण, रजोगुण सत्वगुणों के आधार पर विकसित हुई भक्ति। श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध में इसका वर्णन मिलता है। (149)

तामस भक्ति

यह तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाली है। हिंसा, मात्सर्य आदि भावों को हृदय में रखकर भगवान से प्रेम करते है।

राजसी भक्ति

जो पुरुष विषय, यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में प्रेम भाव रखता है उनके द्वारा करनेवाली भक्ति।

सात्विकी भक्ति

जो व्यक्ति पापों को क्षय करने के लिए परमात्मा की पूजा करता है, उनके द्वारा करनेवाली भक्ति।

इन तीनों की भक्ति का उल्लेख भी श्रीमद्भगवद्गीता में भी मिलता हैं।

त्रिविधा भवति श्रद्धा, देहिनाम् सा स्वभावजा।
सात्विकी राजसी चैव, तामसी चेतितांत्रृणु।।
यजन्ते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः
प्रेतान् भूत गणांश्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः (150)

मनुष्यों के स्वभाव के अनुसार उनकी श्रद्धा होती है। सात्विक गुणी देवताओं की उपासना करते है, राजसी यक्ष–राक्षसों की, तामसी भूत–प्रेतों की उपासना करते है।

'भागवत' के सप्तम स्कंध में प्रह्लाद द्वारा विष्णु भक्ति के नव भेद बताये गये हैं।

"श्रवणं वंदनम् विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वंदनम् दास्यं साख्यमात्म निवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधी तमुत्रमम् (151)

"नारद भक्ति सूत्र" में प्रेमा भक्ति के ग्यारह प्रकार बताये गये हैं (152) 1. भगवान के गुण माहात्मय में आसक्ति (उदाहरण नारद, शुक्र, शौनक, परीक्षित) 2. रूपासक्ति (उदा गोपियाँ) 3. पूजासक्ति (उदा राजा पृथु अंबरीश), 4. स्मरणासक्ति (उदा : प्रह्लाद, ध्रूव, सनक) 5. दास्यासक्ति (उदा : विदुर, अक्रूर),

6. सख्यासक्ति (उदा : अर्जुन, सुदामा, श्रीदामा) 7. वात्सल्यासक्ति (उदा : कश्यप, नंद, वासुदेव, देवकी, अदिति, यशोदा) 8. कान्तासक्ति (उदा : अष्ट पटरानियाँ) 9. आत्म निवेदनासक्ति (उदा अंबरीश, शिबि) 10. तन्मयासक्ति (उदा : शुक, सनकादि) 11. परमविरहासक्ति (उदा : उद्धव, अर्जुन, ब्रजनारी)

12. भक्ति के साधन

भक्तों के अलौकिक व्यवहारों का वर्णन करते हुए नारद ने कहा है कि भगवान के प्रेमी भक्त भक्ति की तन्मयावस्था में वेद शास्त्र विद्धातों को भी छोड़कर केवल आराध्य से अविच्छिन्न (अन्योन्य) अनुराग रखते है। (153) नारद के अनुसार भक्त को भगवान के गुण गाना (154) संसार के विषय भोगों को, रागानुराग को त्यागकर इन्द्रिय निग्रह (155) के साथ रहने की आवश्यकता होती है। नारद ने भक्ति साधनों को सविस्तार से तृतीयाध्याय में वर्णन किया है। भक्त को भगवान की महिमाओं को श्रवण, गान करना है और भगवद्ध्यान उनकी दिनचर्या में एक भाग के रूप में लेना है।(156)

भक्ति की प्राप्ति के लिए भी भगवत् कृपा चाहिए। (157) यह सत्सांगत्य से मिलती है।(158) वास्तव में भगवान और उनके भक्त महात्माओं में कोई भेद नहीं है। (159) नारद भक्ति सूत्रों की तरह आदिशंकर द्वारा विरचित 'भजगोविंदम्' में भी जीवन्मुक्ति के लिए सत्सांगत्य की आवश्यकता बतायी गयी है।

"सत्संगत्वे नित्संगत्वम् नित्संगत्वे निर्मोहत्वम
निर्मोहत्वे निश्चल चित्तम निश्चल चित्ते जीवन्मुक्तिः

श्री रामानुजाचार्य ने अपने वेदान्त सूत्र भाष्य में निम्नलिखित साधनों को भक्ति के लिए आवश्यक माना है – 1.विवेक, 2. विमोह, 3. अभ्यास, 4. योग क्रिया, 5. पवित्रता, 6. बल। (160)

शांडिल्य साधनाओं को बताने के पहले, जीवों की दशा के बारे में बताते हैं।

तिरस्कृत या उपेक्षित आत्माएँ भक्तिमार्ग में जाने के लिए योग्य है। भक्ति ज्ञान मार्ग से संबंध नहीं रखता हैं क्योंकि ज्ञान का अभाव द्वेष के कारण होता है। द्वेष से शायद किसी के ज्ञान का विकास होता है न कि भक्ति का।

ज्ञान की वृद्धि भक्ति के कारण होता है। भक्ति में प्रेम है जो द्वेष के विपरीत है। इसीजिए भक्ति द्वेष रहित है। भक्ति एक ऐसा रस है जो राग याने भगवान से अनुराग रखता है। ब्रज की गोपियाँ जिन्होंने भक्ति से मुक्ति पायी न कि ज्ञान से।

भक्ति की पहचान क्रिया से, इच्छा से, श्रद्धा से नहीं होती। ज्ञान गौणी साधना है जिसमें मन के मलिन टूट होकर भक्ति का विकास होता है।

शांडिल्य के अनुसार प्रस्थान त्रय (उपनिषद्, गीता, वेदांत सूत्र) को ब्रह्मकांड कहते हैं न कि ज्ञानकांड। उनका वाद है पूर्व मीमांसा (कर्मकांड) और उत्तरमीमांसा दोनों के लिए ज्ञान आम (Common, समान) है। कर्मकांड से हम अपने कार्यों का आचरण करके ज्ञानकांड से भक्ति प्राप्त करके जीव मुक्ति प्राप्त करते है जिसे संस्था नाम से संज्ञा की जाती है।(161) पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगमार्ग भी गौणी साधनों के अंतर्गत आती है क्योंकि योग से मन शुद्ध होकर उसमें श्रद्धा पैदा होती है। समाधि स्थिति की प्राप्ति गौणी भक्ति–साधनों से भी प्राप्त की जाती है। संक्षेप में यह कहा गया है कि इन कारणों से ही भक्त ज्ञानकांड एवं कर्मकांड के अनुयायियों से भी श्रेष्ठ है।

शांडिल्य ने भक्ति को दो प्रकार से विभाजित किया है। 1. परा या परम भक्ति, 2. गौणी भक्ति।

भक्ति की परिपक्वता केलिए आवश्यक बातों का विषद वर्णन शांडिल्य ने किया है। (162) वे हैं 1.सम्मान, 2. बहुमान, 3. प्रीति, 4. विरह, 5. इतर विकित्सा (अन्य विषयों पर अनुमान), 6. महिमा ख्याति (भगवान की महिमा की प्रशंसा) 7. तदर्थ प्राणस्थन (भगवान केलिए जीवन) 8. तदीयता (सब कुछ उन्हीं का हैं) 9. सर्वतद्भव (सर्वान्तर्यामी), 10. अप्रतिकूल्या (उसके विरोध में न जाना)

इन सब के माध्यम से परम भक्ति प्राप्त होने पर भी, इन सब साधनों का लगातार सचेतन साधना करनी चाहिए।

गौणी भक्ति के अंतर्गत शांडिल्य ने जो भक्ति साधन का वर्णन किया वह गीता में प्राप्त है। (163)

शांडिल्य ने भगवद्गीता अध्याय 9 में वर्णित भक्ति साधनाओं को गौणी भक्ति के रूप में अपनाया है जिसके अंतर्गत कीर्तन (भगवान का गुणगान), नमस्कार (भगवान से प्रार्थना), अनन्यश्चिन्तन (उसके अलावा और कुछ नहीं सोचना) याजना (164) (उनकी पूजा करना), पत्रादिदान (भगवान को पत्र, पुष्प चढ़ाना) अर्पण (समर्पण) आदि ।

भक्ति की ये सब साधनाएँ आत्मा को शुद्ध करके भक्ति को विकास कराते हैं। इन भक्ति साधनाओं में कोई भी एक साधना को श्रद्धा एवं भक्ति के साथ पालन करने से पराभक्ति की प्राप्ति होगी, भगवान का चिरन्तन स्मृति, उनके लीलागान, उनके अवतार की कहानियों का श्रवण करने से पाप मिट जाते हैं।

भगवद्भक्ति करने के लिए सभी लोग (जातिगत, वर्गगत, भेदभाव के बिना) साधन कर सकते हैं लेकिन सभी लोग पराभक्ति को प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसे लोग फिर जन्म लेकर और अपनी भक्ति साधनों के माध्यम से मुक्ति पाते है।

भक्ति साधक को शरीर, मन दोनों को वश में रखकर जीवन बिताना है। स्थूल शरीर को वश में जाने की कोशिश करेंगे तो सूक्ष्म मन पर भी वह विजय पा सकता है। अपनी मनोनुभूतियों को वश में रखने के लिए मनुष्य को अभ्यास करना चाहिए। गीता में भी श्रीकृष्ण कहते है अभ्यास के द्वारा मन का नियंत्रण संभव है।

"असंशयं महाबाहो, मनोदुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेनतु कौन्तेयः वैराग्येण च गुह्यते।(165)

मन चंचल है। उसको वश में रखना कठिन है। लेकिन साधना या अभ्यास के द्वारा मन को नियंत्रण कर सकते है। भक्ति साधना के लिए बल याने आत्मिक बल की आवश्यकता है। "नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः

शारीरिक बल के साथ मानसिक बल जिसके पास होता है वहीं पूर्ण आत्म साधक है। (166) भक्ति साधन में शांडिल्य ज्ञान और योग को भी प्रधानता देते हैं। उन्होंने ज्ञान को भक्ति का अंग, पराभक्ति प्राप्ति की साधनों के अंतर्गत स्वीकार किया है। (167) नारद के अनुसार भक्ति–साधक केलिए अहिंसा, शौच, सत्य, दया, आस्तिकता आदि सदाचारों को भलीभाँति पालन करना बहुत आवश्यक है। (168)

13. भक्तों के भेद :–

भगवान के प्रति–भक्ति को आधार बनाकर भक्तों के भी कई विभाग किये जा सकते हैं। भक्त तीन प्रकार के होते है –

1. पहला भक्त प्रपंच को सत्य ही समझता है, वह प्राकृत भगवद् भक्त होता है।
2. दूसरा प्रपंच (जगत्) को मिथ्या और केवल भगवान को ही सत्य मानता है। वह मध्यम श्रेष्ठ भगवद्भक्त है।

3. तीसरा वह है जिसे दोनां प्रकार से (असत् (या) सत् रूप से) प्रापंचिक ज्ञान होता ही नहीं, वही उत्तम भक्त है। लेकिन भगवान के प्रति रखी गयी भक्ति के आधार पर विभाजन किया जा सकता है।

भगवद्गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन किया गया है।

> "चतुर्विधा भजन्तेमां जनाः सुकृतिनार्जुन।
> आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।
> तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्ति र्विशिष्यते।
> प्रियोहि ज्ञाननोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः (169)

कृष्ण कहते हैं "पुण्यकर्म करनेवाले लोग वही मेरी आराधना करते हैं वे चार प्रचार के है –

1. <u>आर्त</u> :–

अपने बाधाओं को दूर करने केलिए प्रार्थना करनेवाले (उदा : द्रौपदी, गजेन्द्र आदि)

2. <u>जिज्ञासु</u> :–

ज्ञान की आकांक्षा करनेवाले याने मोक्ष के साधक (उदा : मुनि, तपस्वी)

3. <u>अर्थार्थी</u> :–

प्रापंचिक वैभव अर्थात्, ऐश्वर्य, अधिकारी, कीर्ति के आकांक्षी (उदाः ध्रुव)

4. <u>ज्ञानी</u> :–

साधना के बाद की स्थिति प्राप्त साधु जो जीवन्मुक्त है। (उदा : प्रह्लाद, नारद, विभीषण, व्यास, शुक, भीष्म आदि)

उत्तम भक्त के लक्षण गीता में भगवान कृष्ण द्वारा बताये गये हैं। (170) जो जन पूर्ण श्रद्धा भाव से पूर्ण मन भगवान को समर्पित करते हैं वे ही भक्ताग्रेसर हैं(171) गीता में रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण आदि के आधार पर भी भक्ति के प्रकार बताये गये हैं। (172) राजसी भक्ति में परमात्मा दण्ड द्वारा अनुग्रहीत करते हैं। आर्त, तामसी भक्ति का अधिकारी है, स्त्री, वैश्य, शूद्र – ये सभी तामसी भक्ति के अधिकारी हैं। जिज्ञासु मिश्रित भक्ति का अधिकारी है। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। (173) जिज्ञासु द्वारा काम–क्रोधादि चित्त की वृत्तियाँ का निरोध हो जाता है, अशांत शांत होकर अज्ञान ज्ञान में परिवर्तित होकर चित्त को ईश्वर से साकार होने देता है।

गीता के उपदेशों के सार को निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि जो जन अपने मन, तन, धन से उस अलौकिक पूर्ण तेजस्वी भगवान को समर्पित करें और सांसारिक विषयों की आसक्तियों से परे रहें, वे ही आत्मानंद पा सकते हैं। जिस व्यक्ति ने आत्मानंद पा लिया है वही स्थितप्रज्ञ है। वह सुख–दुःख से राग–द्वेष से परे रहता है। उसका मन हमेशा परमात्मा से तादात्म्य प्राप्त करता है। उसके बारे में गीता में कहा गया है –

"दुःखैष्नु द्विग्नमनाःसुखेषु विगतस्पृहः
वीतरागभय क्रोधः स्थितपीर्मुनिरुश्यते। (174)

उसके लिए परमात्मा सर्वत्र दिखाई देता है। सभी भूतों में समस्त जगत् में वह ईश्वर को ईश्वर तत्व को देखता रहता है। (175)

भगवद्गीता में भावभक्ति का प्रतिपादन भी मिलता है जो जनसुलभ है। अनन्य भक्ति पर बल देकर भी कृष्ण कहते हैं (176)

"तुम्हारा मन मुझ पर अर्पित करो। संपूर्ण समर्पण भाव के साथ भक्ति से मेरी वन्दना करो और मुझे प्राप्त करो।"

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि उन्हें भक्त द्वारा पवित्र प्रेम से दिये गये पत्र (या) पुष्प कुछ भी हो, इष्ट होता है।

पत्रं पुष्पं फल तोयं, योमेभक्त्या प्रयच्छति
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः। (177)

श्रीकृष्ण का कहना है कि परिपूर्ण प्रेम के साथ, पवित्र हृदय से पूर्ण भक्ति के साथ देनेवाली वस्तु जितनी भी छोटी क्यों न हो, भगवान के लिए अत्यंत प्रिय है क्योंकि भगवान भाव के भूखे है, चीज़ों के नहीं।

इस प्रकार भगवद्गीता में भक्ति के प्रकार, उत्तम भक्ति के लक्षण, भक्ताग्रेसर के लक्षण आदि के वर्णन यत्र–तत्र मिलते है। भगवद्गीता भक्ति रस से पूर्ण, प्रेमजन्य भक्ति की प्रधानता दिखानेवाली परम पवित्र उत्कृष्ट रचना है जहाँ श्रीकृष्ण परमात्मा ने अपने भक्तजनों के लिए प्रेम की महिमा, भक्ति की महिमा आदि का वर्णन स्वयं किया है।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार भक्ति भारत की प्राचीनतम उपलब्धि है। आरंभ से ही भारत में भक्ति साहित्य प्राचुर्य रहा है। भक्ति का जन्म भारत में कहाँ और कब हुआ यह कहना कठिन हैं। ईश्वर के प्रति जो अव्यक्त, असीम अनुराग है वहीं भक्ति है। यांत्रिक जीवन में फँसे हुए मानव अपनी शांति के लिए जिन पद्धतियों को अपनायी हैं और कुछ अपूर्व शक्तियों को पहचाना है उसी में उस विराट के मूलपुरुष को देखा है, उसे भगवान माना है। मानवीय शक्ति से परे उस अलौकि शक्ति की

लीलाओं को महिमाओं को खुद मनुष्य ने अनुभव किया है और उस देवत्व के सामने अपनासिर झुकाकर हार मान लिया है। उसका दूसरा नाम भगवान है।

दूसरे शब्दों में भक्ति एक अलौकिक आनंदानुभूति है जो अव्यक्त है, असंप्रेषणीय है, रहस्यानुभूति है। नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति को परम प्रेमस्वरूपा अमृत स्वरूपा के रूप में बताया तो शांडिल्य मुनि ने उसे ईश्वर के प्रति अनुरक्ति के रूप में।

⇒1. भक्ति के स्वरूप, व्याख्या, लक्षण, प्रकार आदि का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष पर पहुँचाया जा सकते हैं कि भक्ति वहीं है कि शुद्ध आत्मा के साथ उस अलौकिक परमात्मा पर रखा गया परम प्रेम। उसके लिए जाति–पाँति, स्त्री–पुरुष, अमीर–गरीब आदि के भेद भाव नहीं। दूसरों को अनजाने में भी किसी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना, सभी को समदृष्टि से पूर्ण प्रेम से देखकर समदर्शन भाव से रहना। भक्ति एक तन्मयावस्था है जिसे प्राप्त करने के बाद मनुष्य का मन परमशान्त हो जाता है। उसे कोई मित्र न होता है, न शत्रु। न राग, न द्वेष वह मन में रखता है। दुनिया की प्रत्येक सृष्टि में वह अपने आराध्य की छाया को देखता है।

⇒2. इसी भक्ति भावना को अपने स्वानुभव से प्राप्त करके तमिल के कृष्ण भक्त सन्त आलवार तल्लीनता के साथ जो गीत गाये थे, वहीं अमर गीति–साहित्य का आधार स्तंभ है।

⇒3. नारद ने भक्ति को परम प्रेमस्वरूपा कहा है तो शांडिल्य ने ईश्वर के प्रति दिखाये गये परम अनुरक्ति को भक्ति कहा है। भगवान के प्रति दिखानेवोली श्रद्धा की ओर यह संकेत है।

⇒4. 'भागवत्' में तो भक्ति की इतनी श्रेष्ठ व्याख्या दी गयी है कि उपासना में सुख देनेवाली भगवान के सामिप्य देनेवाली परम अनुरक्ति ही भक्ति है, जिसके सामने सालोक्य, सायुज्य सामीप्य, सारूप्य भी हेय (तुच्छ) है।

⇒5. गीता में भी पवित्र भक्ति के संबंध में कहा गया है कि वह निष्काम रूपा है। भक्ति को लेकर मनुष्य सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करता है और जीवन में तृप्त हो जाता है। उसमें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं होती। उसमें शोक द्वेष भावनाएँ नहीं होती और नहीं उत्साह। अर्थात् वह रागद्वेष से परे विरागी बनकर पूर्णज्ञानी हो जाता है। भक्ति में अनन्यता के कारण पूर्ण समर्पण–भावना आ जाती है।

⇒6. हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य तमिल आलवार साहिम्य में वर्णित भक्ति की व्याख्याएँ भागवत से ज्यादा साम्य रखती हैं। भक्ताग्रेसर सूरदास को तो भक्ति एक सुखानुभूति प्रदत्त करनेवाली है, भक्ति के बिना उन्हें अन्यत्र सुख नहीं मिलता।

सूर को तो भक्ति द्वारा मिलनेवाले आनंद के सामने जप, तप, तीर्थयात्रा आदि तुच्छ हैं। आलवार के प्रबन्धम में इसी भावना दीखती है। विष्णुभक्त तोंडरडिप्पोड़ि आलवार को अपने आराध्य के गुणगान गाने में सुख के सामने इन्द्र सिंहासन भी तुच्छ है।

विभिन्न भाषा साहित्यकारों ने भक्ति शास्त्र का अध्ययन करके भगवान पर भक्ति नहीं दिखाई, सहज भावना से अपने उपास्य पर असीम प्रेम के कारण अनायास ही उनके मुँह से हृदय से गहन अनुभूतियाँ फूट पड़ीं। उनको उन्होंने वाणी देकर गाये थे, वहीं उनका गेय–साहित्य बन गया था। भारत देश में जितनी भी भाषाएँ हैं उन सब में भक्ति–साहित्य यथेष्ट रूप से विद्यमान है।

हिंदी व तमिल कृष्ण भक्त कवियों द्वारा प्राप्त साहित्य गीति–साहित्य भी यही है। इसका कारण यह है कि इन कवियों ने अपनी हृदयानुभूतियों को राग,लय,ताल और तन्मयता के साथ भगवान के सामने गीत गाये थे।

⇒7. इन दोनों का लक्ष्य साहित्य के विकास कराने का नहीं बल्कि भगवान से तादात्म्य पाना ही रहा। ऐसे गाने से उनके मन में एक ऐसा स्वानुभव या एक ऐसी आनंदानुभूति का उद्‌भव हुआ जो अवर्णनीय है। दूसरा कारण यह है कि जो भी विषय गीतों के माध्यम से बताया जाता है तब वहसदा जन सुलभ एवं जनरंजक बनता है। इसीजिए गीतों से पूर्ण कृष्ण भक्ति साहित्य सदा जनरंजक साहित्य है, चाहे सूरदास, मीराबाई या प्रबन्धम् के कवि, कन्नड़ के प्रसिद्ध भक्त कवि पुरंदरदास, तेलुगु के त्यागराज, अन्नमाचार्य आदि के पद गेय–साहित्य के तहत ही आते हैं

⇒8. इन लोगों ने अपनी मधुर श्रव्य वाणी के माध्यम से शब्दोपासना एवं नादोपासना भी की। इन कवियों की भावानुभूतियों का फल है पद याने शब्दगत गाने योग्य गेय–साहित्य। इन कवियों ने जान बूझकर अपना साहित्य प्रदर्शित करने केलिए नहीं रचा बल्कि अपने प्रियतम भगवान से, उनके लीलागान से प्राप्त हृदयानुभूतियों को प्रकट करने के लिए रचा। कोई भी भक्त कवि विशेष भक्ति शास्त्र या भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन करके भगवान पर भक्ति नहीं रखता है, बल्कि अपने मन की अव्यक्त अनुभूतियों को भावोद्‌गारों को वाणी देता है। वे इन प्रामाणिक रचनाओं से साम्य रखती है। हमारे कंठ से निकालनेवाली ध्वनि 'ऊँ' के लिए भी अपनी महिमा है। अपने उपासक के प्रति कवि आकृष्ट होकर दीन, हीन बनकर उनकी करुणा के लिए तड़पते हुए जो पद उन्होंने गाये थे, वे उनकी शब्दोपासना, नादोपासना के उत्कृष्ट उदाहरण है। सृष्टिकर्ता, अलौकिक, सर्वव्यापी भगवान द्वारा रची गयी सुन्दर प्रकृति में अपने विराट उपास्य को देखने की चेष्टा

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, प्रथम भाग, तृतीय खण्ड, प. बलदेव उपाध्याय, पृ. 420

2. महाभाग्याद्देवतायाः एक एव आत्मा बहुधास्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यांगानि गवन्ति।।
निरुक्त 7/4/83, 9.वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई

3. बृहत् देवता अध्याय – 2, श्लोक 62, 65 हार्वड ओरियन्अल सीरीज़, हार्वर्ड

4. ऋग्वेद 2, 156 मंत्र, 2, 2/174/2 2/254/3, 2/25/19, 8/44/23

5. ऋग्वेद, 2/22/27, 2/22/20 (विष्णु के प्रति), 2/1114, 2/33 (रुद्र के प्रति

6. यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यार्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मनः। श्वेताश्वतरापनिषद – 6–231

7. ऋग्वेद प्रथमाष्ट के प्रथम अध्याय ऋचा (8)

8. सुरूप कृत्नुमूतये सुदुघुमित गोदुहे
जुहु मसिधविधवि – ऋग्वेद चतुर्थ सूत्र पृ. 17

9. ऋग्वेद : पंचविशम् सूक्तम 275 – ऋचा 7, पृ. 275
(1). ऋग्वेद : चतुर्विश सूक्तम 254 – ऋचा 1 पृ. 136 एकादश सूक्त ऋचा 8 पृ.58
(2) ऋग्वेद : एकत्रिशम् सूक्तम, द्वात्रिशम् सूक्तम पृ. 205, 206

10. ऋग्वेद : नक्कमम् सूक्तम् पृ. 48 ऋचा 1 – 91

11. ऋग्वेद : द्वादशसूक्तम् श्लोक 18 ऋचा 226 पृ. 121

12. ऋग्वेद : दशमम् सूक्तम पृ. 48 ऋचा – 1

13. ऋग्वेद : षष्ठम सूक्तम् – 57 ऋचा– 7 पृ.31

14. ऋग्वेद संहिता : 10–129–2, न मृत्युरासीदमृतं ....

15. ऋग्वेद संहिता – 10–121–1–2, इस सूक्त का पहला मंत्र 10/121/1 अथर्ववेद में ज्यों का त्यों मिलता है। अथर्ववेद संहिता का : 4 सूत्र 2, मंत्र

16. यजुर्वेद संहिता 32/10

17. यर्जुवेद संहिता 32/11

18. यजुर्वेद संहिता 32/116

19. ईशोवास्योपनिषद् श्लोक 6–8, यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यन्ति।
सर्वं भूतूषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

20. कठोपनिषद् – श्लोक – 9

21. मुंडकोपनिषद – श्लोक – 6–10

22. मुंडकोपनिषद – श्लोक – 1

23. मुंडकोपनिषद – श्लोक – 4, 5

24. प्रश्नोपनिषद् – चतुर्थ प्रश्न श्लोक – 11

25. श्वेताश्वतरोपनिषद – 3–11

26. यस्य देवे भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ
तस्यतै कथिती हयर्थाः प्रकाशन्ते महात्मः 1. श्वेताश्वतरोपनिषद – 6.23

27. यस्य देवे भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ
तस्यतै कथिती हयर्थाः प्रकाशन्ते महात्मः 1. श्वेताश्वतरोपनिषद – 6.23

28 वही – 6–18

29. महाभारत, शांति पर्व, अध्याय – 348, श्लोक 82–83

30. राधावल्लभ संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य, विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 16

31. ब्रह्म पुराण अध्याय – 14

32. ब्रह्म पुराण अध्याय – 15

33. ब्रह्म पुराण अध्याय – 18

34. ब्रह्म पुराण अध्याय – 16

35. विष्णु पुराण चौथे अंश, अध्याय 15

36. भागवत – 1.3, 40–42

37. श्रीमद्भागवत् : एकादश स्कंध – 24वे अध्याय

38. भागवत 11–14, 20–25 जो भागवतदर्शन : डॉ.हरबंशलाल शर्मा, पृ.136 से उधृत

39. भागवत 11–14–16 (3) भागवत नवमस्कंध

40. भागवत नवम स्कंध

41. भागवत नवम स्कंध अध्याय 4–63–68, अंबरीषोपाख्यान

42. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 10 श्लोक 20

43. भागवत प्रथम स्कंध अध्याय 2 श्लोक 18 से 22

44. भागवत पंचम अध्याय 6 श्लोक 18

45. भागवत महात्म्य अध्याय श्लोक 45

46. भागवत 3.29, 7–12

47. भागवत तृतीय स्कंध अध्याय 29 श्लोक 7 से 14 तक

48. भगवद्गीता–अध्याय – 2 श्लोक 5

49. भागवत– 2–5–51, प्रथम स्कंध

50. भागवत 11–6–44, बारहवाँ स्कंध जो भागवत् दर्शन से उद्धृत है।

51. भागवत – षष्ठम स्कंध

52. भागवत – सप्तम स्कंध

53. भागवत – दशम स्कंध

54. भागवत – एकादश स्कंध

55. श्रीमद्भागवत् – 1, 3.27

56. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं साख्यमात्म निवेदनम।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षण
क्रियते भगवत्यद्धा तन्यो धीतमुत्तमम्
भागवत 7.5.23, सप्तम स्कंध, पंचम अध्याय – श्लोक 23 से 34

57. भागवत – एकादश स्कंध – अध्याय 14

58. न म्रूयावेचित्याम् कामः कामायकल्पेत
भर्जिताक्वतिता दानाः प्रायोबीजाय नेष्यते। – भागवत, 10–22–28

59. भागवत – 1–2–17

60. श्रीमद् भागवत – 11–12–2

61. भगवद्गीता – 4–39, पृ.सं. 95

62. भगवद्गीता – 8–14

63. भगवद्गीता – 9–14–15

64. सततम कीर्तयन्तोमां, यततंश्च दृढव्रता
    नमास्यतंश्च मां भक्तया, नित्यायुक्ता उपासते।।
    ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते
    एकत्वेन पृथ्कत्वैन, बहुधा विश्वतोमुखम् – अध्याय 8–14, 15

65. गीता अध्याय 18, श्लोक 65

66. भगवद्गीता – अध्याय 9, श्लोक 30, 31, 101–105

67. भगवद्गीता – 11–54

68. सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा – ना.भ.सू. श्लोक 1, प्रथम अध्याय

69. अमृत स्वरूपा च – ना.भ.सू. श्लोक 2

70. यथा व्रजगोपिकानाम् – ना.भ.सू. श्लोक 21, पृ.सं. 6

71. यत् प्राप्य न किञ्चित् वाञ्छति, न शोचति
    न द्वेष्टि न रमते, नोत्माही भवति, ना.भ.सू. श्लोक 5, पृ. सं. 2

72. अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्ययता। ना.भ.सू. 10

73. लोकेऽपि भगवद् गुण श्रवण कीर्तनात् – ना.भ.सू. श्लोक 37, पृ.सं.10

74. यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मायमो भवति – ना.भ.सू. श्लोक 6, पृ.सं.2

75. पेयरे एणक्कुयावरुम्, याणुमूर
    पेयणे एवर्कुम् इटु पेचियेण
    आयणें अरंगा एण्रैळैक्किरेण्
    पेयणायालि़ एणबिराणुक्के। – कुलशेखर आल़वार

76. सा न कामयमाना, विरोध रूपात्वात् – ना.भ.सू. 7

77. कथादिष्विति गर्ग : – ना.भ.सू. 17

78. नारदस्तु तदर्पिताखिला चारता तद्विस्मरणे
    परमव्याकुल तेति (च) – – ना.भ.सू. 17, पृ.सं. 5

79. तदर्पिता खिलाचार : सन् कामक्रोधाभिमानादिक
    तस्मिन्नेव करणीयत् – ना.भ.सू. 65, पृ.सं. 18

80. सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा – – ना.भ.सू. 25, पृ.सं. 7

81. स्वयं फलरूपतेति ब्रह्म कुमार – ना.भ.सू. 30, पृ.सं. 8

82. अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् – ना.भ.सू. 51

93. मूकास्वादनवत् – ना.भ.सू. 52

84. गुणरहितं कामनारहितं, प्रतिक्षणवर्धनमानं
अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम् – ना.भ.सू. 54

85. तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति
(तदेव भाषयति), तदेव चिन्तयति – ना.भ.सू. 55

86. प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात, स्वयं प्रमाणत्वात् – – ना.भ.सू. 59

87. फल रूपात्वात – ना.भ.सू. 26

88. भक्ति : परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्रशैषत्रिक एक कालः
प्रपत्यमानस्य यदास्नत्युस तुष्टि :, पुष्टि : श्रुद्पायोनुखासम्
– भागवत – 11.2.42

89. ईश्वरतुष्टेरेकोऽपि बली – शांडिल्य भक्ति सूत्र 63, पृ.सं. 119

90. नाहिं निपुण तारा दर्शनेनपि उपाधि योगी
स्फटि काला हित्याभिरामा – निवृत्ति रस्ति
– शांडिल्य भक्ति सूत्र – स्वप्नेश्वर भाष्य परिचय – पृ.सं. 34

91. सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे – शांडिल्य भक्ति सूत्र –2 – पृ.सं. 13

92. ज्ञान मिति चेन्न, द्विषतोऽपि ज्ञानस्य तदसंस्थिते – शां.भ.सू. 4, पृ.सं. 18

93. तयोपक्ष याच्य – शां.भ.सू. 5, पृ.सं. 20

94. द्वेषप्रतिपक्ष भावाद्रस शब्दाच्च राग : शां.भ.सू. 6, पृ.सं. 24

95. न क्रिया कृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत् – शां.भ.सू. 8, पृ.सं. 30

96. अतएव तदभावाद्वल्लवीनाम् – शां.भ.सू. 14, पृ.सं. 42

97. ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात्, शां.भ.सू. 26

98. स्मृति कीर्त्यौं : कथादेश्चार्ता प्रायश्चित भावात – शां.भ.सू. 74, पृ.सं. 141

99. पत्रादेदानिमन्यथा हि वैशिष्ट्यम् – शां.भ.सू. 70, पृ.सं. 133

100. ईश्वरतुष्टे कोपि बली – शां.भ.सू. 4, पृ.सं. 63

101. पादोदकं तु पाद्यमण्याप्ते – शां.भ.सू. 67, पृ.सं. 127

102. तद्यजिः पूजायामितरेषां – नैवम् – शां.भ.सू. 66, पृ.सं. 124

103. परां कृत्वैव सर्वेषां तथा ह्याह – शां.भ.सू. 84, पृ.सं. 164

104. सैकान्त भावो गीतार्थ प्रत्य भिज्ञात् – शां.भ.सू. 83, पृ.सं. 163

105. अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकम्मद्यिनावृतम्
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।
भक्ति रसामृत सिन्धु – श्लोक – 11

106. क्लेशाघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्ल्लभा
सान्द्रानन्द विशेषात्मा – श्रीकृष्णाकर्षणी च सा
भक्ति रसामृत सिन्धु – श्लोक – 13

107. पूजा दिष्वनुराग इति पाराशर्य : – ना.भ.सू. 16

108. कथा दिष्विति गर्गः – ना.भ.सू. 17

109. नारदस्तु तदर्पिताखिला चारता
तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति च – ना.भ.सू. 19

110. सा परानुरक्तिरीश्वरे – शां. भ.सू. 2

111. भक्तिरसामृत सिन्धु : प्रथम सामान्य भक्ति लहरी – श्लोक – 12

112. हिंदी भक्ति रसामृत सिन्धु – आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि

113. यत् शात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मा रामोा भवति
– ना.भ.सू. 6, पृ.सं. 2 – स्वामित्यागिसानंद (संपादक)

114. गुण रहितं कामना रहितं, प्रतिक्षण वर्धमानं
अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभव रूपम् – – ना.भ.सू. 54, पृ.सं. 14

115. तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति
(तदेव भाष्यति), तदेव चिन्तयति – – ना.भ.सू. 54, पृ.सं. 14

116. नास्ति तेषु जाति विद्या रूप–कुल–धन–क्रियादि भेदः –ना.भ.सू. 72, पृ.सं.

117. यतस्तदीयाः – ना.भ.सू. 73

118. शांति रूपात् परमानंद रूपाच्य – ना.भ.सू. 60, पृ.सं. 116

119. लोक हानौ चिन्ता न कार्या : निवेदितात्मलोक वेद (शील) त्वात्
– ना.भ.सू. 16, पृ.सं. 16

120. नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता
तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति (च) – ना.भ.सू. 19, पृ.सं. 5

121. न त (द) त्सिद्धौ लोकव्यवहारो हेय : किन्तु फल त्याग : तत्साधनं च (कार्यमेव) – ना.भ.सू. 62, पृ.सं. 17

122. यथा ब्रज गोपिकानाम् – ना.भ.सू. 21, पृ.सं. 6

123. तद्वहीनं जाराणामिव – ना.भ.सू. 23, पृ.सं. 7

124. नास्तथेव तस्मिन् तत्सुखसुखित्वम् – ना.भ.सू. 24, पृ.सं. 7

125. योगसूत्र – पतंजलि – संख्या 2.7

126. तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोक वल्लिड्.गेभ्यः – शा.भ.सू. 43, पृ.सं. 86

127. शाडिल्य भक्ति सूत्र – 44, पृ.सं. 87

128. भक्ति रसायन ग्रन्थ – श्रीमधुसूदन सरस्वती – पृ.सं.

129. भक्तियोग विलक्कम् – स्वामि विवेकानंद (तमिल)
सटीक विवरण : श्रीमद्स्वामी चिद्भवानंद

130. श्रीमद्भगवद्गीता – अध्याय 12 – श्लोक 18, 19

131. सर्वभूतस्तमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनम् – गीता अध्याय – 6, श्लोक 29

132. गौणी त्रिधागुणभेदात् आर्तादि भेदादा – ना.भ.सू. 56

133. पांचरात्र पृष्ठ 34 जो हिंदीस सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका रामनरेश शर्मा से उद्धृत है।

134. भक्तिरसामृत सिन्धु – पृ.सं. 7

135. पोषणं तदनुग्रह : भाग 21, 014

136. पं. रामचंद्रशुक्ल – सूरदास – पृ.सं. 106–107

137. हरि भक्ति : पूर्व विभाग लहरी 2 / श्लोक 1

138. हरि भक्ति : पूर्व विभाग : दुर्गम पृ.सं. 23, लहरी 2 / श्लोक 1

139. –वही –

140. वही – लहरी, 2, श्लोक 60

141. वही – लहरी, 2, श्लोक 75

142. हरिभक्ति दुर्गम – पृ.सं. 60

143. हरिभक्ति दक्षिण विभाग लहरी 2 / श्लोक 60
144. हरिभक्ति पूर्व लहरी श्लोक – 4/2
145. हरिभक्ति पूर्व लहरी 4 श्लोक 2
146. भागवत् दर्शन 5, पं.बलदेव उपाध्याय पृ.सं. 487–488
147. भगद्गीता – अध्याय 7 श्लोक 16
148. भागवत दर्शन – डॉ.हरिबंशलाल शर्मा – पृ.सं. 140
149. श्रीमद्भागवत तृतीय स्कंध 29 अध्याय श्लोक 7–10
150. भगवद्गीता – 17 – 2 अध्याय – 17 श्लोक, 3,4
151. भागवत् सप्तम स्कंध पंचम अध्याय श्लोक 23,24
152. नारद भक्ति सूत्र 82
153. नारद भक्ति सूत्र 49
154. नारद भक्ति सूत्र 34
155. नारद भक्ति सूत्र 35
156. नारद भक्ति सूत्र 37
157. महत्सङ.गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्र – ना.भ.सू. 39
158. लभ्यतेऽपि तत्कृप्यैव – ना.भ.सू. 40
159. तस्मिमस्तज्जने भेदाभावात – सू. 41
160. भक्तियोग विलक्कम – स्वामी विवेकानंद (तमिल)
व्याख्या – श्रीमद् स्वामी चिद्भवानंद
161. संस्था : शब्दः छान्दोग्य उपनिषद् में
ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति (2.32.2)
शांडिल्य के अनुसार वहीं भक्ति हैं – शां.भ.सू. 3
162. शांडिल्य भक्ति सूत्र – 44
163. भगवद्गीता – अध्याय 9
164. शांडिल्य भक्ति सूत्र – 66
165. भगवद्गीता अध्याय – 6, श्लोक 35

166. भक्तियोग विलक्कम् – तमिल – पृ.सं. 40

167. योगस्तूभयार्थमपेक्षणात् प्रयाजवत् – शा.भ.सूत्र 19
स्वप्नेश्वर भाष्य के साथ – स्वामी हर्षानंद पृ.सं. 51

168. अहिंसा सत्य शौच दया स्तिक्यादि चारित्र्याणि परिपालनीयानि
ना.भ.सूत्र 78, स्वामी त्यागीसानंद भाष्य

169. भगवद्गीता अध्याय – 7 – 16

170. गीता अध्याय – 11–15, 16, 17

171. भगवद्गीता – 12 – 2

172. वहीं गीता – 14, श्लोक 7,8,9

173. योगश्चित्तवृत्तिनिरोध : योग सूत्र 112 जो गीता गूढार्थ दीपिका का तात्विक विमर्श से उद्धृत है।

174. भगवद्गीता – अध्याय 2, श्लोक 56

175. भगवद्गीता – अध्याय 6, श्लोक 29

176. भगवद्गीता – अध्याय 9–33

177. भगवद्गीता – अध्याय 9, श्लोक 26

अध्याय – दो

अध्याय – दो

हिंदी और तमिल के कृष्ण भक्त कवि

प्रस्तावना

1. प्राचीन हिंदी साहित्य में कृष्ण चरित
2. मध्यकालीन हिंदी कृष्ण भक्त कवि
3. अष्टछाप के कवियों का प्रेरणास्रोत : पष्टि–मार्ग
4. अष्टछाप के कवि
    - 4.1. अष्टछाप के प्रमुख कवि : सूरदास
    - 4.2. अष्टछाप के अन्य कवि
5. मुसलमान कृष्ण भक्त कवि : रसखान
6. संप्रदाय निरपेक्ष भक्त कवयित्री : मीराबाई
7. मध्यकाल के अन्य कृष्ण भक्त कवि और उनका काव्य
8. तमिल में कृष्ण भक्ति साहित्य
9. तमिल में आलवार पूर्ववर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य
10. आलवार और उनकी रचनाएँ

निष्कर्ष

अध्याय – दो
हिंदी और तमिल के कृष्ण भक्त कवि

प्रस्तावना :–

भारतीय साहित्य में भक्ति का स्थान सर्वोपरि है। यहीं भक्ति मध्ययुगीन धर्म साधना का आधार स्तंभ बनी रही। भक्ति का जन्म एवं विकास वैदिक परंपरा से होने पर भी उसका भावात्मक विकास 'वैष्णव भक्ति साहित्य से जुड़ा हुआ है। माना जाता है कि वैष्णव धर्म का जन्म प्रायः भारतीय संस्कृतियों के संगमकाल में हुआ है। (1) उसमें सभी धार्मिक सिद्धांतों का समावेश है। 'पांचरात्र', भागवत्धर्म के आधार पर वैष्णव भक्ति पनपने लगी। साथ ही साथ वासुदेव कृष्ण की उपासना से उसे सगुण ब्रह्म का रूप प्राप्त हुआ और उसकी मूर्तिपूजा का विधान भी उसी काल में प्रचलित हुआ। वेदों में वर्णित विष्णु, पांचरात्रों का एकत्व स्थापित भागवत में वर्णित वासुदव श्रीकृष्ण का एकत्व स्थापित हो चुका है। इन सबके उपासकों को 'वैष्णव' के नाम से अभिहित किया जाता है। तदनंतर साहित्य में कृष्ण भक्ति पर बल दिया गया है।

तमिल प्रदेश ही भक्ति साहित्य की आधार भूमि रहा और वैष्णव भक्ति की नींव द्रविड देश से ही लग गयी, 'भक्ति द्राविड़ उपजी .... लाये रामानंद'।

कृष्ण भक्ति की धारा भारतीय वैदिक परंपरा से ही विकसित हो गयी थी। श्रीकृष्ण को अलौकिक परमेश्वर विष्णु के अवतार, लीलाकारी पुरुष, भक्तवत्सल माना गया है। कृष्ण चरित को, कृष्ण महिमा को समझने के लिए भारतीय दार्शनिकता, पुराण, धार्मिक संप्रदायों का ज्ञान आवश्यक है। भारत के मनीषी, मुनिगण, भागवतकार उन्हें ब्रह्म एवं भगवान मानते हैं तो उन्हें साहित्यकार रसनायक के रूप में स्वीकार करते हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्णभक्ति से संबंधित श्लोक इस प्रकार है –

"सर्वे पुंसा पु॰ ॰र्मो यतो भक्तिरधीक्षजे।

अहेतुक्य प्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति।। (2)

मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति हो यह भक्ति निष्कामना से पूर्ण हो, सदा बनी रहनेवाली हो। ऐसी भक्ति से हृदय आनंद स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाता है। यहाँ भी अहेतुक भाव, निरंतरता भाव एवं प्रसादत्व को महत्व दिया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "समूचे भारतीय इतिहास में अपने ढ़ंग का अकले साहित्य है इसी का नाम भक्ति साहित्य है। यह एक नई दुनिया है। (3)

हिंदी के मध्ययुगीन साहित्य में विकसित हुई भक्ति का आधार तमिल प्रदेश के प्राचीन साहित्य में प्रचलित वैष्णव भक्ति ही है। हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति साहित्य प्राचीनकाल आदिकाल से ही प्राप्त है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन, कंस वध, गोपियों के विरह वर्णन आदि विस्तार रूप से आदिकालीन रचनाओं में प्राप्त है। भक्ति हृदय का धर्म है। हृदय के धर्मों में सर्वाधिक व्यापक उदात्त और मानवीय धर्म प्रेम है। वही भक्ति का मूल भाव और भक्ति काव्य का बीज भाव भी है। वह मनुष्य को कुल, जाति, धर्म, संप्रदाय आदि की सीमाओं से ऊपर उठाता है और हर तरह की सत्ता के भय से मुक्त करता है। आगे की पंक्तियों में हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों और तमिल के आलवार भक्त कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय देने का विचार है।

1. प्राचीन हिंदी साहित्य में कृष्णचरित

हिंदी साहित्य में कृष्ण चरित का आरंभ हिंदी के प्रथम महाकाव्य "चंदबरदायी कृत "पृथ्वीराज रासो" के साथ हुआ था। चंदबरदायी ने इसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन 71 छंदों में किया हैं। (4) उसमें दशावतार कथा (द्वितीय समय) के अंतर्गत वर्णित अंश में कृष्ण को प्रधानता देकर कृष्ण चरित का

वर्णन मिलता है। चंदबरदायी के बाद कृष्ण संबंधी कवि के रूप में विद्यापति को देख सकते हैं। यद्यपि विद्यापति को कृष्णभक्त कवि के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है फिर भी उनकी रचनाओं में राधा–कृष्ण के प्रेम वर्णन में वैष्णव भक्ति के प्रधान रस यथेष्ट रूप से मिलते है। विद्यापति पर जयदेव का स्वष्ट प्रभाव है जिन्होंने श्रृंगार एवं हरि स्मरण को एक साथ ही महत्व दिया है। भक्ति के अंतर्गत आनेवाली माधुर्य भक्ति में भगवान को पति या प्रेमी मानकर आत्मा रूपी स्त्री उनसे मिलने के लिए तड़पती रहती है। लौकिक प्रेम की ओर से अलौकिकता का वर्णन मिलता है। विद्यापति द्वारा वर्णित कृष्ण प्रेम पदों में श्रृंगार के संयोग एवं वियोग भाव के नाना चित्र उपलब्ध होते है। विद्यापति में श्रृंगार रस की पुट ज्यादा होने के कारण हर प्रसाद शास्त्री, रामचंद्र शुक्ल, सुभद्रा झा, रामकुमार वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी अादि विद्वानों ने शुद्ध श्रृंगार कवि माना है। (5) हिंदी कृष्ण काव्य परंपरा का विकास भक्तिकाल सन् 1375–1700 तक ज्यादा हुआ था। भक्तिकालीन साहित्य के अनुसार भक्ति मूलतः दो प्रकार की है। 1. निर्गुण भक्ति, 2. सगुण भक्ति। निर्गुण भक्ति के अंतर्गज दो और धाराएँ – ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी – विकसित हो गयी थीं।

भक्ति

निर्गुण ―――――― सगुण ――――

ज्ञानाश्रयी प्रेमाश्रयी — राम कृष्ण

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों को 'सन्तकवि' के नाम से अभिहित किया गया है। दक्षिण में ईसा की छठी शती के आसवास वैष्णव धर्म का प्रभाव उत्तर में पडा। आठवीं शती के दक्षिण के आचार्य 'कुमारिल और शंकराचार्य द्वारा स्थापित अद्वैतवाद का प्रभाव भक्ति साहित्य में पड़ता है। ज्ञानाश्रयी शाखा द्वारा प्रतिपादित

भक्ति उस सर्वव्यापी निराकार, निरंग, निर्गुण अलौकिक परमात्मा की ओर हैं जो ज्ञान गम्य है। 'भगवद्गीता', 'भागवत' में बतायी गयी है कि निर्गुण परब्रह्म की उपासना जन सुलभ केलिए नहीं बल्कि सिद्धियाँ प्राप्त योगी के लिए है। लेकिन इन सन्त कवियों की भक्ति में भारतीयों में सनातन अद्वैतवाद का, विशुद्ध भारतीय दार्शनिकता का प्रभाव है।

नारद, शांडिल्य के भक्तिसूत्रों में वर्णित प्रेमाभक्ति, भागवत में वर्णित माधुर्य भक्ति, दास्यभक्ति आदि संत साहित्य में देखने को मिलती है। लेकिन इनके द्वारा उपासित परब्रह्म निर्गुण निराकार है। वे अवतारवाद पर विश्वास नहीं रखते थे। संत भक्ति काव्य में 1. भक्ति का सर्वोपरि महत्व, 2. नाम महिमा, 3. गुण महिमा, 4. सत्संग, 5. वैराग्य, 6. जाति–पांति के भेदभाव का विरोध, 7. रहस्यवाद, 8. भजन, 9. अलौकिक श्रृंगारिकता आदि जो दक्षिण के आलवार साहित्य में प्राप्त है उन सब का समावेश सन्त साहित्य में यथेष्ट रूप से मिलते है। सन्तकाव्यों में वर्णित भक्ति निष्काम एवं निश्चल हैं। विधिनिषेध के द्वारा मन के शुद्ध हो जाने पर उस में नामस्मरण की भावना आती है जिससे मन सन्तुष्ट होता है, विमल प्रेम उपजता है और उसमें फिर मादकता आती है। दांपत्य प्रेम में आत्म समर्पण की भावना उदित होती है। आत्मसमपर्ण में होनेवाली ब्रह्मानुभूति रहस्यवाद है। इस प्रकार सन्तों के रहस्यवाद में जहाँ एक ओर वैष्णवों के प्रेम का उत्कर्ष है वहाँ दूसरी ओर सूफियों के इश्क की मादकता हैं (6) इस प्रकार की भक्ति में आत्मा को नायिका परमात्मा को नायक माना गया है। निर्गुण भक्ति की एक और धारा रही सूफी (या) प्रेममार्गी शाखा। प्रेममार्गी कवियों द्वारा वर्णित भगवान भी निर्गुण एवं निराकार है। इनकी भक्ति में आत्म समर्पण की प्रधानता है। यह इस्लाम धर्म के सिद्धांतों पर आधारित है। सूफियों के मतानुसार ईश्वर की प्रकृति में – वनस्पति, पशु, पक्षी, जीव आदि में अंग–प्रत्यंग की छाया है। ईश्वर के साथ तादात्म्य का एकमात्र साधन प्रेम है। इनकी भक्ति प्रेममूलक है जो लौकिक (मजाजी से)

अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) की ओर उन्मुख होता है। यह प्रेम निष्काम और निःस्वार्थ है। सूफियों ने ईश्वर को पत्नी के रूप में कल्पना की है और साधक को पति के रूप में, जो विशुद्ध भारतीय दार्शनिकता के विपरीत है। सगुण भक्ति के अंतर्गत भगवान के सरूप सगुण का वर्णन किया गया है, विष्णु के प्रमुख अवतार एवं कृष्ण भक्ति पर बल दिय गया है। रामभक्त कवियों के आराध्य श्रीराम विष्णु के अवतार है परब्रह्म स्वरूप है, लोक रक्षक है, मर्यादा पुरुषोत्तम है। कृष्ण भक्तों के लिए कृष्ण विष्णु के अवतार है, ब्रह्म के प्रतीक है। गोपियाँ जीवात्मा है और कृष्ण परमात्मा है। कृष्ण काव्य में एक अनुपम भक्ति रस है। कृष्ण को लोकरंजक के रूप में देखकर उनकी लीलाओं और नटखट चेष्टाओं का वर्णन कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। रामकाव्य मर्यादावाद से पूर्ण होने के नाते उसमें दास्यभक्ति ही मिलती है लेकिन कृष्णकाव्य में भक्ति की विविध धाराएँ विविध रस के साथ मिलती है। वात्सल्य रस, माधुर्यानुभूति, शांत, श्रृंगार रस मिलते हैं। कृष्ण भक्ति का संबंध सोलहवीं शती में प्रचलित विभिन्न वैष्णव संप्रदायों से है। कृष्ण भक्ति साहित्य पर विशेषतः वल्लभ के पुष्टिमार्ग तथा हितहरिवंश के राधावल्लभी संप्रदाय का प्रभाव पड़ा है।

कृष्ण भक्ति का एक मात्र आधार प्रेम है। इनके प्रेम में प्रवृत्ति और निवृत्ति का एक अद्भुत कलात्मक सामंजस्य हुआ है। कृष्ण के प्रति किया गया प्रेम रति है जो भक्तों के स्वभाव के अनुसार है। यह प्रेम भक्तों में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य इन तीनों रूपों को धारण कर लेता है। प्रेम का चरम रूप माधुर्यमयी भक्ति में है। गोपियों के प्रेम में विधि–निषेध, कर्मकांड का महत्व नहीं। पवित्र प्रेम का आधिक्य है। कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति में भक्ति के प्रमुख तत्व 1. प्रेम, 2. सेवा, 3. माहात्म्य ज्ञान, 4. नैरन्तर्य (या) अविच्छिन्नता, 5. अनन्यता, 6. शरणागति (या) प्रपत्ति आदि मिलने पर भी उसमें प्रेम से पूर्ण भक्ति को ज्यादा महत्व दिया गया है। कृष्ण भक्ति में निर्गुण भक्ति का समर्पण एवं रहस्यात्मकता, रामभक्ति,

वैष्णभक्ति की दास्यभावना आदि मिलते है। भागवत् में वर्णित नवधाभक्ति, नारद, शांडिल्य सूत्रों में वर्णित पराभक्ति यथेष्ट रूप से कृष्णभक्ति साहित्य की प्रवृत्तियों में मिलती है। कृष्णभक्ति में प्रधानता दी गयी माधुर्यभक्ति में भक्त आराध्य से रूठकर उस पर प्रश्न उठाने का साहस भी करता है। वह भक्ति एक नारी अपने पति से (या) प्रेमी से रखनेवाली लौकिक प्रेम पर आधारित है। सेवक स्वामि पर विनय, श्रद्धा, भक्ति ही रख सकता है जबकि प्रिय प्रिय के समस्त कार्यो की अधिकारिणी बनती है। यहीं माधुर्यभक्ति की विशिष्टता है जो कृष्णभक्ति का प्रमुख आधार भी है। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर अपने प्रियतम भगवान कृष्ण को अपना प्रेमी मानकर उस पर पवित्र प्रेम वर्षा बरसाना, उसके प्रेम में विह्वल होकर सुधबुध खो बैठना कृष्ण भक्ति के अंतर्गत आनेवाली माधुर्यभक्ति की विशेषता है। आत्मा रूपी नायिका पुरुष श्री कृष्ण से मिलने के लिए तडपती है। उसको न वासरी सुख है न रैन सुख। उसे विरह जलाता है। विरह विदग्धा नायिका नायक के विरह में विरह की दशों अवस्थाओं का अनुभव करती है। चिंता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मूर्च्छा, मृत्यु आदि विरह की दशाओं को अनुभव करके उनके दर्शन की प्यासी बनकर रहती है। कृष्णभक्ति में इस प्रकार के विरह वर्णन, जो असंप्रेषित हैं देखने को मिलते है। हिंदी कृष्णभक्ति साहित्य वल्लभ के पुष्टि मार्ग पर आधारित है।

2. मध्यकालीन हिंदी कृष्ण भक्त कवि:

हिंदी कृष्णकाव्य को दिन दुगुना–रात चौगुना विकसित करने का श्रेय हिंदी साहित्य के मध्यकालीन में जीवित अष्टछाप को है। अष्टछाप में कृष्ण का लीला गान करनेवाले आठ रसिक एवं भावुक कवियों की गणना होती है, जिन्होंने अपनी मधुर संगीत काव्य–लहरी से कृष्ण भक्ति मार्ग के वातावरण को मनोमुग्धकारी बनाने का सराहनीय कार्य किया। हिंदी में कृष्ण भक्ति साहित्य का बहुत कुछ श्रेय वल्लभाचार्य को है। उन्हीं के द्वारा चलाये हुए पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर अष्टछाप के कवियों ने अत्यन्त मूल्यवान कृष्ण साहित्य की रचना की। वल्लभ

संप्रदाय के अन्तर्गत अष्टछाप के आठ कवियों की मण्डली अष्टशाखा नाम से भी अभिहित हो जाती है। संप्रदाय की दृष्टि से ये आठों कवि भगवान कृष्ण के सखा है। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने सन् 1602 के लगभग अपने पिता के 84 शिष्यों में से चार तथा अपने 242 शिष्यों में से चार को लेकर इन आठ प्रसिद्ध भक्त कवि तथा संगीतज्ञों की मण्डली की स्थापना की। अष्टछाप में महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार प्रसिद्ध शिष्य थे – कुंभनदास, परमानंददास, सूरदास तथा कृष्णदास अधिकारी और गुसाई विट्ठलनाथ के चार शिष्य थे गोविंद स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास तथा नंददास। अष्टछाप के इन कवियों में सबसे जेष्ठ कुंभनदास और सबसे कनिष्ठ नंददास थे। अष्टछाप के ये आठों भक्त समकालीन थे। ये पुष्टि संप्रदाय के श्रेष्ठ कलाकार, संगीतज्ञ और कीर्तनकार थे। ये सभी भक्त अपनी–अपनी पाटी पर श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन सेवा तथा प्रभुलीला संबंधी रचना करते थे। गुसाई विट्ठलनाथ ने इन अष्ट सखाओं पर अपने आशीर्वाद की छाप लगाई, इसलिए इनका नाम अष्टछाप पड़ा।

3. अष्टछाप के कवियों का प्रेरणास्रोतः पृष्टि–मार्ग :

आष्टछाप का प्रेरणास्रोत वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग है। श्री वल्लभाचार्य ने ब्रजमंडल में जिस कृष्ण भक्ति को प्रतिष्ठित किया, उसका दार्शनिक आधार शुद्धाद्वैत – दर्शन है। साधना और व्यावहार क्षेत्र में शुद्धद्वैत दर्शन के साथ जिस भक्ति को स्थान दिया गया, उसका आधार उन्होंने पुष्टिमार्ग को अपनाया भगवद् अनुग्रह या कृपा को 'पुष्टि' कहा जाता है। "पुष्टि किं में? पोषणम्। पोषणं किम्। तद् अनुग्रहः। भगवत्कृपा।" पुष्टि किसे कहते हैं? भगवान के अनुग्रह या कृपा का नाम ही पोषण है, यही पुष्टि है, और इसी पुष्टि पर पुष्टिमार्ग की भक्ति–पद्धति अवलंबित है। श्री वल्लभाचार्य का कथनहै "पुष्टि–भक्ति का अधिकारी वही है, जिसने निस्पृह भगवद् भक्तों में भी ईश्वरेच्छा से ही अंतिम जन्म प्राप्त किया हो।" (7)

श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार प्रेमातिशय निरभिमानता, अहंभाव शून्यता दैन्य आदि भाव से युक्त होकर की जानेवाली भगवद् भक्ति ही पुष्टि–भक्ति है। यह भक्ति प्रभु या गुरु की कृपा के बिना प्राप्य नहीं है। अतएव इसे अनुग्रह मार्ग भी कहते हैं। वल्लभ के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद–स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म है। वे सत्, चित् और आनंद स्वरूप है। वे व्यापक, ना[illegible] रहित, सर्वशक्तिमान, स्वतंत्र सर्वज्ञ, स्वजातीय – विजातीय भेद रहित है और उनके अनंत रूप है। इस जगत के वही निमित्त कारण है और वे संपूर्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय है।

वल्लभ के अनुसार भगवान के अनुग्रह पर निर्भर होकर भी जो मर्यादानुसार कर्म करते हैं, वे मर्यादा पुष्ट भक्त है और जो केवल अनुग्रह (कृपा) का अवलंबन लेते हैं वे शुद्ध पुष्ट भक्त हैं। वल्लभाचार्य ने भक्तों के चार भेद किये हैं – प्रवाहीपुष्ट, मर्यादा–पुष्ट, पुष्टि पुष्ट भक्त, शुद्ध पुष्ट भक्त – पुष्टि मार्ग में जीवात्मा अंश और परमात्मा अंशी है। धर्म और धर्मी–प्रभु को मानकर प्रभु की उपासना को उनकी प्रसन्नता का कारण इस मार्ग में निरूपित किया गया है।

पुष्टि भक्ति के अनुसार – पुष्टि भक्त को भगवान कृपा करके अपने स्वरूप का दान करते हैं। अतएव ऐसे कृपा पात्र जीव का कर्तव्य है कि वह भगवान की सेवा ही करें। प्रभु के सुख का विचार करना ही कृपा भाजन जीव का परम कर्तव्य है और यही पुष्टि भक्ति की परिभाषा है। समर्पणीय वस्तु का ज्ञान भागवत सेवा का प्रधान अंश है। श्री वल्लभाचार्यजी के अनुसार – भगवान पुष्टि भक्तों को कृतार्थ करने के लिए बाल, पुत्र, सखा आदि भावों की लीला करते हैं। यदि भक्त में माहात्म्य ज्ञान हो तो तत्द् भावों की लीला नहीं हो सकती। अतः भगवान भक्त हृदय से माहात्म्य ज्ञान पूर्ति के लिए प्रेम लक्षणा पुष्टि भक्ति में भगवदनुग्रह ही नियामक है।

पुष्टि भक्ति साधन–साध्य नहीं है, अपितु भगवान जिसे अंगीकार करते हैं, उसी के द्वारा शक्य है। अंगीकार करते समय भगवान योग्य अयोग्य का विचार नहीं करते। इस प्रकार पुष्टि भक्ति में भगवान का किया हुआ वरण ही मुख्य माना जाता है और इसमें भजनान्द रसिक दैवी–जीव ही ग्राह्य होते है।

पुष्टि भक्ति के अनुसार – 'जीव को अपनी प्रत्येक कृति में भगवद् इच्छा को नियामक मान प्रपञ्च के प्रत्येक पदार्थ से ममत्व हटाकर भगवत्स्वरूप की ही भावना करनी चाहिए। (8)

पुष्टि मार्ग में वेद, श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता को प्रमाण ग्रंथ माना गया है। श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ जीव ही पराभक्ति (पुष्टि–भक्ति) का अधिकारी होता है। वहीं भगवान के स्वरूप को तत्वतः जानता है और स्वरूपानंद का उपभोग करता है। श्रीवल्लभाचार्य जी ने भी यही बात पुष्टि भक्त के लिए मान्य की है। (9) वल्लभाचार्य के अनुसार – पुष्टि भक्ति का अधिकारी वहीं है, जिसने निःस्पृह भगवद् भक्तों में भी ईश्वरेच्छा से ही अंतिम जन्म प्राप्त किया हो। (10)

4. अष्टछाप के कवि :

i. अष्टछाप के प्रमुख कवि : सूरदास :

सूरदास हिंदी के अमर कवि है, बाबू श्यामसुन्दर दास ने सूरदास का परिचय यों कराया है – वल्लभाचार्य के शिष्यों में सर्वप्रथम 'सूरसागर' के रचयिता, हिंदी के अमर कवि महात्मा सूर हुए जिनकी सर वाणी से देश के असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और मग्नाशा जनता को जीने का नवीन उत्साह मिला। (11)

सूरदास ने श्रीमद्भागवत् के आधार पर कृष्ण संबंधी अनेक पदों की रचना की थी जिनकी संख्या सवा लाख बताई जाती है। उनके जीवन काल में ही

असंख्य पद सागर कहलाने लगे जो कि बाद में संग्रहीत होकर सूरसागर कहलाने लगे। परन्तु अब 'सूरसागर' के चार–पांच हजार पद प्राप्त है। इसके अतिरिक्त काशी नागरी प्रचारिणी सभा की अनुसंधान विवरण पत्रिका और आधुनिक विद्वानों की खोज के अनुसार सूर प्रणीत चौबीस ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। इन में साहित्य लहरी और 'सूरसारावली' आदि उल्लेखनीय है। सूरदास के इन दोनों ग्रंथों की प्रामाणिकता विवादास्वद है।(12)

पुष्टि भक्ति की प्राप्ति का साधन नवधा भक्ति को माना गया है। नवधाभक्ति के क्रमिक साधन से प्रेमलक्षणा पुष्टि भक्ति का उदय होने पर जीव भगवदनुग्रह का अधिकारी बनता है। पुष्टि भक्ति में लीन व्यक्ति देहानुसंधान से परे हटकर वियोग दुःख भोगकर प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करता है।

पुष्टि भक्ति के फलस्वरूप जीव को प्रभु के साथ सम्भाषण, गान, स्मरण आदि करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है तथा अलौकिक सामर्थ्य की भी प्राप्ति हो जाती है। पुष्टि भक्ति को चतुर्था मुक्ति की अपेक्षा नहीं होती, वे तो मुक्ति को अत्यंत निकृष्ट समझते है।

सूर की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टि मार्गीय भक्ति है। इस मार्ग में भगवान के अनुग्रह पर ही बल दिया जाता है। भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिए सूर की भक्ति पद्धति में अनुग्रह की ही प्रधानता है – ज्ञान, योग, कर्म यहाँ तक कि उपासना भी निरर्थक समझी जाती हैं। सूर के मत के अनुसार भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय भक्ति ही था, और उससे विहीन जीवन उनकी दृष्टि में सूकर–कूकर सदृश सर्वथा हेय था। सूर जानते थे तापत्रय शमन के लिए, कलि–पाप–क्षालन केलिए, हृदय को निर्मल बनाने के लिए, भौतिक संघर्ष जन्य क्लान्ति की निवृत्ति केलिए, आदर्श जीवन की प्राप्ति के लिए भक्ति से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं, अतः उन्होंने भक्ति–पथ का अवलंबन किया।(13) ज्ञान,

वैराग्य और योग द्वारा प्रतिष्ठित भक्तिमार्ग को उन्होंने अतीव सरल बनाया और उसे तथा उसके साधकों को अमित महिमान्वित बनाया। भक्ति को भवसागर पार करने का अमोघ उपाय मानते हुए(14) उन्होंने भवसागर में भ्रमित मन को – पापक्षय तथा मृगमरीचिका के भ्रमनाश के लिए भक्ति में एकाग्र होने की प्रेरणा दी। सूर की भक्ति में जाति–पाँति के लिए कोई स्थान नहीं हैं। (15) न केवल यही अपितु उनके मतानुसार भजन के प्रभाव से नीच भी उच्च पद प्राप्त कर लेता है।(16) और भगवान की दृष्टि में ऊँच–नीच में कोई भेद नहीं है।(17) सूर भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे। सूर के मन पंछी को कृष्ण–शरण के अतिरिक्त न कहीं आश्रय दिखाई देता था और न सन्तोष प्राप्ति का साधन ही। (18) सूर ने वैराग्यपूर्ण भक्ति का प्रतिपादन किया है। (19) इसके लिए सूर ने प्रभु की अमित महत्ता, नाम महिमा का ख्यापन करते हुए तृतीय स्कंध में कपिल–देवहूति संवाद में भक्ति के लिए वैराग्य की आवश्यकता का ज्ञापन करते हुए(20) पुरंजनोपाख्यान में भक्ति और वैराग्य में सम्बंध स्थापित किया है।(21) सूर के भक्ति–वर्णन में वैराग्य को भक्ति का साधक माना गया है, परन्तु योगमार्गियों की उन्होंने अवहेलना सी ही की है। (22) उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भगवद् भजन बिना योगादि क्रियाएँ व्यर्थ है। (23) जाति–पांति संबंधी संत मत का दृष्टिकोण (24), निर्गुण पंथ का विशद विवेचन (25), माया का मिथ्यात्व आदिका सूर ने यत्र–तत्र प्रश्रय दिया है। (26)

यद्यपि सूर ने प्रेमपरक भक्ति के साध्य रूप को ही महत्व दिया है, तथापि उनके सागर में यत्र–तत्र 'वैधी–भक्ति' के उदाहरण भी मिल जाते हैं। गोपियों की प्रेमा भक्ति के माध्यम से सूर ने अपने सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया है।

सूर ने भागवतपरक पुष्टि संप्रदाय के अनुसार नवधा भक्ति के साथ–साथ दशम 'प्रेम लक्षणा भक्ति' को भी जो वल्लभाचार्यजी के अनुसार नवधा भक्ति की साधना का फल है, मान्यता प्रदान की है। (27)

सूरसागर के पंचरत्न (विनय, बालकृष्ण, रूपमाधुरी, मुरलीमाधुरी, भ्रमरगीत) सूर के वैराग्य, वात्सल्य भक्ति, सौंदर्य, वाग्विदग्धता के प्रतीक है। महात्मा सूर की भक्ति भावना वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग पर आधारित है। भगवान की भक्त पर कृपा का नाम ही पोषण है। 'पोषणं तदनुग्रहः। भक्ति के मुख्यतः दो रूप बताये गये हैं – 1. साधन रूप और 2. साध्यरूप । साधन रूपा भक्ति में तो भक्त के लिए 'साधन' करना पड़ता है लेकिन साध्या रूपा भक्ति में भक्त अपना सबकुछ भगवान पर छोड़ते हैं। पुष्टिमार्ग का आधार यहीं है। पुष्टिमार्गी सब कुछ भगवान पर छोडकर उनके अनुग्रह पर भरोसा करके निश्चिन्त रहते हैं। उनकी भक्ति में निम्नलिखित लक्षण दृष्टिगोचर हैं।

तन्मायासक्ति :– "उर मे माखन चोर गाडे
अब कैसे हूँ निकसित नाहि ऊधो
तिरछेहवैजु अडे ।

....

सूर स्याम सुन्दर बिनु देखे और न
कोई सूझे।

परम विरहासक्ति :– "ऊधो विरहौ प्रेम कठै ....

आत्मनिवेदनासक्ति :– माधव नैकु हटकौ गाई

प्रभु हौ तब पतितन को टीकौ।

सूर का मन सख्य वात्सल्य, रूप, कान्ता और तन्मयासक्ति में अधिक रमा है। परमविरहासक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है उनका भ्रमरगीत। भगवान श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्ति के लिए सूर ने पहले प्रेम को अपनाया। बाद में परमप्रेम को भक्ति का मेरुदण्ड मान लिया है। प्रेम की परिपूर्णता के लिए विरह वर्णन का सहारा लिया है। सूर के सूरसागर मं दो प्रकार के भक्ति रूप देखन को मिलते है। श्रीकृष्ण एवं गोपबालकों का संबंध जो सख्य भक्ति जिसमें न तो ऊँच–नीच का भेदभाव और न किसी प्रकार का दुराव–छिपाव। दूसरा रूप है – गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भाव जो विरहजन्य वेदना से पूर्ण है।

सूर की भक्ति में वात्सल्य रस भी यथेष्ट रूप से प्राप्त है। भक्त अपने आराध्य को एक छोटे से शिशु के रूप में देखकर उनकी लीलाओं का वर्णन करता है। यह वात्सल्य वर्णन का प्रमुख अंग है। वात्सल्य में वत्सल्यता या पुत्र भाव हैं। डॉ.वी.राघवन के अनुसार (Vatsalya or love towards God who is conceived as a child or a little boy, is a form of Bhakthi pertaining primarily to the Krishna-incarnation) कृष्ण भक्ति के सब कवियों में वात्सल्य भाव की प्रवृत्ति दिखाई पड़ने का पहला कारण यह है कि उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को लोकरंजक, लीलाकारी के रूप में ग्रहण किया है। नंद, यशोदा, देवकी के माध्यम से वात्सल्य भावना कृष्ण के प्रति प्रकट होती है। सूरदास को अपने आराध्य को छोड़कर अन्यत्र सुख नहीं मिलता है। इस प्रकार की भक्ति में सेवा (या) कैंकर्य की प्रधानता है

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै
जैसे उड़ि जहाज को पंछि फिरि जहाज पर आवै।

अष्टछाप के अन्य कवि :

ii) कुंभनदास :

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के शिष्य कुभनदास बड़े ही त्यागी और भजनानंदी संत थे। ये अष्टछाप के कवियों में अपनी गायन–माधुरी के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताएँ बड़ी भावमयी और रसभरी है। वे परमानंददास जी के समकालीन थे। इनका कोई न ग्रंथ तो प्रसिद्ध और न अब तक मिला है। फुटकल पद अवश्य मिले हैं।(28) माना जाता है कि उनका जन्म 1468ई में हुआ था।

कुंभनदास ने अपने संबंध में कहीं कुछ नहीं लिखा है। हरिराय–कृत 'भाव–प्रकाश' में केवल इतना ही संकेत है कि कुंभनदास ब्रज में गोवर्धन पर्वत से कुछ दूर 'जमुनावर्ती' नामक गाँव में रहा करते थे। उनके घर में खेती–बाड़ी होती थी। अपने गाँव से वे पारसोली चन्द्रसरोवर होकर श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन करने जाते थे। कुंभनदासजी विवाहित थे और उनका विशाल परिवार था उनके सात पुत्रों में से सबसे छोटा था चतुर्भुजदास जो अष्टछाप के कवियों में से एक है। कुंभनदास ग्रहस्थ होते हुए भी अनासक्त थे और कृष्ण भजन में सदा मग्न रहते थे। उन्होंने 1492 ई में महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। एक किंवदंति के अनुसार एक बार अकबर बादशाह ने निमंत्रण भेजकर उसे सीकरी आने को बुलाया । कुंभनदास विरक्त भाव से सीकरी चले तो गये, लेकिन सम्राट के समक्ष जो पद गाकर सुनाया, वह उनके अनासक्त भाव का सूचक है।

"भक्तन को कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया टूटीस बिसरि गयो हरिनाम
जाको देखे दुःख लागै ताकौ करन परी परनाम
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु अब सवै बेकाम।(29)

अकबर से उन्होंने यहीं इच्छा प्रकट की कि भविष्य में सीकरी नहीं बुलाना। श्रीनाथजी के अनन्य भक्त होने के कारण उन्हें ब्रज से बाहर रहने पर अपार कष्ट की अनुभूति होती थी।

कुंभनदास की रचनाओं में भी पांडित्य की झलक नहीं है। सांप्रदायिक सिद्धांतों का बोध उन्होंने वल्लभाचार्य की संगति में रहकर प्राप्त कर लिया था। क्योंकि वे वल्लभाचार्य के अष्टछापी शिष्यों में प्रथम शिष्य थे और सिद्धांतों के ज्ञान के बिना पद रचना कठिन थी। उनके द्वारा रचित किसी स्वतंत्र ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता, कुछ पद राग कल्पद्रुम, राग रत्नाकर, वर्षोत्सव कीर्तन, वसंत धमार कीर्तन आदि में संकलित है। उनके पदों में श्रीनाथजी की सांप्रदायिक भक्ति की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। कुंभनदास की काव्य–भाषा साधारण ब्रज भाषा है। संस्कृत अथवा अन्य भाषाओं का प्रभाव भी न्यून मात्रा में है। कुंभनदास जी नित्य कीर्तन संग्रहों में 115 पद वल्लभी सप्रदाय 'वर्षोत्सव कीर्तन, वसन्त धमार कीर्तनों में उपलब्ध है। कुंभनदासजी का जो हस्तलिखित पद संग्रह काँकरौली विद्याविभाग तथा नाथ द्वारा में है उसमें इनके पदों की संख्या 185 है। कुछ पद विनय से संबंधित भी मिलते है जो नाथ द्वारा निज पुस्तकालय के कुंभनदास के बृहद् संग्रह से प्राप्त है। प्राप्त पदों के अनुसार यह निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि कुंभनदास की विशेषता राधा–कृष्ण युगल के श्रृंगार वर्णन में हैं। उनके पदों में मधुर भक्ति का भाव ओतप्रोत है, लौकिक काव्य रस और काव्य चमत्कार इनके काव्य में न्यून है.

iii) परमानंद दास :

परमानंददास अष्टदापी कवियों की काव्यकला और भावानुभूति की श्रृंखला की तृतीय कड़ी है। परमानंद दास की वृत्ति बाल्यकाल से ही वैराग्यमयी थी। चौरासी वैष्णवन की वार्ता से स्पष्ट होता है कि इन्हें कविता करने और गाने का

शौक बचपन से था और साधु समाज में इनका मन बहुत रमता था। परमानंद अधिकांशतः विरह के पद गाया करते थे। (30)

'जिय की साध जिय ही रही री
बहुरि गुपाल देषन नहिं पाए
बिलपति कुंज अहीरी

सुधि करत कमल दल नैन की

इनके द्वारा गाये गये विरह के पद को सुनकर श्रीवल्लभाचार्य खुद तीन दिन ध्यानावस्थित रहे। पद यह है(31)

"हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमलनैन की मोहनी मूरति मन मन चित्र बना वै

उन्हें भक्त हृदय प्राप्त था, वे अपने को भगवान् के दासों का भी दास समझते थे। परमानंद दास बालाभाव, कांता भाव, दास भाव के भक्त थे।

परमानंददास की निम्नलिखित रचनाएँ है -

1. परमानंद दास जी का पद
2. वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रहों में पद
3. परमानंद सागर तथा परमानंद दास जी के पद कीर्तन संग्रह

परमानंददास के पदों में सूरसागर की तरह भावगत् की संपूर्ण कथा का वर्णन नहीं। उनके पदों में दशम स्कंध पूर्वार्द्ध, कृष्ण के मथुरागमन और भँवरगीत तक का ही मुख्यतः वर्णन है।

परमानंददासजी ने सबसे अधिक पद कृष्णजी की बाललीला, कृष्ण के प्रति गोपियों की आसक्त अवस्था, गोपी विरह तथा भ्रमरगीत लिखे है। मान, खंडिता, युगल लीला, रास आदि के पद थोड़ी संख्या में है।

iv) कृष्णदास :

कृष्णदास का जन्म गुजरात में राजनगर के चिलोतरा नामक गाँव में हुआ था। कृष्णदास के पिता बहु प्रतिष्ठि और गाँव के मुखिया थे। असत्य आचरण करने के कारण पद से च्युत कर दिया गया।

कृष्णदास की प्रारंभिक शिक्षा चिलोतरा गाँव में हुई होगी क्योंकि ये श्रीनाथजी के मंदिर के अधिकारी होने के बाद का हिसाब गुजराती भाषा में ही करते थे। साधु सांगत्य का प्रभाव इन पर पड़ा। कृष्णदास (या) कृष्णदास अधिकारी की रचनाएँ :

1. प्रामाणिक रचना : वल्लभ संप्रदायी केन्द्रों में हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन रूप में पाये जानेवाले पद संग्रह।

2. संदिग्ध रचनाएँ :– भ्रमरगीत, प्रेम–सत्व–निरूप वैष्णव वंदन।

3. लंबे पद अथवा दसंग्रह के ही नामांतरवाली रचना जो स्वतंत्र ग्रंथ नहीं कही जा सकती : प्रेमरस रास कृष्णदास की बानी।

4. अप्रामाणिक रचनाएँ : जुगल गान–चरित्र, भक्तिमाल टीका, भागवत भाषानुवाद।

छपे कीर्तन संग्रहों में कृष्णदास अधिकारी के पद : पदों का विषय कृष्ण की किशोरीलाल के अंतर्गत राधाकृष्ण का अनुराग, राधा का मान कुंज विहार, खंडिता के वचन तथा संप्रति प्रेम आदि उपशीर्षकों में विभाजित है। रासलीला का वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है।

<u>भ्रमरगीत</u> : यह उनकी अप्रामाणिक रचना है इसीलिए इसके बारे में स्पष्ट रूप से विवरण नहीं मिलता।

<u>प्रेम सत्व निरूपण</u> : यह भी कवि की संदिग्ध रचना है।

v) <u>नंददास</u> :

कृष्ण काव्य–धारा में नंददास की कृतियों का विशेष स्थान है। अन्य अष्टछापी कवियों की भाँति नंददासजी का भी जीवन वृत्त के विषय में स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता उसे पूर्व देश का वासी बताती है। 'अष्टसखान की वार्ता' की एक हस्तलिखित प्रति में नंददास को रामपुर निवासी लिखा गया है। इन सबके आधार पर कहा जा सकता है कि नंददास गोकुल, मथुरा से पूर्व की ओर स्थित रामपुर ग्राम के रहनेवाले थे। नंददास की प्रारंभिक शिक्षा एवं अध्ययन का प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। वार्ता से विदित है कि इनके दीक्षा गुरु श्री वल्लभाचार्य के शिष्य और पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी थे।

वल्लभ संप्रदाय में स्थायी रूप से आने के बाद नंददास का जीवन कृष्ण भक्ति तथा गोकुल गौर गोवर्धन पर स्थित मंदिरों के दर्शन और सेवा में ही बीता। ही बीता। उनकी जीवन चर्या केवल भगवच्चर्या तथा पद और छंद रचना कर भगवान के समक्ष उन्हें गाने में ही थी। इस बीच में उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की।

<u>नंददास की रचनाएँ</u> : नंददास की कृतियों के अंतर्गत आनेवाली रचनाएँ – रसमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, विरह मंजरी, रूप मंजरी, दशम–स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्धनलीला, सुदामाचरित, रुक्मणिमंगल, रास पचाध्यायी, भँवरगीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली।

विषय कृष्ण भक्ति से संबंधित होने के कारण कृष्ण भक्ति संबंधी रचनाओं का ही उल्लेख किया गया है।

मान मंजरी : राधा का मान वर्णन मिलता है।

विरह मंजरी : यह एक भावात्मक काव्य है। इसमें एक ब्रज बाला की वियोग दशा का वर्णन किया गया है। ग्रंथ में कोई कथानक नहीं है और न कृष्ण चरित्र से संबंध रखनेवाला कोई प्रसंग है इस ग्रंथ का प्रसंग केवल इतना है कि कृष्णप्रेम में मग्न एक संयोगिनी युवती कृष्ण के वियोग में तड़पती है। रात्रि को वह चन्द्रमा को अपनी विरह दशा सुनाती है। और उसे अपना दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना संदेश ले जाने की प्रार्थना करती है। विरह का वर्णन, बारह मासे की परिपाटी में किया गया है।

विरह मंजरी में नंददास ने चार प्रकार के कृष्ण विरह का वर्णन किया है – प्रत्यक्ष, पलकांतर, वनांतर, देशान्तर। प्रिय के पास रहते हुए भी प्रेमी के प्रगाढ़ प्रेम की उत्कृट लालसा में प्रिय के वियोग का क्षणिक भ्रम प्रत्यक्ष विरह होता है। पलक मारते मारते जितनी देर प्रियदर्शन से ओट होती है, उतने समय के वियोग को 'पलकांतर वियोग' कहते हैं। जब कृष्ण गोचरण के लिए वन में जाते हैं, उस समय का विरह 'वनांतर विरह' है। प्रिय के परदेस चले जाने पर 'देशान्तर विरह' होता है।

रूपमंजरी : 'रूपमंजरी' नंददास कृत छोटा–सा आख्यानकाव्य है। इसमें एक रूपवती स्त्री 'रूपमंजरी' के रूप, उसके अनमेल विवाह, अलौकिक नायक कृष्ण के साथ 'जारभाव' से उसके प्रेम और इस कार्य में रूपमंजरी की सखी इंदुमति की सहायता का वर्णन है।

इस आख्यान में अपनी भक्ति पद्धति के दो रूपों का वर्णन किया है – एक असीम लोक सौंदर्योपासना द्वारा निःसीम दिव्य सौंदर्य को पाना और दूसरा प्रेम के 'उपपति' भाव द्वारा भगवान के नैकट्य को प्राप्त करना। कवि ने रूपमंजरी के रूप में इंदुमति की आसक्ति द्वारा रूपोपासना का वर्णन किया और कृष्ण में 'जारभाव' से रूपमंजरी की आसक्ति द्वारा भक्ति के माधुर्य भाव को दिखाया है। सौंदर्योपासना मार्ग के विषय में वर्णन करते हुए कवि कहता है कि आनंदस्वरूप भगवान के नैकट्य को प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं, उन्हीं में ये दो साधनमार्ग भी हैं – एक नाद का मार्ग और दूसरा रूप का मार्ग। इसमें भी रूप का मार्ग बड़ा कठिन एवं सूक्ष्म हैं क्योंकि इस रूपोपासना मार्ग में लोकवासना का विष और निवृत्ति का अमृत दोनों एकत्र स्थित हैं। लोक रूप की आसक्ति से वासना के गर्त में गिरने का इसमें विष है और लोक रूप भीतर तथा बाहर सर्वत्र रहनेवाले भगवान के रूप को पहचानकर उनकी निटकता की आनंदानुभूति अमृत है।

<u>दशम स्कंध</u> : कवि ने श्रीमद्भागवत की टीकाओं का भाव लेकर ग्रंथ रचना की है। रासपंचाध्यायी प्रसंग तक ही यह उपलब्ध है।

<u>श्याम सगाई</u> : राधा एवं श्रीकृष्ण की सगाई से संबंधित घटनापरक कहानी है। पहले राधा की माँ कीर्तिजी का अस्वीकार करना फिर सांप काटी राधा को बचाने के बहाने कृष्ण का आना, विष को निकालना आदि रोचक प्रसंगों से पूर्ण रचना है। इसमें न तो वर्णन की सजीवता और न भावाभिव्यंजन की रसात्मकता।

<u>गोवर्धनलीला</u> : कृष्ण चरित्र की लीलाओं के वर्णन और गुणगान के अतिरिकत किसी आध्यात्मिक सिद्धांत के प्रतिपादन का ध्येय नहीं। इन्द्र का मानमर्दन इसका मुख्य कथानक है। काव्य की दृष्टि से यह एक साधारण कृति है।

<u>सुदामा चरित्र</u> : 'सुदामाचरित' की कथा 'श्रीमद्भागवत' से ली गयी है। नंददासजी की इस रचना का ध्येय कृष्ण की दयालुता, भक्त वत्सलता, दीन प्रतिपालकता,

मैत्री–निर्वाह आदि उदार गुणों को दर्शाना है। ग्रंथ में कवि की कृष्णभक्ति के भी दर्शन होते हैं। रचना में व्यक्त किया हुआ मुख्य भाव सख्य प्रेम है।

रुक्मणी–मंगल : भागवत में वर्णित रुक्मणी परिणय के आधार पर नंददास ने रुक्मणी हरण और उसके साथ कृष्ण के विवाह का वर्णन किया है। नंददास ने कथानक के कुछ अंश को छोड़कर, भावपूर्ण स्थलों को कुछ विस्तार के साथ लिखा है। वर्णनों में रुक्मणी के पूर्वराग की विरह वेदना का चित्रण तथा कृष्ण के रूप और द्वारावती के वर्णन है। युद्धस्थल के वर्णन को कवि छोड़ गया है। नंददास श्रृंगार भाव के कवि है। श्रृंगार भाव के अंतर्गत उन्होंने विरह वर्णन की ओर अधिक ध्यान दिया। प्रेम विवाह को कवि ने अधिक महत्ता दी है। ग्रंथ में कवि का कृष्ण के प्रति भक्तिभाव भी चित्रित है। परंतु किसी सिद्धांत या आध्यात्मिक अनुभूति का वर्णन इसमें नहीं किया गया।

रासपंचाध्यायी : नंददास कृत 'रास पंचाध्यायी' में दो विभिन्न भावधाराएँ प्रवाहित मिलती हैं – एक धारा कवि के आध्यात्मिक भावों की है, और दूसरी लौकिक श्रृंगार की। उस समय की प्रवृत्ति भी ईश्वरोन्मुख प्रेमभक्ति की ओर ही थी। रास पंचाध्यायी में व्यक्त लौकिक श्रृंगार के पीछे अन्योक्ति है और वह अन्योक्ति आध्यात्मिक है। अपनी भक्ति पद्धति में नंददास ने माधुर्य प्रेम का अनुसरण किया है। लौकिक प्रेम के सब स्वरूपों में स्त्री–पुरुष के प्रेम में बहुत अधिक गहनता और तीव्रता होती है। भक्तों ने आध्यात्मिक प्रेमानुभाव की गहनता उससे भी अधिक बतायी है और भक्तों ने इस प्रेम की जब अभिव्यंजना की है तो उन्हें यह प्रेमव्यंजना, लोकानुभूत प्रेम के रूपकों द्वारा ही करनी पड़ी। नंददास के काव्य में माधुर्य भक्ति के कारण श्रृंगार भाव का समावेश अधिक मात्रा में हुआ है। 'रास पंचाध्यायी' के लौकिक रति के चित्रण में आध्यात्मिक प्रेम का रहस्य छिपा है।

ग्रंथ के नाम से स्पष्ट है कि रास–पंचाध्यायी में पाँच अध्याय है जिन में गोपी कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। आध्यात्मिक दृष्टि से कृष्ण परब्रह्म

परमात्मा है और गोपियाँ आत्माएँ हैं जो उसी का अंश है। भगवान के आनंदांश से अलग होकर ये आत्माएँ संसारचक्र के बीच फिर उसी आनंदस्वरूप परमात्मा से मिलने को लालायित है। पाँच अध्यायों में बिछुडी हुई आत्मा और रस रूप परमात्मा के साथ उसके पुनर्मिलन की आनंदावस्था का वर्णन किया गया है। इस कृति का मुख्य आधार श्रीमद् भागवत है।

भँवरगीत : इसमें गोपी–उद्धव–संवाद, कृष्ण प्रेम में गोपियों की विरह दशा के साथ–साथ कवि ने धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया है। गोपियों की प्रेमाभक्ति, गोपियों की सगुण भक्ति का उद्धव की कर्म, ज्ञान, योग से पूर्णा निर्गुण भक्ति पर विजय दिखाना इसका ध्येय रहा।

सिद्धांत पंचाध्यायी : इसका विषय भी कृष्ण की रासलीला ही है। इस ग्रंथ में कवि ने कृष्ण, वृंदावन, वेणु, गोपी और रास की आध्यात्मिक व्याख्या की हैं। ग्रंथ का आरंभ श्रीकृष्ण की स्तुति से होता है। कृष्ण का स्वरूप वर्णन करने के अनंतर कवि ने 'रास पंचाध्यायी' के अनुसार उसकी शब्दावली में शरद्रात्रि की शोभा का वर्णन किया है। कृष्ण अपनी 'शब्द ब्रह्ममयी' वंशी बजाते है और गोपियों को रास केलिए प्रेरित करते हैं। गोपियाँ अपने गृहबंधनों के त्याग कर कृष्ण के पास जाती है। इस स्थान पर कवि ने ज्ञानमार्ग की अपेक्षा प्रेमाभक्ति को अधिक सुगम बताया है। गोपियाँ इसी मार्ग को ग्रहण करती हैं और वे सफल होकर आध्यात्मिक साधकों के लिए आदर्श बनती हैं। यहाँ कवि ने उन्हें भक्तिमार्ग की आचार्या बताया है।

नंददास पदावली : वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रह और नंददास ग्रन्थ में प्रकाशित तथा हस्तलिखित और प्रकाशित रूप में प्राप्त नंददास के पदों के अध्ययन पर नंददास द्वारा वर्णित विषय निम्नलिखित है :

1. गुरुस्तुति – श्री वल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ तथा उनके संबंध के पद
2. यमुना स्तुति

3. लीला पद कृष्ण–जन्म–बधाई, पालना, बालरूप, गोचारण, गोदोहन, पनघट,दानलीला, हिंडोला, राधा कृष्ण अनुराग आदि।
4. कृष्ण रूपवर्णन
5. राधा रूपवर्णन
6. राधाकृष्ण का विवाह वर्णन
7. रास वर्णन
8. राधा–मान–वर्णन
9. राधा कृष्ण की ब्रज में होली, फूलमंडली, वसंत का वर्णन
10. खंडित भाववर्णन
11. मल्हार वर्षा–ऋतु के वर्णन
12. दीपमालिका, अक्षय तृतीया आदि त्योहारों का वर्णन।

इनमें से बाललीला के पद साधारण कोटि के हैं। भक्तिभाव की गहनता और सर्वहितकारी प्रभाव के दृष्टिकोणों से सूरदास, परमानंद दास, नंददास तीनों को लें ले तो तृतीय स्थान नंददास को दिया जा सकता है। नंददास के संबंध में एक कहावत सर्वप्रसिद्ध है – और सब गढ़िया, नंददास जड़िया।" अन्य सब कवि काव्य के गढ़नेवाले हैं। नंददास जड़िया की भाँति जड़ाव देकर सौंदर्य की वृद्धि करनेवाले हैं।

vi) चतुर्भुजदास :

अष्टछाप के कवि चतुर्भुजदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उन्होंने गुरु महिमा और आचार्य कुल की बधाई के अतिरिक्त अपने और अपने ग्रन्थों के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है। भक्तमाल और उसकी टीका आदि ग्रंथों में स्पष्ट रूप से कोई सामग्री चतुर्भुजदास के विषय में उपलब्ध नहीं है। अतः वल्लभ संप्रदायी ग्रन्थों में प्राप्त प्रमाणभूत तथ्यों के आधार पर चतुर्भुजदास का जीवन विवरण निम्नांकित है।

चतुर्भुजदास का जन्म ब्रज के 'जमुनावतो' नामक गाँव में हुआ था – ऐसा माना गया है। वे अष्टछापी कवि कुंभनदासजी के सबसे छोटे बेटे थे। बाल्यकाल से ही भगवदध्यान करते थे। वे सदैव श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा में ही रहते थे। काव्य रचना भी इनके पिता की ही देन थी। कुंभनदासजी इनके बाल्यकाल में ही इनको कृष्ण की लीलाओं का रहस्य समझाया करते थे। वार्ता से यह विदित होता है कि ये श्रीनाथजी के समक्ष कीर्तन किया करते थे और इन्होंने बहुत से पद कृष्ण की बाललीला, विनय ओर विरहभाव के बनाए।

अष्टछापी चतुर्भुजदास के नाम पर निम्नलिखित रचनाएँ दी गयी हैं जिनकी प्रामाणिकता पर नीचे की पंक्तियों में विवेचन है। इनमें से प्रथम चार रचनाएँ राधावल्लभीय चतुर्भुजदास की हैं, इनके नाम से विख्यात हो गयी है। 1. मधुमालती, 2. भक्ति प्रताप, 3. द्वादश यश, 4. हित जू को मंगल, 5. चतुर्भुजदास के छपे कीर्तन–संग्रहों के पद, 6. काँकरौली तथा नाथ द्वारा से हस्तलिखित तथा छपे रूप में प्राप्त पद संग्रह। प्राप्य अंतः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर ऊपर लिखित प्रथम चार स्पष्ट रूप से अष्टछापी कवि चतुर्भुजदास की नहीं है।

<u>कीर्तन संग्रहों में पद</u> : अन्य अष्टछाप कवियों की तरह चतुर्भुजदास के पद भी वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रह, राग सागरोद्‌व राग कल्पद्रुम तथा रागरत्नाकर में मिलते है। विभिन्न उपशीर्षकों के अंतर्गत कीर्तन भाग 1 में 36 पद, कीर्तन भाग 2 में 16 पद, तथा कीर्तन भाग 3 में 51 पद छपे हैं। इस तरह चतुर्भुजदास के कुल 138 छपे पद उपलब्ध होते हैं। इन पदों के अतिरिक्त कुछ पद हस्तलिखित भी प्राप्य है। काँकरौली से इनका एक पद संग्रह छपा है।

इस प्रकार चतुर्भुजदास की प्रामाणिक रचना काँकरौली तथा नाथद्वारा में प्राप्त होनेवाले पद संग्रह तथा वल्लभ संप्रदायी छपे कीर्तन संग्रहों में प्राप्त पद है। एक दूसरी प्रामाणिक रचना 'दानलीला' भी है जो वास्तव में कवि का एक लंबा पद

है। परन्तु यह निर्विवाद है कि 'मधुमालती, भक्ति प्रताप, द्वादशयश तथा हितजू को मंगल' ग्रंथ अष्टछापी चतुर्भुजदास की रचना नहीं है। चतुर्भुजदास की भाषा चलती और सुव्यवस्थित ह। (32)

vii) गोविंद स्वामी :

विट्ठलनाथ के शिष्य गोविंद स्वामी अपनी गायन माधुरी के लिए विशेष प्रसिद्ध है। दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, अष्ट सखान, की वार्ता तथा अन्य वल्लभ संप्रदायी ग्रन्थों में प्राप्त आधार पर गोविंद स्वामी का जन्म ब्रज में भरतपुर राज्य के आँतरी गाँव में हुआ था। आँतरी से आकर ये कुछ दिन महावन में रहे फिर वल्लभ संप्रदाय में आने के बाद ये गोकुल और महावनों के टीलों पर बैठकर कीर्तन किया करते थे। बाद में गोवर्धन चले गये और अंत समय तक वहीं रहे। वहाँ गिरिराज की कदम खडी इनका स्थायी निवास था जो अब भी 'गोविंदस्वामी की कदम खंडी नाम से प्रसिद्ध है।

वार्ता से ज्ञात होता है कि वल्लभ संप्रदाय में आने से पहले ये कवीश्वर थे और पद बनाकर गाया करते थे। साधु संगति से इनके मन की वृत्ति भक्ति की ओर झुक गयी थी। गोकुल में कुछ समय रहने के बाद गोविंद स्वामी श्रीनाथजी की सेवा में गोवर्धन चले गये और मरण पर्यंत वहीं रहे। वहाँ रहकर भी अनेक पदों की रचना की। श्रीनाथ जी के मंदिर में उनको भी कीर्तन की सेवा दी गयी थी। अपने बनाये पदों को वे अपने इष्ट श्रीनाथ के समक्ष गाया करते थे। गोविंददास की सखाभाव की भक्ति तथा श्रीनाथजी के साथ उनके सानुभाव के कई प्रसंग वार्ता में दिये गये हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख प्रियादास ने 'भक्तिमात्त' की टीका में भी किया है।

गोविंद स्वामी विद्वान, गायनाचार्य, कवीश्वर और परमभक्त थे। वार्ता में इनके लीलात्मक स्वरूप के विषय में लिखा है कि ये श्रीदामा सखा है और भामा सखी है।

गोविंद स्वामी की रचनाएँ : हिंदी साहित्य के इतिहासकार लेखकों ने इनके किसी ग्रन्थ अथवा पद संग्रह का उल्लेख नहीं किया है। दस बीस स्फुट पदों को छोड़कर हिंदी संसार को कोई पदसंग्रह उपलब्ध नहीं हुआ था। हस्तलिखित पद संग्रह के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदायी छपे हुए कीर्तन संग्रहों में भी गोविंद स्वामी के पद मिलते हैं। छपे कीर्तनों में 'राग सागोद्भव रागकल्पद्रुम' में गोविंद स्वामी के विविध रागों के अंतर्गत लगभग 65 पद तथा 'राग–रत्नाकर में केवल 20 पद हैं। वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रहों के भाग 1 में 11 पद, भाग 2 में 23 पद, भाग 3 में 123 पद कुल मिलाकर 257 पद मिलते हैं। इनमें वर्ण्य विषय राधाकृष्ण की कुंज लीला और किशोर लीलाओं से ही संबंधित है। इन्होंने गोपी कृष्ण की किशोर और यौवन लीलाओं का ही वर्णन अधिक किया है। संगीतात्मकता तथा श्रुतिमधुरता इनके पदों के विशिष्ट गुण है।

viii) छीतस्वामी :

गोसाई विट्ठलनाथ जी के शिष्य छीतस्वामी का जन्म सं 1537 में मथुरा में हुआ। पहले ये पंडा थे, और बाद में पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए। उनकी रचनाओं में अन्य कवियों की भाँति कोई अंतस्साक्ष्य सामग्री उपलब्ध नहीं होती। वार्ता से विदित होता है कि छीतस्वामी का जन्मस्थान मथुरा था और वे वहीं रहा करते थे। वल्लभ संप्रदाय में आने के बाद वे गोवर्धन पर श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करते थे। वार्ता से तथा नागरीदास की पद प्रसंग माला रचना से ज्ञात होता है कि वे मथुरिया चौबे थे। वार्ता के कुछ प्रसंगों से यह अनुमान किया जा सकता है कि छीतस्वमी गृहस्थ थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से प्रथम भेंट पर उन्होंने पद बनाकर गाया था। 251 वैष्णवन की वार्ता, नागरी दास जी के ग्रन्थ, नागर

समुच्चय के पद–प्रसंग–माला से यह भी पता चलता है कि इनकी चारित्रिक शिक्षा अच्छी नहीं थी। वल्लभ संप्रदाय में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरणागति के बाद उन पर गोस्वामी की शिक्षा का प्रभाव पड़ा तो इनका चरित्र भी सुधर गया और ये उच्चकोटि के कवि और भक्त बन गये।

नागरीदास के कथानुसार छीतस्वामी वल्लभ संप्रदाय में आने से पहले शैव थे। और बहुत लौकिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इनके चार चौबे मित्र मथुरा में और थें एक बार इन पाँचों ने गोकुल के गुसाई श्री विट्ठनाथजी की परीक्षा लेनी की बात सोचे थे। अतः गोकुल में श्रीविट्ठनाथ जी के पास 'मसकरी' करने आये। उस समय गोस्वामी के स्वरूप को देखकर छीतस्वामी पर ऐसी मोहनी पड़ी कि इनके स्वभाव की चंचलता और 'मसकरी' सब मिट गयी और पश्चात्ताप का भाव इनके मन में संचारित हो गया। छीतस्वामी के विनय करने पर गोस्वामीजी ने उनहें शरण में ले लिया। उसी समय छीतस्वामी ने निम्नलिखित पद गाया था।

'भई अब गिरिधर सो पहिचान।
कपट रूप धरि छलिबे आयो, पुरुषोत्तम नहिं जान
छोटो बडो कछु नहिं जान्यो, छाय रह्यो अज्ञान
छीतस्वामी देखत अपनायो, श्री विट्ठल कृपा निधान। (33)

इसके बाद छीतस्वामी गोकुल गये थे और उन्होंने श्री नवनीत प्रियजी के दर्शन फिर गोवर्धन पर जाकर श्रीगोवर्धनदास जी (श्रीनाथ जी) के दर्शन किये। उन दर्शनों से उनके मन की परिष्कृत वृत्ति और भी निखर गयी। इसके बाद श्रीगोसाई जी की कृपा से छीतस्वामी परमभक्त, बड़े कवि और कीर्तनाकार, गायक प्रसिद्ध हो गये। उन्होंने अपने जीवन में फिर अनेक पद बनाकर गाये और श्रीनाथ जी की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया। इनके लीलात्मक स्वरूप के विषय में वार्ता में कथन है कि ये सखा रूप में सुबल हैं और सखी रूप में पद्मा है।

छीतस्वामी की रचनाएँ : अष्टछाप के अन्य कवियों की भाँति छीतस्वामी की रचनाओं के विषय में, हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों तथा कविता संग्रहों में कोई स्पष्ट संकेत नहीं हैं। केवल मिश्रबन्धुओं ने इनके 34 पदों का संग्रह अपने पास बताया है। छीतस्वामी के पद भी वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रहों में मिलते है। कीर्तन संगह के तीन भागों में 64 पद छीतस्वामी के विविध रागों में उपलब्ध होते है। छपे हुए पदों के अतिरिक्त भी छीतस्वामी के कुछ पद लेखक को (34) मिले हैं जो काँकरौली विद्या विभाग में सुरक्षित है।

5. कृष्ण भक्त मुसलमान कवि :रसखान :

रसखान कृष्णभक्त मुसलमान कवि (रचनाकाल सं. 1640) है। रसखान दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ है – 1. सुजान रसखान और 2. प्रेमवाटिका। पहले में श्रीकृष्ण की लीलाओं का गायन हुआ है। इन्होंने अपनी 'प्रेमवाटिका' में अपने आपको "शाही खानदान" का कहा है। इसके अतिरिक्त इनके जीवन वृत्त के संबंध में कुछ भी प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता है।

सूरदास की तरह रसखान की भक्ति–भावना में भी माधुर्य की प्रधानता है। बाललीलाओं के वर्णन में साख्य भाव और श्रृंगार लीलाओं के निरूपण में प्रेमभाव दोनों माधुर्य पूर्ण है। रसखान की भक्ति माधुर्य भाव की चरम स्थिति पर पहुँचती है लेकिन उसमें सांप्रदायिकता की कोई गन्ध नहीं है। रसखान की कृष्ण भक्ति अनन्यता एवं तन्मयता का स्पष्ट प्रमाण है। वह तमिल के आलवार भक्तों की अनन्यता का स्मरण करती है। उनकी भक्ति में वात्सल्य एवं श्रृंगार का समावेश है। उनकी प्रेम भावना सात्विक और पवित्र है। उसमें कहीं वासना की झलक नहीं मिलती। उनकी भक्ति की अनन्यता के लिए उदा :

"मानुस हो तो वहीं रसखनि, बसौ ब्रजगोपुल गाँव के ग्वारन

जो पशु हौं, तो कहा बसु भेसे, चरौं नित नंद की धेनु मंझारन

गोपिकाओं की प्रेममूल भक्ति के वर्णन करने में सिद्ध हस्त है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के इतने प्रेम है कि वे मुरली के प्रति भी ईर्ष्या करती है।

"मोर पंखारसिर ऊपर राखि हौं, गुँज की माल गले पहिरौंगी।

....

या मुरली मुरलीधर की, अधरन–धरी अधरान धरौगी।

रसखान ने कई नीतिपरक उक्तियाँ भी प्रस्तुत की है जिनमें मुख्य रूप से जीवन के प्रेम तत्व की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी रचनाएँ अपनी भाषाशैली की सरसता और प्रभावोत्पादकता के कारण बडी लोकप्रिय हुई है। इनकी 'प्रेमवाटिका' नीतिपरक उक्तियों की रचना है। यह रचना दोहा– छंद में है जिसके अन्तर्गत सुधर ब्रजभाषा में अनुराग तत्व की अभिव्यंजना हुई है। (35) रसखान सचमुच रस की खान है। आचार्य शुक्ल ने इनके सम्बंध में लिखा है प्रेम के ऐसे सुधर उद्‌गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या श्रृंगार संबंधी कविता सवैया को ही रसखान कहने लगे जैसे कोई रसखान सुनाई। (36)

6. संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्त : मीराबाई :

मीराबाई राजस्थान की प्रसिद्ध कृष्णभक्ता कवयित्री है। इन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को प्रेमामाधुर्य की भावना से पति के रूप में स्वीकार करके खुद गोपी बनकर सैकडों पदों की रचना की है जो 'मीराबाई–पदावली' के नाम से संगृहीत है। मीरा संप्रदाय–निरपेक्ष कवयित्री होने पर भी उनकी भक्ति भावना विविध पद्धतियों एवं सिद्धांतों का सम्मिश्रण है। नारद भक्ति सूत्र में वर्णित एकादशी भक्ति पद्धतियों, भागवत में वर्णित नवधा भकित, निर्गुण वादियों का समर्पण एवं रहस्यात्मकता की दास्य भावना आदि मीरा के पदों में यथेष्ट रूप से देखने को मिलती है। मीरा ने श्रीकृष्ण को अपने प्रेमी (या) पति के रूप में ग्रहण करके

उसकी माधुर्योपासिका बनी। मीरा ने अपने प्रियतम परमात्मा की विरह वेदना का जो वर्णन किया है वह मर्मस्पर्शी है। मीरा के विरह वर्णन में दक्षिण के आलवारों संतों की नायिका के विरहवर्णन की छाप अवश्य दिखाई देती है। मीरा के समर्पण भाव का एक उदाहरण देखिए –

मैं तो गिरिधर के धर जाऊँ
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊँ। (37)

मीरा की माधुर्योपासना में एक अनुपम रस है। मीरा श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम को मछली के प्रेम से तुलना करके मछली के प्रेम को मेंढक, कछुवे आदि से भी ज्यादा महत्व देती है क्योंकि मेंढक, कछुवे बिना पानी भी जी सकते हैं, लेकिन पानी के बिना मछली तड़प तड़प कर मरती है।

<u>रचनाएँ</u> : "नरसीजी का माहरा", "गीत गोविंद की टीका", "मीरानी गरबी", "मीरा के पद", "सग सोरण के पद", "रास गोविंद" आदि रचनाएँ मीरा के नाम से संबद्ध बताई जाती है। 'नरसीजी का माहरो में नरसीजी मेहता के भात भरने करने की कथा का उल्लेख है। गीत गोविंद की टीका उपलब्ध नहीं है। रास गोविंद के सम्बंध में अनुमान है कि उन्होंने रचा होगा। 'राग सोरण के पद' मीरा, कबीर और नामदेव के पक्षों का संग्रह है। मंडली के गीतों के समान गाये जाते हैं। मीरा के फुटकर पर कोई 200 करीब के मिले है। मीरा के पद गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी खडीबोली आदि में मिलते है। मीराबाई की भक्ति भावना में अपने प्रियतम से सवाल उठाने का साहस है। मीरा माधुर्योपासिका होने के नाते एक विरहिणी नायिका की तरह अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से रूठकर उन पर आरोप लगाती है कि उन्होंने अन्य किसी के साथ प्रेम संबंध जोड़ लिया है। इसीलिए पास आने में देर कर दी। मीरा श्रीकृष्ण से पूछती है फिर तुमने क्यों प्रेम प्रारंभ किया था? (38)

माधुर्य भक्ति में भक्त अपने को उद्धार करने में देर किये भगवान पर आधिक्य करने का साहस भी करता है। यह उनके असीम प्रेम का द्योतक ही है। मीरा भारत के प्रधान भक्तों में तो है ही साथ–साथ हिंदी काव्य में एक उच्च स्थान की अधिकारिणी है। उनका काव्य आंसुओं के जल से सिक्त, पल्लवित एवं पुष्पित प्रेम–बेल की मनोहारिणी सुगन्ध से सुवासित है। कृष्ण काव्यधारा में मीरा का स्थान बहुत ऊँचा है, सूर के बाद सबसे ऊँचा प्रेम की जो तन्मयता मीरा में दृष्टिगोचर होती है वह संसार की कवयित्रियों में दुर्लभ है। जो स्थान युनानी कविता में सैफो का है, अरबी कविता में रखिया का है, स्पेनी कविता में टेरेस का है, तमिल में गोदा का है, वही स्थान गुजराती–हिंदी कविता में मीरा का है। (39)

<u>गोस्वामी हितहरिवंश राधावल्लभी संप्रदाय के प्रवर्तक</u> गोसाई हितहरिवंश का जन्म सं 1559 में मथुरा से चार मील दूर दक्षिणबाद गाँव में हुआ था। कहते हैं कि हितहरिवंशजी पहले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। बाद में उन्होंने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया है। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और भाषाकाव्य के अच्छे मर्मज्ञ है।

<u>रचनाएँ</u> : हितहरिवंश ने हिंदी में केवल चौरासी पद (हित चौरासी) और 27 फुटकर पद रचे हैं। संस्कृत में भी 'राधा –सुधानिधि' तथा 'यमुनाष्टक' उनकी दो रचनाएँ हैं। इन सब रचनाओं में राधा और कृष्ण के प्रेम तत्व का सम्यक् उद्घाटन किया गया है।

हितहरिवंश द्वारा विरचित चौरासी पदों का संकलन हैं 'हितचौरासी' यह शुद्ध रस पद्धति से लिखा गया मुक्तक पदों का संकलन है जिसे राधा–भाव–परक प्रेम लक्षणा भक्ति का ग्रंथ कहा जा सकता है। हितहरिवंश जी की दूसरी रचना 'फुटवाणी' 27 पदों का संकलन है। इसमें सिद्धांत प्रतिपादन हुआ है। 'राधासुधानिधि' संस्कृत में लिखा गया एक स्तोत्रकाव्य है जिसमें 270 श्लोक हैं।

राधा की वंदना, उपासना, प्रशस्ति, सेवा, पूजा, भक्ति, सामीप्य सौंदर्य आदि के विविध वर्णनों से परिपूर्ण यह ग्रंथ अपनी इष्ट अनन्यता के लिए संप्रदायपरक भक्ति काव्यों में श्रेष्ठतम स्तोत्र काव्य समझा जाता है। (40) 'यमुनाष्टक' यमुना की वंदना में लिखा हुआ आठ श्लोकों का प्रशस्ति–काव्य है।

इतनी अन्य रचनाओं के होते हुए भी हितहरिवंश जी उत्तम कोटि के भक्त हैं। इनके पदों के संबंध में डॉ.विजयेन्द्र स्नातक का कहना है कि श्री हरिवंश जी की वाणी भक्ति रस से आप्लावित मुक्तक गेय पदों का संग्रह है। भक्तिभावना से अनुप्राणित इन पदों में शास्त्रानुमोदित काव्य–सौष्ठव का संधान करना इन पदों की मूल भावना के साथ अन्याय करना होगा किन्तु भावुक एवं सहृदय भक्तों की रसस्निग्ध वाणी केवल शिवत्व से ही परिपूर्ण नहीं होती, वरन् सत्य और सौंदर्य को भी अपने अंचल में छिपाये रहती है। (41)

7. मध्यकाल के अन्य कृष्ण भक्त कवि और उनका काव्य :

अष्टछाप के आठ कवियों और हितहरिवंश, मीराबाई एवं रसखान के अलावा अन्य कवियों ने भी हम कृष्ण भक्ति रसामृत पिलाने का प्रयास किया है। आचार्य रामचंद्रशुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भक्तिकाल के प्रमुख 17 कृष्ण भक्त कवियों का उल्लेख किया है। उपर्युक्त कवियों के अलावा शुक्ल जी के इतिहास में कथित अन्य छः कवि है – गदाधर भट्ट (रचनाएँ–ध्यानमाला), स्वामी हरिदास (पद भक्तमाल और 'निजमत सिद्धांत' में संकलित हैं) सूरदास मदन मोहन (बाबा कृष्णदास द्वारा संपादित सुहृद्बानी में इनके 105 पद संकलित है) श्रीभट्ट (रचनाएँ : 'युगल शतक' और 'आदि बानी), हरीराम व्यासजी (व्यासवाणी, और ध्रुवदास (रचनाएँ : 40 ग्रंथ है जिनमें प्रमुख है – वृन्दावन सत, भजनसत आदि) है।

अष्टछापी तथा अष्टछापेतर कृष्णभक्त कवियोंने भक्ति की व्याख्या तो नहीं की, बल्कि भक्ति की महिमा का वर्णन इन्होंने बहुत किया है। श्रीवल्लभाचार्य तथा भक्तिमार्ग के अन्य आचार्यों का समर्थन करते हुए इन्होने कहा है कि संसार दुःख से निवृत्ति का सरल मार्ग ज्ञान और योग की अपेक्षा प्रेमाभक्ति का है। इसके लिए उन्होंने लोक गीतों और लोक कथाओं के माध्यम से प्रचलित कृष्ण की मधुर और ललित कथाओं को अपने काव्य का विषय बनाया। ये कृष्ण भक्त कवि हमारे साहित्य में प्रेम माधुर्य का जो सुधास्रोत बहा गए है, उनके प्रभाव से हमारे काव्य क्षेत्र में सरसता और प्रफुल्लता आयी, कृष्ण भक्ति का अमृत वर्षण हुआ।

8. तमिल में कृष्ण भक्ति साहित्य :

भारतीय साहित्य में तमिल सब से प्राचीन भाषा है जो अपने समृद्ध साहित्य के लिए प्रसिद्ध है। हिंदी कृष्णभक्ति साहित्य का आधार प्रायः छठी शती के तमिल वैष्णव कवि आलवारों का साहित्य ही होगा। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक दिनकर का कहना है कि "वैष्णवों में भक्ति की जो प्रधानता है, वह मुख्यतः द्रविडों की देन है। .... इस देश में भक्ति की जो बाढ़ उमडी उसकी प्रधान धारा दक्षिण से आयी। (42) छठवीं शती के आसपास के तमिल वैष्णव कवि आलवार के नाम से प्रसिद्ध है। 'आलवार' का अर्थ है – भगवद् भक्ति रस में मग्न व्यक्ति। अध्यात्मक ज्ञान रूपी समुद्र में गहरा गोता लगानेवाला व्यक्ति। (43) इन आलवारों की संख्या 12 है। इनके मुँह से अप्रयास निकले हुए मधुर भक्ति तमिल के गीति साहित्य के लिए अमर निधि है, जो 'पाशुर' के नाम से विख्यात है। वेद, पुराण, गीता, पाशुरम्, पांचरात्र उपनिषद आदि सभी में वर्णित भक्ति पद्धतियाँ इनके पाशुर में उपलब्ध है। भगवद् प्राप्ति के लिए यह संजीविनी है। इनके द्वारा लिखा गया 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' इनके चार सहस्र भक्ति गीतों का संग्रह है जिनको श्रीनाथमुनि ने संकलन किया है। इन आलवारों के मतानुसार अव्याज करुणामूर्ति, दीनबन्धु परमात्मा को पाने के लिए पवित्र प्रेम की आवश्यकता है न कि

जाति–पाँति। इनके गीत श्रृंखलित न होकर मुक्तकों के रूप में प्रकाश में आये। प्रबन्ध मुक्तक इस तरह इन आलवारों की दिव्यवाणी दो तरह से विभक्त है। इनके गीतों में दास्यभक्ति भावना, माधुर्यभक्ति भावना, वात्सल्य भक्ति, भागवत में वर्णित 'नवधा भक्ति' नारद भक्ति सूत्र में वर्णित एकादश भक्ति आदि मि. ती है। 'अन्दादि' का अर्थ है 'अन्त्य शब्द शैली'। एक गीत या पाशुर का अंतिम शब्द दूसरे पाशुरम का प्रथम शब्द बन जाता हैं। आलवारों द्वारा वर्णित विरह वर्णन अत्यंत मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी है। पारंपरिक विरह वर्णन की दशावस्थाओं के चित्रण, प्रकृति के उद्दीपन रूप, प्रकृति में रहनेवाले प्रत्येक पशु–पक्षी को नायिका द्वारा अपनी विरह व्यथा सुनाना, विरह की अवस्थाओं का वर्णन आदि का चित्रण इनके गीतों में प्राप्त है। नायक श्रीकृष्ण द्वारा आत्मा का ब्याह रचना श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग एवं वियोग आदि का वर्णन इनके गीतों में यथेष्ट रूप से प्राप्त है। विरह विदग्धा नायिका की दयनीय स्थिति को देख कर उनकी माँ द्रवित होती है और आस–पड़ोस से अपनी बेटी की व्यथा को बोलकर खुद–दुःखी होती है, ऐसे सैकड़ों प्रसंग इनके गीतों में उपलब्ध है। आलवारों द्वारा चित्रित नायिका की श्रृंगारिक चेष्टाएँ गीतगोविंद की राधा से भी एक कदम आगे है। आलवार के पूर्व विकसित तमिल संघ साहित्य काव्य परंपरा इसका प्रमुख कारण हो सकता है। आलवार के पूर्व विकसित साहित्यिकि परंपरा के अध्ययन करने से यह पता चलता है कि उनका प्रभाव आलवार साहित्य पर स्पष्ट रूप से पड़ा है।

9. तमिल में आलवार पूर्ववर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य :

तमिल भाषा का सबसे प्राचीन ग्रंथ 'तोलकाप्पियम'' में 'विष्णु' का वर्णन मिलता है। उसे 'मायोन्' याने कृष्ण कहा गया है। 'तोलकाप्पियम' में वर्णित पाँच भूभागों के अंतर्ग आनेवाले 'मुल्लैप्रदेश' के अधिदेवता के रूप में 'मायोन' को स्वीकार किया गया है। मुल्लै प्रदेश में रहनेवाले ग्वाल लोगों के इष्टदेवता 'मायोन्' थे। इन लोगों को 'आयर' अर्थात् आभीर की संज्ञा दी गयी है। इनके देवता मायोन याने श्रीकृष्ण है। तमिल साहित्य में मायोन के साथ–साथ कण्णन

शब्द का प्रयोग हुआ है जो श्रीकृष्ण का तद्भव रूप है। 'तोलकाप्पियम' में 'मायोन' को मानवजाति के रक्षक के रूप में बताया गया है। (44) इस में बताया गया है कि आयर रमणियों के हृदय में अपने इष्ट देव के प्रति माधुर्य प्रेम रहा।(45) वे स्त्रियाँ उस इष्टदेवता की बाललीलाओं को देखकर सुध–बुध खो बैठती थीं। इस प्रेम का वर्णन परवर्ती संधकाल में भी हुआ था।

संघकालीन रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध तीन काव्य–संग्रह हैं 1. एट्टुतोकै (आठ कविता–संग्रह), 2. पत्तुपाट्टु (दशगीत–काव्य-संग्रह) 3. पदिनेणकीन कणक्कु (अठारह लघुकाव्य संग्रह)। इनमें 'तिरुमाल' (या) विष्णु संबंधी वर्णन मिलते है। संघकालीन कवियों ने प्रकृति के प्रत्येक कण में विष्णुतत्त्व को देखा है। संघकालीन अन्य महत्वपूर्ण काव्य रचना 'परिपाड़ल' में तमिल प्रदेश की भक्ति परंपरा का अधिक उल्लेख उपलब्ध है। इस ग्रंथ ने परवर्तीकाल के वैष्णव भक्तों को ज्यादा प्रभावित किया है। 'परिपाड़ल' गाने योग्य गीतों से पूर्ण रचना है। 'पत्तुपाट्टु' के अंतर्गत आनेवाले 'मुल्लै पाट्टु' में नायक–नायिका के तीव्र विरह का वर्णन मिलता है। 'कुरिज्जपाट्टु में नायक के आने में देर होने से विरह विदग्धा बनी हुई नायिका के हाव–भाव, उनकी कृशता आदि का वर्णन है। अपने प्रेमी से रखा हुआ असीम प्रेम का वर्णन संघकालीन नायिका के शब्दों में –

'निलत्ति पेरिदे, वाणिनुं उयरन्ददेण्स
नीरिणं आरलविण्रे।(46)

अर्थात् प्रेम भूमि से भी विशाल, आकश से भी ऊँचा, पानी से भी (याने समुद्र से) गहरा है। संघकालीन रचना 'कलित्तोकै' में कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन, कृष्ण द्वारा केशी नामक घोडे का वध और द्रौपदी की रक्षा आदि प्रसंगों का सुरम्यरीति से वर्णन किया गया है। संघोत्तर काल (तीसरी एवं चौथी शताब्दी) के

अंतर्गत आनेवाले पंचम महाकाव्यों में से एक 'शिलप्पदिकारम' में कण्णन (श्रीकृष्ण) की लीलाओं का वर्णन है। 'आयिच्चियर कुरवै' याने ग्वालों के नृत्य में श्रीकृष्ण की महिमा गायी गयी है। 'कुरवैकृत्तु' कथा में श्रीकृष्ण के साथ बलराम और 'नप्पिन्नै' (गोपी का वर्णन) का वर्णन भी मिलता है। यहीं 'नप्पिनै' का वर्णन आण्डाल की रचना 'तिरुप्पावै' में प्राप्त है। इन सब का वर्णन भक्ति के धरातल पर परवर्ती साहित्यकार आलवारों की रचनाओं में मिलते हैं। संघोत्तरकाल के वैष्णव भक्ति साहित्यकारों ने (जो 'आलवार' के नाम से प्रसिद्ध है) रचनाओं में विष्णु के अवतार के रूप में श्रीकृष्ण को देखकर उनकी लीलाओं को, बाल्य नटखटी चेष्टाओं के वर्णन के साथ–साथ नारद भक्ति सूत्र में वर्णित एकादश भक्ति वर्णन 1. गुण महात्माभक्ति, 2. रूपासक्ति, 3. वात्सल्यासक्ति, 4. स्मरणासक्ति, 5. दास्यासक्ति, 6. सख्यासक्ति, 7. पूजासक्ति, 8. कान्तासक्ति 9. आत्मनिवेदनासक्ति, 10. तन्मयासक्ति, 11. परमविरहासक्ति भी मिलता है। जहाँ तक विरह वर्णन की बात है आलवार के पूर्ववर्ती साहित्य संघ साहित्य में विरह-वर्णन यथेष्ट रूप से प्राप्त है। भक्ति की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित गुण वांछित बताया गया है। (47)

1. सर्वप्रथम महापुरुषों की सेवा
2. उनकी दया का पात्र होना
3. उनके धर्मों में श्रद्धा
4. भगवद् गुण श्रवण
5. फिर भगवान में रति का अंकुरित होना
6. भगवद् स्वरूप का बोध होना
7. इसके बाद परमानंद स्वरूप भगवान में प्रेम का बढ़ना
8. तदनंतर भगवान का दर्शन होना
9. फिर भगवद्धर्मों में निष्ठा
10. भगवद्गुणों को अपने में लाना

11. इसके बाद प्रेम की पराकाष्ठा हो जाना।

ये प्रवृत्तियाँ आलवारों के भक्ति साहित्य में यथेष्ट रूप में उपलब्ध है। इनके गीतों का मूलस्वर प्रेम ही है। प्रेम के साथ श्रृंगार का अनु म संयोग हुआ है। जयदेव की नायिका के लिए प्रियतम नायक श्रीकृष्ण के वियोग में वसंतकाल भी मनोवेदना देती है वह अपनी सखी से अपनी विरह वेदना को प्रस्तुत करती है। (48)

आलवारों के साहित्य में निम्नलिखित भक्तिभावनाएँ यत्र–तत्र उपलब्ध है :

1. रूपदर्शन की लालसा, 2. आत्मनिवेदन, 3. मोक्षाकांक्षा, 4. एकाश्रय ग्रहण। माधुर्य भक्ति में जिस प्रेम की स्वीकृति है वह न तो यौन संबंध से उद्‌भुत कामेच्छापरक प्रेम माना गया है और न इस प्रेम को साधारण सामाजिक बन्धन का आधार ही कहा जा सकता है। यह माधुर्य भाव से पूर्ण प्रेम अलौकिक होकर भी लौकिक है। साधारण परिवार की पत्नी अपनी पति (या) प्रेमी से रखनेवाले अटूट असीम प्रेम को भगवद् भक्ति में विलीन करने से वह माधुर्य प्रेम कहलाता है। माधुर्य प्रेम वासनाजन्य प्रेम नहीं वासना रहित प्रेम है। वासना जन्य प्रेम में स्वसुख की कामना का प्राधान्य रहता है, उसमें प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं। गोपियों के प्रेम कृष्ण के प्रति वासना रहित प्रेम है। लौकिक बन्धनों के माध्यम से अलौकिक भगवान के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होना। उसके वियोग में तड़प तड़प कर मरना आदि लौकिक चेष्टाओं के माध्यम से प्रेम को प्रकट करना। मध्यकालीन हिंदी कृष्ण काव्य पर इन आलवारों संतों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

10. <u>आलवार और उनकी रचनाएँ</u> :

तमिल साहित्य के इतिहास में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का समय मुख्यतया भक्तिकाल कहा जाता है। इसी काल में प्रसिद्ध वैष्णव भक्ति के कवि आलवार काव्य रचना रत थे। आलवारों ने भगवान विष्णु की अनन्त शक्ति और उनके विविध ऐश्वर्य को भक्ति का आधार बनाया है। श्रद्धापूर्वक अपनी

हीनता को प्रकट करते हुए जीव उस परब्रह्म का दास बनने की कामना करता है। इन कवियों ने प्रेम को परमतत्व मानते हुए उसी को परमाराध्य माना है। इनके द्वारा भक्ति जीवन के विधायक तत्व के रूप में स्वीकार की गई, इसमें विष्णु के सभी रूपों को स्वीकार किया गया और सगुण साकार का आग्रह होते हुए भी सगुण और निर्गुण में समत्वयवादी दृष्टि निरन्तर बनी रही। भक्ति और लोक संग्रह का संबंध इन कवियों की चिन्तनधारा का विशेष अंग है।

आलवारों की संख्या बारह है। इनके द्वारा गाये गये गीतों को संकलन करने का श्रेय श्रीनाथ मुनि को है। प्रथम तीन आलवारों का 'मुदलालवार' याने 'प्रथम त्रय' (या) 'आदित्रय' कहा जाता है। वे हैं – 1. पोय्गै आलवार, 2. भूदत्तु आल्वार, 3. पेयालवार। अन्य आलवारों का नाम है 4. तिरुमलिचै आलवार 5. नम्मालवार, 6. मधुर कवि आलवार, 7. कुलशेखर आलवार, 8. पेरियालवार, 9. आण्डाल, 10. तोंडरडिप्पोडि आलवार, 11. तिरुप्पाणालवार, 12. तिरुमंगै आलवार। इन बारह भक्त शिखामणि आल्वारों को विष्णु के प्रत्येक आयुध एवं सेवक का अवतार मानते हैं। आलवारों का भक्ति–साहित्य 'दिव्य प्रबंधम्' नाम से अभिहित किया जाता है। यह वैष्णव भक्ति आंदोलन और वैष्णव भक्ति साहित्य के इतिहास में एक बहुमुखी और बहुआयामी भक्ति–ग्रंथ है।

i) पोयगै आल्वार

इस विष्णु के शंख पांचजन्य का अवतार मानते हैं। इनका जन्म काँचीपुरम में हुआ था। ये अयोनिज थे। कहा जाता है जब ये युवा थे तब एक वैष्णव मंदिर में इनकी मुलाकात अन्य दोनों से (भूदत्तु आलवार, पेयोलवार) हुई। तीनों के बीच में आध्यात्मिक चर्चा चल रही थी। तब तीनों ने अनुभव किया कि उनके बीच में कोई और खड़ा है। इन तीनों ने भक्ति के साथ ध्यान से देखने पर ज्योतिर्मय रूप धारण करते हुए विष्णु ने दर्शन दिया और अदृश्य हो गये।

कृष्ण के रूप को विष्णु में समाकर देखना वैष्णवों में स्वाभविक गुण है। इसीलिए भक्ति पारवश्य में इन तीनों के मुँह से सौ–सौ पद निकले थे। वहीं मुदल तिरुवन्दादि (प्रथम तिरुवन्दादि) इरण्डाम तिरुवन्दादि (द्वितीय तिरुवन्दादि) मूण्राम तिरुवन्दादि (तृतीय) है। डॉ.वरदाचारी ने विशिष्ट अर्थों में उन्हें प्रस्तुत किया है। पोयगै ने ईश्वरीय सत्ता का आभास परशन द्वारा भूदत्तु ने पूरा–भक्ति द्वारा पेयालवार ने अन्तर्दष्टि समन्वित ज्ञान एवं परमज्ञान रूपी भक्ति द्वारा प्राप्त किया है।(49)

पोयगै आलवार की रचना है 'मुदल तिरुवन्दादि' इनकी भक्ति में एकश्रय ग्रहण के साथ–साथ समन्वयात्मकता भी दीख पड़ती है यह रचना 'अन्दादि' शैली अर्थात् अन्त्यशब्द शैली में लिखी गयी है। विष्णु के चरणारविंदों पर कवि बलि बलि जाते हैं। इनका कहना है कि हमारे शारीरिक अंगों की सार्थकता भगवन्नाम स्मरण में ही है।(50) पोयगै आलवार का कहना है कि उनका मन लीलाकारी कृष्ण को छोडकर किसी भी और के पास नहीं जाता। भक्त कवि भक्ति में डूबकर भगवान्नाम को माला की तरह समर्पित करते हुए कहते है

अयल निणर वलविणैयै अंजिनेन, अञ्जिवुय
निण तिरुवड़ि चेरवान
....
कट्रेन, तोलुदु। (51)

"हे विष्णु! मेरी ओर आनेवाली आपदाओं से भयग्रस्त हूँ। आपदाओं से बचाने के लिए तुम्हारे दिव्य नाम रूपी ग्रंथ से ऊँ नमो नारायण नामक दिव्य शब्द माला को तुम्हारे चरणारविंद में समर्पित करता हूँ। श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानकरा इन्होंने दोनों में अभिन्नता की स्थापना की। इतना ही नहीं वे ऐसे एक विशिष्ट वैष्णव कवि है जो विष्णु एवं शिव हरि और हर को एक मानते हैं। उनका कहना

है विष्णु एवं शिव दोनों एक ही है। नाम चाहे अलग हो, वाहन चाहे अलग, निवास अलग हो लेकिन दोनों एक ही है।(52)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इन्होंने पूर्ण समर्पण भाव के साथ कृष्ण एवं विष्णु का गुणगान किया है। इन्होंने भक्ति में अपने संपूर्ण अवयवों को लीन करके उनका स्वाद ले लिया है। अपने आराध्य को सर्वशक्तिमान के रूप में देखकर उन पर बलि बाले हो जाना उत्तम भक्ति के गुण है। इसका पोषण इन्होंने किया है। आऴ्वारों में 'आदि आऴ्वार' होने के नाते इनके द्वारा ही नालायिर दिव्य प्रबंधम रूपी बृहत भक्ति वृक्ष की नींव डाली गयी है। इन्होंने अपनी रचना में कृष्ण लीलाओं का वर्णन भी किया है। इनका मन विशेष रूप से श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित हो गया।

ii) भूदत्त आलवार :

भूदत्त आलवार 'भूतयोगिन्' नाम से भी जाने जाते है। वे बाल्यकाल से ही संत, पवित्र निष्कलंक ज्ञान के अपूर्व भंडार और श्रेष्ट भगवत् अनुरागी थे। ये भी पोयगे आलवार के समान घूम–घूकर भगवत् भक्ति का प्रचार करते थे और लोगों को उपदेश देते थे। सांसारिक विषयों के प्रति विमुख होकर आध्यात्मकता की ओर आकृष्ट हुए। इनका जन्म महाबलिपुरम में हुआ था। इसे लोग विष्णु की गदा का अवतार मानते हैं इनकी भक्ति सिद्धों की भक्ति जैसी है। पोयगै आलवार के साथ भगवान् विष्णु के ज्योतिर्मय स्वरूप को इन्होंने भी देखा है – ऐसा कहा जाता है।

<u>रचनाएँ</u> : इनकी रचना 'इरण्डाम तिरुवन्तादि' है। सौ गीतों से पूर्ण रचना है।

<u>वर्ण्यविषय</u> : भगवद्‌गुण, भक्ति की महिमा के साथ–साथ भागवत् में वर्णित 'नवधाभक्ति' का भी इन्होंने पालन किया है। विष्णु के गुणगान इनका प्रिय विषय

रहा है। इन्होंने अपने आराध्य की लीलाओं का वर्गन करके प्रपत्तिवाद पर बल दिया है। 'दास्य भक्ति' से संबंधित पद ज्यादा है।

नाम महिमा के लिए उदाहरण :

इनका कहा है – 'माधव' याने श्रीकृष्ण के नाम वेद के समान है। वेद–पठन से प्राप्त होनेवाला सारा फल श्रीकृष्ण के नाम स्मरण से प्राप्त होता है।(53) नवधा भक्ति के अंतर्गत आनेवाले 'पाद–सेवन' इनके पाशुरों में वर्णित अधिक हैं। इनके पदों में पादसेवन (54), नाममहिमा संबंधी गीत(55) दास्यभक्ति(56) भजन महिमा (57) आदि मिलती हैं इनकी भक्ति अनन्यभक्ति है जिसमें साधक का प्रेम और उसकी भावनाएँ एकोन्मुख हो जाती है, यह शुद्ध भक्ति ही शरणागति प्रपत्ति का ठोस आधार है। (58) इस स्थिति में कवि अपनत्व को भूल जाता है। इस स्थिति का विश्लेषण डॉ.वरदाचारी इस प्रकार देते हैं – THE VISION OF THE DIVINE ....is a gift of God to those who have rightly discerned or intuited the highest being and through devotion have sought him. The utter abandonment of all that militate against devotion and aspiration have to be eschewed. (59) भजन की महिमा से संबंधित इनका गीत कुछ इस प्रकार है – लक्ष्मी को हृदय में धारण किये विष्णु का भजन कीजिए। लंबे हाथों के साथ शोभित (आजानुबाहु) के चरणारविंद की महिमाओं का गायन करें। चार दिशाओं में रहनेवाले इसे सुनने देंगे (60) अपने मन को श्रीकृष्ण प्रेम में रमाने का सन्देश इन्होंने दिया है। (61) उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी असीम प्रेमभावना को इस प्रकार प्रकट किया है –

"माले नेड़ियाने, कण्णने ....

अलवु अण्राल यानुडैय अण्बु" (62)

प्रेमपूर्ण भगवान, देवताओं के नायक, अत्यंत सुन्दर तुलसीमाला धारण करनेवाले, हे श्रीकृष्ण, तुम्हारे प्रति इस दास ने जो प्रेम रखा है वह असीम है ।

iii). पेयालवार

पेयालवार प्रथम तीन आलवार के अंतर्गत आते हैं। इनका जन्म स्थान मैलापुर, चेन्नई माना जाता है। इनको भगवान विष्णु के खड्ग 'नादंक' का अवतार माना जाता है। बचपन से ही इनका मन गहरे अध्ययन की ओर आकृष्ट हो गया। सभी शास्त्रों का अध्ययन करके अपने मन को इन्होंने भगवान विष्णु के चरणारविंदों पर अर्पित किया है। इनकी 'मूण्ड्राम तिरुवन्तादि' अन्दादि शैली में लिखी गयी रचना है जो सौ गीतों से पूर्ण है। यह रचना 'नालायिरम दिव्य प्रबंधम्' में संकलित है। श्रीकृष्ण को अलौकिक पुरुष मानकर उसके नाम महिमा का इन्होंने वर्णन किया है। नवधा भक्ति के अंतर्गत आनेवाली 'पाद–सेवन' भक्ति इनके गीतों में दृष्टिगोचर होती है। ये भगवद्भक्ति में इतने तल्लीन होते थे कि अपने आप में हँसते थे, रोते घूमते थे। इसी कारण से लोग उसे पेयालवार के नाम से पुकारते थे। इनको पोयगै आलवार, भूदत्तु आलवार के साथ मंदिर में भगवान का दिव्य दर्शन मिला था – ऐसा कहा जाता है।

वर्ण्य विषय : "मूण्ड्राम तिरुवन्दादि' में (तृतीय तिरुवन्दादि) भगवद् गुण, भक्ति की महिमा, शरणागति आदि वर्ण्य विषय है। विष्णु महिमा के साथ श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का भी वर्णन भी इसमें किया गया है। श्रीकृष्ण महिमा संबंधी एक गीत इस प्रकार है – "नीरजनयन श्रीकृष्ण, लोक रक्षक अपने उदर में विश्व को धारण करनेवाले, तीन अडिग से लोकों को नापे, उनके पादारविंद भवबन्धन से पार करानेवाली दवा है, संपदा है, अमृत है। (63) अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति भक्त आलवार का दृढ विश्वास है। वे श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु के अवतार के रूप में मानते हैं। श्रीकृष्ण के पादारविंद पर अपनी आत्म को रखकर बलि बलि जाते हुए वे कहते हैं – 'नीरजनयन श्रीकृष्ण मेरे प्रति अटूट प्रेम रखता है तो मुझे हर दिन,

हर समय सत्काल ही है।(64) अविनाशी 'श्रीकृष्ण के चरणारविंद के गुणगान मेरा मुँह सदा गाते रहे। इनके पाशुर में दार्शनिकता भी ज्यादा है। भगवान श्रीकृष्ण की शरण में जाने के लिए मन को संबोधित करते हुए रचे–गाये पाशुर ज्यादा है। इनकी भक्ति में दास्यभक्ति का वर्णन भी मिलता है।

iv) तिरुमलि़चै आलवार :

इनको विष्णु के सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है। इनका जन्म तिरुमलि़चै नामक प्रांत में हुआ। इनके जन्म के संबंध में एक कहानी बहु प्रचलित है। ऋषि भृगु (भार्गव) एवं कनकांगी नामक निःसंतान दंपति ने पुत्र प्राप्ति के लिए दीर्घ सत्रयाग नामक यज्ञ किया। बाद में कनकांगी के पेट से एकमांसपिंड का जन्म हुआ। उसे देखकर हताश होकर तुलसी की छाया में छोडकर चले गये। मांसपिंड भगवान की कृपा से एक सुंदर शिशु बन गया। निस्संतान तिरुवालन एवं पंगयसेलवी नामक लकड़हारे दंपति को वह शिशु मिला और वे बड़े प्रेम से उसका पालन पोषण करने लगे। लेकिन वह बच्चा कुछ भी न खाता था, न पीता था। सारा अवयव होने पर भी अचेत जैसा लगता था। इससे तिरुवालन दंपति दुःखी थे। तब एक विष्णु भक्त वृद्ध ने उस बच्चे को गाय का दूध पहली बार पिलाया है और प्रतिदिन उस बच्चे को वहीं वृद्ध दूध पिलाता था। एकदिन बच्चे को दूध देकर शेष बचे दूध को उस वृद्ध ने अपनी पत्नी को दिया था। फलतः उन दोनों को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो 'कणिकन्नन' नाम से प्रसिद्ध है। तिरुमलि़चै आलवार 'अष्टांग योग की साधना सात साल तक किया है। ये 'भक्ति सार' के नाम से भी जाना जाता थे। ये सदा भगवद् ध्यान में मग्न रहते थे। इन्होंने सभी प्रकार के भक्ति–विषयक ग्रन्थों, शास्त्र, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग तथा महाभारत, वाल्मीकी रामायण,पुराण आदि का अध्ययन किया है। शाक्त धर्म के ग्रंथ, जैन ग्रंथों का भी अध्ययन करके शैव धर्म के प्रति आकृष्ट होकर शिव भक्त बन गये। वे शिव वाक्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। 'तिरुमयिलै' नामक स्थल में इन से पेयाल़वार मिले थे। पेयालवार ने विष्णु महिमाओं को, वैष्णव सिद्धांतों को, विष्णु

तत्व संबंधी उपदेश दिया है जिससे प्रभावित होकर 'शिववाक्य' वैष्णव बन गया है और तिरुमलि़चै आलवार नाम पूर्ण रूप से वैष्णव हो गया है। महाविष्णु का दिव्यनाम स्मरण करता हुआ, 'तिरुमलि़चै' प्रांत के पास स्थित 'गजेन्द्र सरस' नामक तालाब के तट पर ज्यादा वर्ष योगनिद्रा में डूबे हुए थे – ऐसा कहा जाता है। बाद में एक पहाडी गुफा में जाकर योग–समाधि में डूब गये। उनकी योग–समाधि से निकली हुई अखण्ड ज्योति से आकृष्ट होकर प्रथम तीन आल़वार इनसे मिलने गये। उन भक्तों का दिव्य मिलन हो गया था। फिर तिरुमालिचै आलवार अपना स्वस्थल आकर कुछ समय ठहरे। बाद में पोयगै आलवार के स्वस्थल जो पोय्गै तट पर योग में डूब गये। उस समय इनकी दिव्य कृपा से जन्मा कणिकन्नन आकर इनका दर्शन किया करते थे। इनकी महिमा संबंधी अनेक कहानियाँ, जनश्रुतियाँ प्रचलित है। एक जनश्रुति के अनुसार इन्होंने अपने योग–प्रभाव से एक वृद्धा को युवती बनाया। बाद में वह पल्लवराज की रानी बन गयी। बाद में एक दिन राजा ने कणिकन्न (जो तिरुमलि़चै आलवार का भक्त था) को अपने पर एक गीत रचने की आज्ञा दी। कणिकन्नन ने इनकार किया जिससे राजा ने क्रोधित होकर उसे राज्य से निकालने की आज्ञा दी। तब शिष्य कणिकन्नण् ने सारे वृत्तांत अपने गुरु तिरुमलि़चै आलवार को सुनाया था। तब आलवार ने भी उनके साथ उस राज्य को छोडकर जाने का निर्णय लिया। उन्होंने मंदिर जाकर भगवान को भी उन का साथ देने की प्रार्थना की। भक्त की प्रार्थना सुनकर भगवान भी उसके साथ चलने को तैयार हो गये। अगले दिन मंदिर में मूर्ति के गायब होने से राजा परेशान हो गए और उन्होंने उनसे माफ़ी माँगी। फिर मंदिर में मूर्ति स्वतः आ गयी। अब भी तमिलनाडु में वह स्थान है जो 'कच्चिप्पदि' के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ के भगवान शेषसायी विष्णु है। इसी प्रकार इनकी महिमा से संबंधित और एक कहानी भी प्रचलित है। एक बार आलवार 'पेसंबुलियूर नामक गाँव में किसी के घर के बाहर लेटे थे जहाँ वेद–पाठ हो रहा था। वेद–पाठ करनेवाले इनको वेद सुनने के लिए अयोग्य समझकर थोडा–समय चुप रहे थे। बाद में वेद–पाठ करने

के लिए तैयार हो गये तो अगला वाक्य वे भूल गये। अपनी गल्ती पहचानकर उन्होंने इनसे माफी माँग ली।

बाद में कुंभकोणम जाकर वे जीवन बिताने लगे। अपने द्वारा रचे हुए पाशरों को इन्होंने कावेरी नदी में छोड दिया है। तब तिरुच्चन्द वृत्तम एवं 'नाण्मुकण तिरुवन्तादि' आदि रचनाएँ फिर पानी से वापस आयी–ऐसी भी एक जनश्रुति है। ये बाद में बहुत समय तक योग–समाधि में रहे थे।

<u>उनकी रचनाएँ</u> : 1. तिरुच्चन्दवृत्तम, 2. नाण्मुकन तिरुवन्तादि।

<u>तिरुच्छन्दवृत्तम एवं उसका वर्ण्य विषय</u> :

इन्होंने भगवान विष्णु को श्रेष्ठ मानकर उनके अवतार श्रीकृष्ण को सर्वव्यापी के रूप में वर्णन किया है। शैव से वैष्णव बनने के बाद इन्होंने अपनी रचना में शिव से विष्णु की श्रेष्ठता को दिखाया है। (65) भागवत में वर्णित नवधाभक्ति(66) के अंतगत आनेवाली पाद–सेवन, नाम–स्मरण, दास्यभक्ति का चित्रण इन्होंने किया है। भगवान श्रीकृष्ण को सृष्टि कर्ता, परम आदि भगवान मानते हुए आऴ्वार कहते हैं – क्रूर कुवलय पीठ नामक हाथी एवं वैरी कंस का वध तुमने किया। सारे भुवनों को नापे भगवान,पूतना के विषैली दूध को पीकर उसका अंत किया। नीलमेघश्यामल। तुम ही इस संसार के प्रथम हो। (67) 'अगर तुम्हें वर देना है तो इस सेवक के लिए ऐसा वर दो' सभी प्राणियों के प्राण, वरदायी! हृदयवासी! भटकनेवाले मेरे मन सदा तुम्हारे चरणारविंद में मग्न हो जाँए।(68)

<u>नाण्मुकन तिरुवन्तादि</u> :

सर्वव्यापी भगवान विष्णु के गुणगान, विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता इनके द्वारा गायी गयी है। भक्ति शास्त्रों में वर्णित नाम महिमा संबंधी पाशुर भी

है। आलवार अपने आराध्य को अलौकिक मानकर उन्हें सर्व शक्तिमान (69) मानकर उन पर बलि बलि हो जाते है। श्रीकृष्ण के नाम की दिव्यता का वर्णन करते हुए कवि कहते है। "कानों के लिए मधुर नाम है नीरज नयन श्रीकृष्ण का नाम।" (70) सभी प्राणि[illegible] की रक्षा करनेवाला नाम, कवि के लिए काव्य–सृष्टि करने में उपयोगी नाम। वेदों द्वारा प्रतिपादित श्रेष्ठ ना[illegible] भी वहीं।" नाण्मुकन तिरुव[illegible]तादि ऐसी एक रचना है जिस में कवि का कोमल भक्त हृदय भगवान के दिव्यत्व, महिमा को देखकर परवशता से पुलकित हो जाता है। इनके द्वारा वर्णित भक्ति में आध्यात्मिकता, रहस्यात्मकता की झलक भी मिलती है। परमानंद प्राप्ति भक्ति का लक्ष्य है। सगुण भक्तों में खासकर वैष्णवों में नारायण से तादात्मिक ही सार्थक भक्ति का फल है।

v). नम्मालवार :

पांड्य देश के तिरुनगरी नाम से प्रसिद्ध तिरुक्कूरुकर के निवासी करियर एवं नंगैयार दंपति के यहाँ इनका जन्म हुआ था। ये करिमारन्, मारन् शठगोप, परांकुश, गुरुकैपिरान, तिरुक्कुरुगूर नंबि, वकुलाभरणम्, अरुलमारन् आदि नामों से प्रसिद्ध है। 'नम' का मतलब 'हमारा' प्यार से लोग उसे 'अपना आलवार' नम्मालवार मानते थे। कहा जाता है कि नम्मालवार बचपन से ही कुछ खाते नहीं, पीते नहीं। सदा समाधि में डूबा रहते थे। इनको भगवान विष्णु के विश्वक्सेन अवतार माना गया। ये 16 वर्ष तक योगनिद्रा में मग्न थे। तब एक विचित्र घटना घटी। आलवारों में से एक जिनका नाम मधुर कवि है, जो पांड्य देश के निवासी थे एक बार उत्तर भारत में तीर्थाटन कर रहे थे, तब दक्षिण से उनको एक दिव्यज्योति का प्रकाश दिखाई देने लगा। आश्चर्य चकित होकर मधुर कवि दक्षिण की ओर उन्मुख हुए। उस ज्योति आनेवाली दिशा को ढूँढते हुए मधुर कवि सीधे आये थे। वह नम्मालवार के पास आ पहुँची। योग–निद्रा में डूबे नम्मालवार के दिव्य रूप को देखकर मधुर कवि उसके चरणों पर गिर पड़े। दोनों के बीच

आध्यात्मिक चर्चा हुई। तब से मधुर कवि नम्मालवार के प्रमुख शिष्य हो गये। नम्मालवार ने उनके साथ पाशुरों की रचनाएँ की।

रचनाएँ :

नम्मालवार द्वारा रचित रचनाएँ चार हैं। 1. तिरुवृत्तम (जो ऋग्वेद सार के नाम से प्रसिद्ध है।), 2. तिरुवासिरियम् (जो यजुर्वेदसार के नाम से प्रसिद्ध है), 3. पेरिय तिरुवन्तादि (जो अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध है), 4. तिरुवाय्मोलि (जो सामवेदसार के नाम से प्रसिद्ध है)

तिरुवृत्तम् का वर्ण्य विषय :

चार पंक्तियों के छंद में रचित एक सौ पदों की रचना है 'तिरुवृत्तम' है। यह विरह वर्णन से पूर्ण रहस्यात्मक रचना है जहाँ आत्मा रूपी नायिक अपने प्रियतम परमात्मा श्रीकृष्ण के विरह में तड़पती है। माधुर्य भक्ति का सर्वेत्तम चित्रण इनके पाशुरों में मिलता है। तिरुवृत्तम की विरह विदग्धा, व्याकुल नायिका प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में अपने नायक की कांति को देखती है। वियोग के कारण उसका विरह संध्या में ज्यादा हो जाता है। चन्द्रागमन और मंद पवन उसके हृदय को जलाते है। नायिका के विरह को कवि ने 'व्याधि' के रूप में चित्रण किया है उसे दूर कराने के लिए प्रियमिलन की आवश्यकता पर जोर देते है।(71) अपने प्रिय को वह मेघ, भ्रमर, कोयल, हंस आदि के माध्यम से संदेश भेजती है। उसका विरह इतना बढ़ जाता है कि समुद्र से वह अपनी विरह वेदना को सुनाती है। विरह के परंपरागत वर्णन, लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का चित्रण इस रचना की विशेषता है। यह आत्मा की तड़प है। तीव्र वेदना है। परमात्मा से मिलने की उत्कण्ठा है, लालसा है। कवि की कोमल हृदयानुभूति का सुन्दर चित्रण इसमें मिलते है। (72)

<u>तिरुवासिरियम का वर्ण्यविषय</u> :

तिरुवासिरियम आलवार की भक्ति भावना यथेष्ट रूप से प्रकट करनेवाली रचना है। इसमें भक्ति की विशिष्टता का वर्णन मिलता है। इसमें नवधाभक्ति के अंतर्गत आनेवाली वन्दना, दास्यभक्ति का वर्णन किया गया है। परमार्थलीन भक्त जब अपने अहं का तादात्म्य अपने उपवस्य से कर लेता है तब उसे एक अलौकिक, अव्यक्त आनंद प्राप्त होता है जिसे भक्ति रस कहते है। नारद भक्ति सूत्र में इसे विस्तार से बताया गया है। 'ज्ञान प्राप्त करने के बाद मनुष्य मस्त हो जाता है। स्तब्ध हो जाता है। आत्मा में लीन होकर परमप्रेम– भक्ति को प्राप्त कर लेता है। उसे किसी के प्रति आकर्षक नहीं होता क्योंकि वह सब कुछ त्यागना चाहता है।(73) ऐसी पराभक्ति में त्याग के कारण भक्त भगवान को सबकुछ समर्पित कर देता है।(74) इसी प्रकार भक्ति का अनुभव करते हुए आलवार कहते है –

"उलगुपडैत्तु उण्ड् अरै कव्वल

....

तल्लियोर कुरिप्पे। (75)

लोकों के सृष्टिकर्ता मेरे परमपिता। मेरे भाग्य को बदलनेवाले विष्णु। तुम्हारे चरणारविंद को भक्त लोग शिरोधार्य मानते है। भक्ति पारवश्य में लीन होकर भक्ति रूपी मधुपन वे करेंगे। असीम आनंद सागर में डूबेंगे। संपदा के पीछे, विष्यों के पीछे भक्त दौडेंगे नहीं। उनके लिए भक्ति रूपी परमानंद मधुर आनंद मिल गया है। <u>इसमें आलवार भक्ति रस की तुलना अमृतरस से करते है।</u>

<u>पेरिय तिरुवन्तादि</u> :

इस रचना में आलवार ने कृष्ण को सर्वस्व समर्पण किया। श्रीकृष्ण को सर्वव्यापी शक्तिमान के रूप में देख कर उनकी शरण में कवि जाते है। भगवान

कृष्ण के सिवा उन्हें कोई नहीं। भक्ति की दास्यभावना कमाल है उस में एकाश्रय ग्रहण की अधिकता है। कवि श्रीकृष्ण को देखकर इस प्रकार कहते है – "मेरा मन उसका गुलाम है। मेरे जैसे भाग्यवान दुनियाँ में कौन होगा।(76) आलवार को श्रीकृष्ण के सिवा कोई और नहीं। श्रीकृष्ण को अपना परमबन्धु मानते हुए वे कहते है हे लीलाकारी श्रीकृष्ण! मेरे स्वामी। मेरी माता तुम ही हो। जन्मदाता पिता तुम ही हों विद्यादान प्रदान करनेवाले पूज्य गुरु तुम ही हो। कपटी पूतना का वध तुमने किया हैं मेरा मार्गदर्शी तुम ही हो। (77) अपने आराध्य को दुःखनाशक मानकर उन पर आलवार दृढ विश्वास रखते है। इनकी भक्ति भावना में ज्यादा दास्यभक्ति दिखाई देती है।

तिरुवायमोलि का वर्ण्यविषय :

इस रचना के पूर्वार्ध में कवि की दार्शनिकता प्रकट होती है। कवि भगवान को अपना प्राणतुल्य स्वीकार करते है। यह माधुर्यभक्ति की चरम अवस्था है। इस रचना में निर्गुण मार्गी भक्ति का कवि ने ज्यादा वर्णन किया है। निर्गुण पंथियों के सिद्धांतों के अनुसार ब्रह्म निम्नलिखित है –

1. वह घट–घट व्यापी है उसे व्यर्थ रूप से लोग बाहर ढूँढते हैं, वह तो अंतर्यामी है।
2. वह हृदयवासी है। उस भगवान का अंश ही जीव है जो अद्वैतवाद का प्रतिपादन है।
3. संसार नश्वर है, मिथ्या है ब्रह्म सत्य है।
4. अहंभावना को मिटाने से ब्रह्म की प्राप्ति आसान हो जाता हैं
5. भगवद् प्राप्ति भक्तों के लिए सुलभ साध्य है। उसके लिए आवश्यक है प्रेम मूलक भक्ति।

नम्मालवार ने इन सब निर्गुण भक्ति सिद्धांतों को अपनाकर उन्हें अपने सगुणाकारा भगवान के गुणगान में रखकरा वर्णन किया है। नवधा भक्ति के

अंतर्गत आनेवाली वन्दना की महिमा इन्होंने खूब गायी है। (78) हरि–हर की एकता इनकी समन्वयात्मकता का परिचायक है। दास्य भक्ति भावना भी इस रचना में कूट कूट कर भरी हुई है।

vi). मधुर कवि आलवार :

मधुर कवि विष्णु के 'गरुड़वाहन' का अवतार माना जाता है। वे तमिल एवं संस्कृत के पंडित थे। इनका जन्म तिरुक्कोलूर नामक स्थान में एक ब्राह्मण वंश में हुआ था। परम भक्त होने के नाते भारत के दिव्य पुण्य क्षेत्रों का तीर्थाटन करते हुए अयोध्या गये। तब दक्षिण की ओर से दीखनेवाली एक अपूर्व ज्योति से प्रभावित होकर दक्षिण की ओर आये। वहाँ तिरुक्कूरुहूर नामक प्रांत में स्थित एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थिति में बैठे नम्मालवार को देखा। उनकी तपस्या के दिव्य प्रभाव से ज्योति निकल रही थी। मधुर कवि ने उनसे आध्यात्मिक प्रश्न किया तो नम्मालवार के द्वारा उस प्रश्न के लिए उत्तर मिला। उस जवाब से संतुष्ट होकर नम्मालवार के चरणों पर गिर पडे और अपने गुरु माने थे। नम्मालवार एवं मधुर कवि के बीच गुरु–शिष्य का सत्संबंध रहा। शेष जीवन गुरु सेवा में अर्पण किया। इन्होंने गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए 'कण्णिनुन चिरुत्तांबु' नामक ग्रंथ लिखा। इस कृति में भक्ति की आवश्यकता की चर्चा भी की है। अपनी कविताओं की मधुरता के कारण ये 'मधुरकवि' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इन्होंने मदुरै नगर के संघ साहित्यकारों को अपनी विद्वत्ता से हराया। नम्मालवार के पाशुरों का प्रचार करने का श्रेय मधुर कवि को हैं। मधुर कवि अपने गुरु नम्मालवार के प्रति बड़ी श्रद्धा दिखाते थे और उनके पाशुरों की व्याख्या भी करते थे।

रचनाएँ : 'कण्णिनुन् चिरुत्तांबु' मधुर कवि आलवार की एक मात्र रचना है।

<u>वर्ण्यविषय</u> : विष्णु के गुणगान, श्रीरंग क्षेत्र के विष्णु भगवान श्रीरंगनाथ की महिमा। आखिरी पाशुर में श्रीकृष्ण दर्शन का वर्णन इन्होंने किया है। मधुरकवि का कहना है कि श्रीकृष्ण का दर्शन करना आँखों का सौभाग्य है। कवि कहते है कि "नीलमेघ श्यामल श्रीकृष्ण, गोकुलवासी, माखन चोर, मेरा हृदयहारी, सृष्टिकर्ता सुन्दर श्रीरंगवासी श्रीकृष्ण के अपार रूप सौंदर्य को देखने के बाद मेरी आँखे किसी के प्रति भी आकृष्ण नहीं होगी। बाकी सब गुरु महिमाओं से संबंधित पाशुर है।

vii). <u>कुलशेखर आल्वार</u> :

<u>कुलशेखर आल्वार महाविष्णु के कौस्तुभ–मणि का अवतार माना गया है</u>। कुलशेखर चेर देश के (प्रस्तुत केरल) नगर राजाओं में से प्रसिद्ध दृढ़व्रत राजा का बेटा था। इनका बचपन राजवैभव के साथ गुजरा। संस्कृत, द्रविड़ भाषाओं के पारंगत थे। राजा कुलशेखर बनने के बाद वे चक्रवर्ती भी बन गये। इनकी वीरता को देखकर मुग्ध होकर पांड्य राजा ने अपनी बेटी से इसकी शादी करवायी। रामाण का श्रवरण करना इनकी आदत बन गयी थी। कहा जाता है कि एक दिन ये रामायण सुनते हुए, भावुक होकर खरदूषण वध करने मे राम की सहायता करने के लिए अपने सैनिकों को जाने की आज्ञा दीं वे भक्ति में उतना डूबा रहते थे कि इनके संबंध में एक कहानी भी प्रचलित है। इनको कहानी सुनानेवाले वैष्णव भक्तों को इनसे अलग करने की सोच मंत्री के मन में आ गयी। भगवान के 'नवमणिहार' को खुद छुपाकर दोष वैष्णवों पर लगाया। तब कुलशेखर ने दृढता के साथ उसे अस्वीकार किया। इतना ही नहीं विष्णु पर इतनी दृढ भक्ति रखते हुए कालसर्पवाली मटकी के अंदर हाथ डालते हुए कहा "अगर वैष्णव चोरी करेगा तो यह सर्प मुझे काटेगा।" सर्प ने उसे कुछ भी नहीं किया। बाद में मंत्री ने अपना दोष मान लिया। यह उसकी भक्ति से संबंधित कहानी है। बाद में राज्यभार अपने पुत्र को सौंपकर इन्होंने दार्शनिक विचारों का परिपोषण किया और विष्णु

भक्त बन गए। इनकी भक्ति भावना सराहनीय है जिसमें समर्पणभाव की प्रधानता ज्यादा है। इनकी रचना है 'पेरुमाल तिरुमोलि'।

'पेरुमाल तिरुमोलि में वर्ण्यविषय :

कुलशेखर आलवार ने भक्ति की तन्मयता, भक्ति की पारवश्यकता संबंधी पाशुर और विष्णु के शेषसायी रूप श्रीरंगानाथ की महिमाएँ गायीं। संसार की नश्वरता, शाश्वत भगवान की श्रेष्ठता का वर्णन अपने पदों में किया है।

माधुर्य भक्ति के संदर्भ में कहा गया है कि पूर्ण प्रेम के साथ, समर्पण भावना से निष्काम भाव से भगवान पर भक्ति रखना और भगवान की विस्मृति में परम व्याकुल होना। (79) ब्रज की गोपियों के माध्यम से आलवार ने श्रीकृष्ण की बतरस की लालच, उनकी नटखटी चेष्टाओं का वर्णन किया है। (80) एक गोपी श्रीकृष्ण से रूठकर कहती है 'हे कृष्ण! पतले कमरवाली एक स्त्री के साथ जाते हुए उसके मुख को घूँघट में छिपाकर, उसके साथ गली में जाते वक्त मैं देखती रह गयी। तभी सामने आयी एक और गोपी से आँखे मिलाकर, इशारा करके, हाथों से उसे संकेत करके बुलाया है भोली भाली स्त्री को छोडकर मेरे पास क्यों आया, उनके पास ही जा" (81) इसमें एक स्त्री के अपने प्रियतम के प्रति दिखाए जानेवाले स्वाभाविक क्रोध का चित्रण मिलता है। माधुर्यभक्ति में भक्त प्रेम की अधिकारिणी बन जाती है जहाँ भगवान पर आरोप भी लगाती है। वात्सल्य एवं करुण रस का अनुपम संगम कुलशेखर आलवार की लेखनी की विशेषता है प्रायः साहित्य में इन्होंने एक नयी धारा का परिचय करवा दिया है। वैसे तो कृष्णभक्त कवि यशोदा के माध्यम से श्रीकृष्ण को आलंबन बनाकर वात्सल्य रस का वर्णन करते हैं। लेकिन कुलशेखर आलवार देवकी के द्वारा पुत्र वियोग की तड़प, उनकी याद में उनकी चेष्टाओं की कल्पना करके सुरम्य वर्णन किया है। कुलशेखर आल़वार देवकी के माध्यम से कृष्ण की चेष्टाओं की कल्पना करवाकर वात्सल्य रस का पोषण करते हैं। देवकी श्रीकृष्ण की नटखट चेष्टाओं को, बाललीलाओं को याद

करके उसे अनुभव करनेवाली यशोदा के सौभाग्य के बारे में सोचती हुई अपने को अभागिनी महसूस करती हुई विलाप करती है। यह वात्सल्य एवं करुण रस का अनुपम संगम है।

viii). पेरियाल़वार :

तमिल साहित्य में बालवर्णन की सजीवता, मार्मिकता, मनोवैज्ञानिकता के चित्रण में पेरियालवार का स्थान सर्वोपरि है। पेरियालवार भक्त के साथ–साथ पंडित भी है। इन्हें महाविष्णु के 'गरुड' का अवतार माना जाता हैं। मद्रास के श्रीविल्लि पुत्तूर के सद्ब्राहमण मुकुन्दभट्ट एवं उनकी पत्नी पद्मवल्ली के यहाँ इनका जन्म हुआ। पहले इनका नाम 'विष्णुचित्त' था। बचपन में इनको आचार्यो द्वारा शिक्षा दी गयी है। बचपन से ही वे विष्णुभक्त थे। इनके संबंध में एक घटना अत्यंत प्रसिद्ध है। पांड्यदेश के राजा वल्लभदेव जो शास्त्रों का ज्ञानी थे, उन्होंने एक आध्यात्मिक परीक्षा रखी थी। परीक्षा की शर्त यह थी कि राजा द्वारा खंभे पर बंधवायी सोने की थैली को अपने शास्त्र ज्ञान से गिराना था। तब राजा उसे पूर्ण पंडित के रूप में स्वीकार करेंगे, यही शर्त थी । पेरियालवार ने साधारण भक्त की तरह अपनी असमर्थता प्रकट की। लेकिन भगवान विष्णु ने उसे साहित्यिक एवं आध्यात्मिक परीक्षा में भाग लेने की आज्ञा स्वप्न में दी। भगवान की आज्ञा का पालन करने के हेतु पेरियालवार ने आध्यात्मिक परीक्षा में भाग लिया। विष्णु को 'परतत्व' प्रमाणित किया और उनकी महिमाओं का गुणगान किया। तुरंत सोने की थैली खुद ऊपर से गिर पड़ी। राजा ने प्रसन्न होकर विष्णुचित्त को 'पट्टरभिरायन' सार्वभौम' नामक आदि उपाधि से विभूषित की। इन्होंने विष्णु के अवतार भगवान श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होकर उनकी लीलाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। प्रायः इसी का प्रभाव परवर्ती सभी भाषाओं के साहित्यों पर पड़ा है। भगवान श्रीकृष्ण के अवतार के दिव्यत्व को 466 पाशुरों में गाया है। अन्य पाशुर कुल मिलाकर 473 पाशुर है। इनके पाशुरों का संग्रह है 'तिरुमोलि' जो 'पेरियाल़वार तिरुमोलि' के नाम से प्रसिद्ध है।

साधारणतः बड़े लोग ही छोटे लोगों को आशीर्वाद देते है। इन्होंने बड़ी तन्मयता से भगवान श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देते हुए उसे सैकड़ों वर्ष जीने को कहा। इस प्रकार शतवर्ष जीने की लालसा प्रकट करनेवाले गीत हैं 'तिरुपल्लाण्डु पाडल'। इस वहज से भगवलोगों ने इनको 'पेरियालवार' नाम देकर अपनी अपार श्रद्धा प्रकट की। पेरियालवार का शाब्दिक अर्थ है 'पेरिय-आलवार' याने बड़े आलवार, बुजुर्ग आलवार।

रचनाएँ – इनकी दो रचनाएँ हैं 1. तिरुपल्लाण्डु, 2. तिरुमोलि

तिरुपल्लाण्डु का वर्ण्य विषय : यह 12 पाशुरों से पूर्ण रचना है। इसमें श्रीकृष्ण के प्रति गाये गये 'पल्लाडु' है। कवि अपने आराध्य श्रीकृष्ण को लंबे साल जीने की चाह प्रकट करते है। भक्ति साहित्य में भगवान को आशीर्वाद देना एक नयी प्रवृत्ति दी है अपने आराध्य का गुणगान करते हुए उन्हें कई साल सुख संतोष के साथ जीने का आशीर्वाद देते है। उनकी भक्ति में दो प्रकार की भावनाएँ है –

1. एक तो रागानुगा भक्ति के साथ दास्यभक्ति जब वे भगवान को सर्वशक्तिमान एवं अलौकिक रूप में देखते है। दूसरी वात्सल्य भक्तिभावना – अपने आराध्य को छोटा–शिशु मानकर अति स्नेहवश प्रेमवर्षा बरसाना, आशीर्वाद देना आदि। पेरियालवार अत्यंत प्रेम के साथ उनके पल्लाण्डु इस प्रकार गाते है कि "लोक में शत्रुनाशक, हमें विजय प्रदान करनेवाला, आजानुबाहु माणिक्य रंग वाला, तुम्हारे अरुण चरण पद्म ही हमारा शरणालय। इसीलिए तुम कई करोड़, शत सहस्र साल जियो। (82) इनके पाशुरों का सार यह है कि भगवान पर भक्ति रखने के लिए जाँति–पाँति का भेदभाव नहीं है। उनके नामस्मरण करने का सभी अधिकारी है। (83) भगवान के सामने समस्त जन समान है।

<u>तिरुमोलि का वर्ण्यविषय</u> इसमें भगवान श्रीकृष्ण के अवतार की महिमा और कृष्ण की बाललीलाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें बाल्य जीवन की साधारण से साधारण तक घटनाओं तथा बालक की सुलभ चेष्टाओं और अंतर्दशाओं का सूक्ष्म अत्यंत मनोवैज्ञानिक और कलात्मक वर्णन हैं बालवर्णन के समय भक्त कवि अपने आराध्य को अलौकिक समझाते हुए भी इतने सहज स्वाभाविक रूप में वर्णन करते हैं कि वे हमारे नेत्रों के समक्ष हँसते मुस्कुराते हुए घुटनों के बल पर रेंगतें हुए, उठ–उठकर गिरते हुए, इधर उधर दौडते हुए, मित्रों से झगड़ते हुए माँ से झूठी शिकायत करनेवाले किसी नटखट भोले भाला चंचल बालक की छवि के रूप में उपस्थित होते है। परियालवार ऐसे एक कमनीयय कवि है जिन्होंने तमिल साहित्य में सर्वप्रथम 'पिल्लै–तमिल' शैली को अपनाया है। इनके द्वारा ही तमिल भाषा साहित्य का वात्सल्य वर्णन अपने रूप को विशाल एवं सुदृढ़ बना सका है पिल्ले का अर्थ है 'शिशु'। उन्होंने बालवर्णन के लिए 'पिल्ले तमिल' नामक पद्धति को अपनाया है। अपने आराध्य लीलानायक श्रीकृष्ण के बाल्यकाल को 'काप्पु, चेंकीरै, ताल, चप्पणी, मुत्तम, वारानै, अंबुलि, चिरूंपरै, चिट्रिल, चिदैत्तल, चिरुतेरोट्टल' नामक व[illegible]खण्डों में विभाजित करके प्रत्येक दशा में होने वाली विशिष्ट बाल चेष्टा का वर्णन किया है। इसके अंतर्गत शि[illegible]ु के दो मास की चेष्टा से ले[illegible]र, सिर को ऊपर उठाकर हिलाना, माँ की लोरी सुनना, दोनों हाथों को मिलाकर ताली बजाना, दूसरों की प्रार्थना पर चुंबन के लिए अपने मुख को आगे बढ़ना, घुटनों के बल पर रेंगना, चाँद खिलौना माँगना, हाथों को रखकर मुख छिपाना आदि शिशु की चेष्टाएँ आती हैं। इससे यह विदित होता है कि पेरियालवार बालविज्ञान के पारखी है।

ix) <u>आण्डाल</u> :

बारह आलवारों में एक मात्र महिला भक्त कवि आण्डाल है। ये माधुर्योपासिका है। यह विष्णुचित्त (पेरियालवार) की तनूजा है। नंदनवन में तुलसी पौधों के बीच में मिली बालिका है। बचपन से ही पिता के द्वारा दिये गये

ज्ञानोपदेश, दैवचिंतन के कारण इनको स्वत भक्ति प्राप्त हुई। इन्होंने श्रीरंगम् क्षेत्र के भगवान शेष पर शयनित श्रीरंगनाथ (विष्णु) एवं श्रीकृष्ण में अभिन्नता स्वीकार की है। बचपन से उन्होंने विष्णुस्वरूप रंगनाथ को अपने पति के रूप में स्वीकार करके उनसे शादी करने का निर्णय लिया। हर रोज वे विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होकर उनकी महिमाएँ गाती थीं। इनका दूसरा नाम गोदा है। 'आण्डाल' अपने विल्लित्तूर को ब्रज मानकर खुद गोपी बनकर भक्ति का आस्वादन करती रही। आण्डाल की कविताएँ प्रेम पीडिता नारी की विभिन्न भावावस्थाओं के मार्मिक चित्र है। (84) इन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति नायक–नायिका भाव से भक्ति की। श्रीकृष्ण को अपने इष्टदेव एवं पति के रूप में स्वीकार करके उनके प्रति गहरा आत्मीय प्रेम प्रकट किया।

बालिका से जब वह युवती बनी तब तो, वह कृष्ण को ही अपने पति के रूप में मानकर उन्हीं के लिए अपने आपको समर्पित करती थी। (85) इनके संबंध में तमिलनाडु में एक प्रमुख कहानी प्रचलित है। आण्डाल प्रतिदिन विष्णु पूजा के लिए पुष्पों को गूंथकर मंदिर जानेवाले पिताजी पेरियाल़वार को मालाएँ देती थी। वह पहले माला को खुद पहनकर दर्पण के सामने अपने को देखेकर बाद में उसे मंदिर के लिए देती थी। जब सारी बात पेरियालवार को मालूम हो गयी, तो वे क्रोध हो गये। उस दिन उन्होंनो भगवान को फूल की माला नहीं समर्पित कीं। स्वप्न में भगवान ने आकर कहा कि आण्डाल की पहनी हुई माला ही उसको पसंद है, क्योंकि वह लक्ष्मी का अवतार है। आलवार ने जागकर उनके दिव्यत्व के बारे में जान लिया। तब से वे 'शूड़िकोडुत्त सुड़र कोड़ि' के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् 'पहनकर दी गयी पुष्पमाला'।

पेरियालवार उनकी शादी करने के लिए लडकों को ढूँढने लगे। आण्डाल ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा कि वह किसी से विवाह नहीं करेगी। वह श्रीकृष्ण के लिए ही समर्पिता है। आण्डाल ने अपने स्वदेश विल्लिपुत्तूर को

गोकुल मानकर, उधर रहनेवाली अपनी समवयस्क स्त्रियों को गोपियाँ मानकर, श्रीरंग के मंदिर में रहनेवाले श्रीरंगनाथ को श्रीकृष्ण मानकर अपने उद्धार के लिए 'तिरुप्पावै' नामक कृति की रचना की। कहा जाता है कि उन्होंने वैदिक परंपरा के अनुसार विष्णु के अवतार श्रीरंगनाथ को श्रीकृष्ण मानकर उनसे विवाह कर लिया।

इनके द्वारा रची गयी रचनाएँ दो है। 1. तिरुप्पावै, 2. नाच्चियार तिरुमोलि। इनके द्वारा रचित तिरुप्पावै एवं नाच्चियार तिरुमोलि में सौम्यता कोमला, लालित्य, मधुरता ज्यादा मिलती है।

<u>तिरुप्पावै में वर्ण्यविषय</u> : श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए आण्डाल खुद 'गोपी' बनकर अन्य सखियों से मिलकर कात्यायनी व्रत का पालन करने का नियम बताती है। इसमें आण्डाल श्रीकृष्ण की लीलाओं और महिमाओं का वर्णन करती है। यह तीस पाशुरों से पूर्ण गीतिकाव्य है जो आजकल भी मार्गशिर महीने के तीस दिन (दिसंबर 14 से जनवरी 14 तक) मनाया जाता है। लोग बड़ी भक्ति श्रद्धा के साथ हर एक दिन एक पाशुर श्रीकृष्ण पर गाते हुए प्रातः उठकर उसकी पूजा करते हैं। अब भी तमिलनाडु में यह मान्यता है कि अविवाहिता द्वारा व्रत करने से उसका विवाह शीघ्र हो जायेगा और विवाहित स्त्रियाँ करेंगी तो सदा सुहागिन बनकर रहेगी। बाह्य दृष्टि से देखने पर यह ललित राग रागनियों से बद्ध सुललित गीत है लेकिन यस गीतिकाव्य में प्रतीकात्मकता ज्यादा मिलता है। इस पाशुरों में एक गोपी दूसरी गोपी को जगाती हुई श्रीकृष्ण की पूजा करने का उपदेश देती है। सांसारिक माया रूपी निद्रा में ग्रस्त जीव (गोपी) को जगाना इनका ध्याय है। एक गोपी दूसरी गोपी को इस प्रकार जगाती है (86) "हे मूर्ख नारी। उषोदय हो गया है। किच् किच् ध्वनि करनेवाले गौरैयों की आवाज़ तुमने सुनी नहीं, संपदा संपूर्ण खुशबू युक्त वेणियों के साथ ब्रजनारियों की मक्खन मंथनेवाली आवाज तुमने सुनी नहीं, तू ऐसी है लेकिन हमारी नायिका बताती है कि नारायण ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया है उसके गुणगान सुनकर भी तुम

सोती रहीं, शोभा देनेवाली जागो। दरवाजा खोलो। आण्डाल स्त्री होने के नाते उनकी स्वभाव जन्य कोमलता, सरसता तिरुप्पावै में मिलती है। तिरुप्पावै के अंतर्गत नामस्मरण की महिमा (87) दास्यभक्ति (88) और माधुर्य भकित मिलती है। इस रचना पूर्ण रूप से माधुर्य भक्ति से युक्त है। इस रचना का उद्देश्य ही श्रीकृष्ण को पति के रूप में पाना है। इस रचना में मूल रस माधुर्य है आंशिक रूप से दास्य भक्ति मिलती है। नायिका–नायक के श्रृंगार का वर्णन, संघकालीन साहित्य में चित्रित 'नप्पिन्नै' का वर्णन मिलता है। उनको श्रीकृष्ण की प्रेयसी मानते हुए उनके साथ शयनागार में होनेवाली श्रृंगारिक चेष्टाओं का मार्मिक वर्णन भी आण्डाल ने इसमें किया है। (89) इस रचना के माध्यम से आण्डाल अपने नायक श्रीकृष्ण से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा, अभिलाषा प्रकट करती हुई उनकी ओर समर्पण भावना के साथ, निष्काम होकर रास के ध्यान में मग्न हो जाती है। वैष्णव साहित्य के लिए यह एक अमर निधि है।

<u>नच्चियार तिरुमोलि में वर्ण्य विषय</u>:

आण्डाल अपना उद्धार करने में देर करनेवाले श्रीकृष्ण से मिलने के लिए तीव्र उत्कंठा के साथ कामदेव की पूजा करती है। कामदेव बिछुड़े हुए प्रेमियों को मिलाने में चतुर है। माधुर्यभक्ति शाखा के सभी कवि इसके समर्थक है। आण्डाल माधुर्योपासिका होने के नाते कामदेव की श्रद्धा से पूजा करके उनसे अपने को श्रीकृष्ण से मिलाने की प्रार्थना करती है। इस रचना की प्रमुख विशेषता यह है कि कवयित्री ने तमिलनाडु में प्रचलित पारंपरिक प्रादेशिक, प्रांतीय पद्धतियों का पालन किया है। उदाः केलिए आण्डाल इस प्रकार कहती है 'हे कामदेव! सफ़ेद चावल को पीसकर उस से मैं ने पूरा रास्ता रंगोली से सजाया है। प्रातः काल ही उठकर नहाकर, चींटें–कांटे रहित छोटी लकड़ियों को आग में डालकर तुम्हारा व्रत शुरू किया। मधु से पूर्ण फूलों रूपी तीरों को तुम्हारे धनुष पर चढ़ाओ। (90) सागर जैसे नीलवर्णवाले (श्रीकृष्ण) का नाम एक तीर पर लिखकर मुझ पर चढ़ाओ

जिससे बकासुर का वध करनेवाले श्रीकृष्ण की ओर मैं आकृष्ट हो जाऊँगी। इस रचना के अंतर्गत चीर हरण लीला का प्रसंग भी आता है। इस रचना में श्रृंगार के दोनों पक्ष (संयोग एवं वियोग) देखने को मिलते है। आण्डाल अपने पति श्रीकृष्ण से मिलन का अनुभव करते हुए अपने सपने को साकार करने की प्रार्थना मन्मथ से करती है। संतों द्वारा वर्णित भक्ति की विविध पद्धतियों को इसमें हम देख सकते है।

x) <u>तोंडरडिप्पोड़ि आलवार</u> :

तोंडरडिप्पोड़ि आलवार का दूसरा नाम 'विप्रनारायण' है। चोल देश के 'तिरुमंडलकुड़ी' नामक स्थान में इनका जन्म हुआ। हिंदी साहित्य के रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास की तरह इपके व्यक्तित्व के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित है। इनसे संबंधित एक प्रमुख कहानी है। वे 'देवदेवी' नामक वेश्या के प्रति आकृष्ट हुए थे। बाद में भगवान विष्णु के परमस्वरूप को जान लिया है और पश्चात्ताप की आग में जलकर विष्णु भक्त बन गया है। इसे विष्णु की माला 'वनमाली' का अंश बताते हैं। विष्णु स्वरूपी श्रीरंग क्षेत्र के स्वामी रंगनाथ की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो गये। श्रीकृष्ण के रूप को रंगनाथ में देखकर उसका वर्णन किया है। इनकी दो रचनाएँ – 1. तिरुमालै, 2. तिरुपल्लि एलुच्चि। एक पाशुर में कवि श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहते है। (91) इसमें पाद सेवन की भक्ति मिलती है। कवि का कहना है – "मेरा जन्म न तो तुम्हारे दिव्य क्षेत्र में हुआ है। न मेरे पास भूमि। सगा संबंधी कोई नहीं। तुम्हारे चरणारविंद की शरण में भी नहीं आया हूँ। हे श्रीकृष्ण! जोर से बुला रहा हूँ। रंगनाथ तुम्हारे सिवा कौन मेरी रक्षा करेगा'।

भक्तिशास्त्र की दृष्टि से देखें तो इनकी भक्ति में दास्यभक्ति, एकाश्रयग्रहण आदि यथेष्ट रूप से मिलते है।

xi) तिरुप्पाणालवार :

तिरुप्पाणालवार को विष्णु के 'श्रीवत्स' का अंश बताया जाता है। इनका जन्म श्रीरंगम की दक्षिण की ओर स्थित 'अरैयूर' में हुआ था। इनका पालन पोषण 'पाणन्' नामक व्यक्ति ने किया है जिसकी जाति 'पाणन्' है। इसीलिए इनके नाम के साथ 'पाण' शब्द जुड़ा गया। निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा पालन पोषण होने के कारण उन्नम वंश में पैदा हुए वैष्णवों ने इनको अस्वीकार किया। इनकी भक्ति से संबंधित एक घटना प्रचलित थी। एक बार तिरुप्पाणालवार कावेरी नदी के तट पर बैठकर भक्ति में डूब गये थे। तब वहाँ लोकसारंग नामक श्रीवैष्णव श्रीरंगनाथ के अभिषेक के हेतु जल लेकर जा रहे थे। तिरुप्पाणालवार को मार्ग के बीच में से हटने को कहा क्योंकि वे 'अछूत' है। भक्ति की तन्मयता में आलवार ने उसकी बातों को नहीं सुना। इससे वे क्रोधित होकर आलवार को पत्थर से मारकर चले गये। इनके ललाट से रक्त निकलने लगा। उसे देखकर बहुत चिंतित होकर लोक सारंग ने आलवार से क्षमा माँगी जब लोक सारंग रंगनाथ मंदिर जाकर स्वामि का अभिषेक करने लगा तो अचरज में डूब गये। रंगनाथ की मूर्ति से खून निकल रहा था। प्रभु का आदेश हुआ कि तिरुप्पाणालवार उनके प्रिय भक्त हैं उन्हें कंधों पर बिठाकर मंदिर ले आवे। लोक सारंग ने ऐसा ही किया। इनकी एक मात्र रचना 'अमलणा दिपिरान' जिसमें तिरुमल की विशेषताएँ, कृष्ण के रूप सौंदर्य को रंगनाथ में देखना (92) आदि का वर्णन मिलता हैं। कवि के लिए कृष्णदर्शन आँखों का सौभाग्य है।

xii) तिरुमंगै आलवार :

इसे लोग विष्णु के सारंग नामक धनुष का अवतार मानते हैं। ये नीलन, कलियन, अरूल मारी, परकालन आदि नामों से भी प्रसिद्ध है। इनका जन्म चोल देश के –तिरुक्कुरैयलूर' नामक स्थान में हुआ है। आलिनाडुडैयार एवं वलितिरु इनके माँ–बाप थे। बचपन में इनका नाम 'नीलनिस्तार' था। चोल राजा के यहाँ सेनापति के रूप में काम करते थे। इनको सारी राजविद्याएँ मालूम थीं। इनके

संबंध में भी अनेक जन श्रुतियाँ प्रचलित है। कहा जाता है इन्होंने 'कुमुदवल्ली' नामक नारी के प्रति आकृष्ट होकर उनसे शादी करने की प्राथना की। कुमुदवल्ली ने यह शर्त लगायी कि लगातार एक साल अगर 1008 वैष्णवों के लिए अन्नदान करेंगे तो वह इनसे शादी करेगी। इन्होंने ऐसा ही किया जिससे प्रसन्न होकर कुमुदवल्ली ने इनसे शादी कर ली। दोनों वैष्णवों का अन्नदान करते रहे जिससे चोल राजा को कर चुकाने में देर हो गयी। राजा क्रोध होकर इन्हें कैदी बनाने के लिए उद्युक्त हुए। बाद में भगवान वरद राजन की कृपा से कर चुकाया गया ऐसा कहा जाता है। बाद में उन्होंने वैष्णवों को खिलाने के लिए चोरवृत्ति भी अपना ली। एक दिन भगवान विष्णु लक्ष्मी समेत उधर आये उन्हें लूटने का प्रयास करने पर भगवान ने उनकी आँखे खुलवायी और वे ज्ञानी हो गये। जिस प्रकार डाकू रत्नाकर, महामुनि वाल्मीकि बन गया उसी प्रकार इनकी गणना दुष्ट के रूप से बदले श्रेष्ठों के रूप में की गयी है। इनके पाशुरों की संख्या 1523 है। इनके सारे के सारे पाशुर श्रेष्ठ कहे जाते हैं

रचनाएँ : तिरुमगै आलवार की प्रमुख रचनाएँ हैं – 1. पेरिय तिरुमोलि़, 2. तिरुक्कुरुत्ताण्डकम्, 3. तिरुनेडुन्ताण्डकम्, 4. तिरुएलुक्कूट्रिरुक्कै, 5. चिरिय तिरुमडल और 6. पेरिय तिरुमड़ल। इनके गीतों में प्रकृति चित्रण भी मिलता है। 'नारायण' नाम की विशेषता, उस की महानता से संबंधित इनके प्रचलित पाशुर –

> "वाड़िणेण, वाड़ि वरुन्दिनेन्
>
> ....
>
> नारायण एण्णुम नामम् ।(93)

यह उनकी नैच्चानुसंधान का महत्वपूर्ण उदाहरण है। 'जिन्दगी भर मैं तरस गया, दुःखी रहा, असीम दुःख सागर में डूबता रहा। नारियों के मोह में उनके पीछे पड़ गया। मेरे उद्धार के लिए मेरा आराध्य सामने आ गया।

अपने आराध्य की नाममहिमा गाते हुए आलवार बड़ी तन्मयता से कहते है

"कुलम् तरुम्, सेलवम् वन्दिडुम्

नारायण एण्णुम् नामम्। (94)

"उन्नत पद प्राप्त होगा। संप्रदाएँ प्राप्त होगी। दुःखों का नाश होगा भगवद् कृपा प्राप्त होगी। उनका कैकंर्य से सौभाग्य मिलेगां उन्हें जानने का ज्ञान होगा। जन्म देनेवाली माँ से ज्यादा मंगल काम देगा। कई तरह से शुभ देनेवाले 'नारायण' के दिव्य नाम को इस दास ने अपना लिया है।

नाममहिमा और नैच्युानुसंधान भक्ति के अलावार जीवन की अशाश्वतता, वैराग्य, दार्शनिकता से संबंधी पद तिरुमंगै के आलवार के पेरियतिरुमोलि' में प्राप्त है। 'तिरुक्करुताण्डकम्' में विष्णु को सर्वशकितमान के रूप में देखकर उनका लीलागान किया गया है। 'तिरुनेडुताण्डकम' पवित्र भक्ति के अंतर्गत आनेवाली रचना है। जिसमें 'नवधाभक्ति' (95) का सविस्तार रूप से वर्णन मिलता है।

'तिरुएलुक्कुट्रिरुक्कै' विष्णु महिमा से संबंधित रचना है। सिरिय तिरुमडल' में कवि ने लौकिक श्रृंगार के माध्यम से अलौकिक श्रृंगार का वर्णन किया है। विरह विदग्धा नायिका श्रीकृष्ण से मिलने की आतुरता के कारण सुध बुध खो बैठती है। अपना भविष्य जानने की उत्सुकता से वह हाथ देखनेवाली को बुलाती है। उसके अंतर्गत कृष्ण लीलाएँ, माखनचोरी, कालिय मर्दन आदि प्रसंगों का वर्णन कवि करते है। इनके विरह वर्णन सूफ़ी कवियों द्वारा वर्णित नायिकाओं के विरह जैसे अतिशयता के साथ घोर श्रृंगारिकता से पूर्ण है।(96) नायिका का विरह इतना बढ़ जाता है कि अपने प्रति उपेक्षा करनेवाले प्रियतम से रूठकर उसे भुलाने का प्रयास करती हुई अपने मन से कहती है 'हे मन! बस करो। मूर्ख मन।

उनके लिए प्रतीक्षा करना बेकार है। (97) नायिका का दुःख अकथनयी है। (98) इस प्रकार इस रचना में माधुर्यभक्ति का पूर्ण रूप से पोषण हुआ है। यह माधुर्यभक्ति से पूर्ण सर्वोत्तम रचना है। पेरियतिरुमडल में विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के गुणगान, लीलाओं का वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण के चरणारविंद के सौंदर्य पर आलवार मुग्ध हो जाते है। आलवार की नायिका अपनी विरह व्यथा को सखी से कहते है। विरह उसे व्याधि के रूप में सता रहा है। इस प्रकार इस रचना में कवि ने माधुर्य भक्ति के साथ–साथ भगवान की अलौकिकता का वर्णन है।

निष्कर्ष :

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि खासकर अष्टछाप के कवि और आलवार कवि भगवान कृष्ण की रूपमाधुरी के उपासक थे।

⇒1. इन भक्त कवियों ने अपने आराध्य के विषय में अपने हृदय के उद्गार गेय पदों द्वारा व्यक्त किये हैं। अष्टछाप के कवि और आलवार भक्तों के आविर्भाव काल में यद्यपि पर्याप्त अन्तर है तथापि दोनों भाषाओं के पदों में अद्भुत साम्य है।

तमिल साहित्य में छठी शताब्दी से नौवी–दसवीं शताब्दी तक का काल भक्तिकाल माना जाता है। इस काल में ही आलवारों में भक्ति की रसधारा प्रवाहित कर दी। इन आलवारों को कृष्ण सम्बन्धी अनेक कथाएँ पुराणों से मिलीं। साथ ही लोक में प्रचलित अनेक कथाओं को भी इन्होंने कृष्णचरित में मिला दिया। कल्पना के बल पर इन्होंने इन कथाओं में वर्णित नाना लीलाओं का काव्योचित चित्रण अपने भक्तिगीतों में प्रस्तुत किया। बारह आलवारों द्वारा समय–समय पर गाये गये गीतों का संग्रह तमिल भाषा में "नालायिर दिव्य प्रबंधम्" के नाम से प्रसिद्ध है। "प्रबंधम्" एक कवि की रचना नहीं है। इसमें चौथी–पाँचवी शताब्दी से लेकर नवीं–दसवीं शताब्दी तक प्राप्त कृष्ण भक्ति साहित्य में भक्ति के विभिन्न

रूपों और कृष्ण की विविध लीलाओं की जो विस्तृत अभिव्यक्ति मिलती है, वह बाद के समस्त भारतीय कृष्ण काव्य की आधार बन गयी।

हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य की परम्परा भी संपन्ना और प्रौढ़ है। हिंदी के भक्त कवियों में अष्टछाप का बड़ा महत्व है। इनका समय पन्द्रहवी सोलहवीं शताब्दी है। अष्टछाप के आठों भक्त कवि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सान्निध्य में व्रज में गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन की सेवा करने और वहीं रहकर भगवत् भक्ति–रूप में पदरचना करते रहते थे। हिंदी के कृष्णभक्त कवि भी आलवारों के समान उच्च कोटि के भक्त कवि और गवैये थे। उनके पद काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण हैं। वात्सल्य, सख्य, माधुर्य और दास्य भावों की भक्ति का जो स्रोत इन्होंने अपने–अपने काव्य में बहाया है, वह अत्यन्त प्रभाविष्णु है।

⇒2. हिंदी के कृष्ण भक्त कवि और तमिल के कृष्ण भक्त कवि आलवारों ने पवित्र प्रेम से पूर्ण भक्ति की प्रधानता दी है। इन भक्तों की भक्ति तो स्वानुभव का फल है। वह गूँगे का गुड़ है, अकथनीय है, अवर्णनीय है, असंप्रेषणीय है, सिर्फ आस्वादन परक है।

⇒3. पोयगै आलवार और नम्मालवार ने हरि–हर की एकता को स्थापित करके दोनों धर्मों का समन्वय किया है।

⇒4. भूदत्तु आलवार की भक्ति सिद्धों की भक्ति जैसी है।

⇒5. नम्मालवार ने पूर्ण समर्पण भाव को प्रधानता दी है। उन्होंने निर्गुणवादियों के दार्शनिक भक्ति सिद्धांतों को अपनाकर उन्हें सगुणाकार भगवान में समाकर वर्णन किया है।

⇒6. इन भक्तों द्वारा प्रतिपादित भक्ति में अनायास ही भक्तिशास्त्रों में वर्णित भक्ति के स्वरूप, लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इन्होंने भगवान द्वारा सृजित प्रकृति के अंग प्रत्यंग में उनकी छवि को देखकर उस विराट रूप के दर्शन को प्राप्त कर लिया है। भक्ति की तन्मयता में उनके द्वारा जो पद, गीत गाये गये हैं वहीं भक्ति साहित्य के अमरनिधि हैं। इन्होंने सप्रयास किन्हीं भक्तिशास्त्रों के ग्रंथों का अध्ययन करके गीत गाये नहीं बल्कि भक्तिरस को स्वानुभव द्वारा प्राप्त करके भगवान से तादात्म्यता स्थापित कर लीं । इनकी भक्ति भावना में अनायास से भक्तिशास्त्रों में वर्णित विभिन्न प्रकार की भक्ति–भावनाएँ झलक आयी है।

संदर्भ

1. वैष्णव साहित्य का उद्भव एवं विकास (तमिल) – डॉ.मीनाक्षी कल्याण सुन्दरम।

2. श्रीमद् भागवत श्लोक 1/2/6

3. हिंदी साहित्य के युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ शिवकुमार शर्मा, पृ 3

4. पृथ्वीराज रासो – प्रथम भाग (सं. कविराम मोहन सिंह) साहित्य संस्थान राजस्थान विश्वविद्यापीठ उदयपुर (छंद 28 से छंद 28 से छंद बंध 98 तक)

5. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ.नगेन्द्र पृ.सं.168

6. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ.शिवश्कुमार शर्मा पृ. 128

7. सात्विका भगवद् भक्ता ये मुक्तावधिकारिणः
भवान्त संभवाद् दैवात् तेषामर्थे निरूप्यते।। – तत्वार्थ दीप निबंधः 21

8. तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् – भा.पा.टि. पृ. 193

9. गीता 18/55, 66

10. सात्विका भगवद् भक्ता ये मुक्तावधिकारिणः
भवान्त संभवाद् दैवात् तेषामर्थे निरूप्यते।। – तत्वार्थ दीप निबंधः 21

11. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ.जयकिशन प्रसाद से उद्धृत, पृ 235

12. हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल – पृ. 87–88

13. (अ) हरि के जन सबते अधिकारी : सूरसागर पद 1134

(आ) हरि के जन की अतिठकुराई – सूरसागर पद 1/40

14. सूरसागर पद 1797

15. जाति पांति कोउ पूछति नाहीं श्रीपति के दरबार – सूरसागर पद 531

16. है हरिभजन को परमान नीच पावे ऊँच पदवी, बाजते नीसान – सूरसागर पद

17. नारि पुरुष हरिगनत न दोई – सूरसागर पद 236

(अ) ऊँच नीच हरिगनत न दोइ – सूरसागर पद 245

18. मेरो मन अनत कहां सुख पावै – सूरसागर पद 1/168

19. सूरसागर पद 2/9–12, 2/18–19, 20–21
20. सूरसागर पद 3/15, 17, 19
21. सूरसागर पद 4/12–13
22. सूरसागर पद 1/203
23. सूरसागर पद 2/364
24. सूरसागर पद 1/231
25. सूरसागर स्कंध 10, भ्रमरगीत
26. – वही – 1/337–343
27. श्रवण कीर्तन पादरत, अर्चन वन्दन दास।
सख्य और आत्म निवेदन प्रेमलक्षणा जास। – सूरसारावली, वे.प्रे.पृ.
28. हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल – पृ. 97
29. हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल – पृ. 97
30. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (पंचमभाग) अष्टछाप का परिचय, मे.से पृ. 78 – संकलन कर्ता : डॉ.दीनदयाल गुप्त
31. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (पंचमभाग) अष्टछाप का परिचय, मे.से पृ. 78 – 79 – संकलन कर्ता : डॉ.दीनदयाल गुप्त
32. हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल – पृ. 97
33. हिंदी साहित्य का पंचम इतिहास : वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप के कवि पृ. 206
34. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (सोलह भाग) अष्टछाप का परिचय, मे.से पृ. 106 – संकलन कर्ता : डॉ.दीनदयाल गुप्त, सं. डॉ.देवेन्द्रशर्मा
35. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (पंचमभाग) अष्टछाप का परिचय, मे.से पृ. 491
36. हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल – पृ. 105
37. मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेवशर्मा – पृ. 187 पद 20
38. मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेवशर्मा – पृ. 251 पद 79
39. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास – डॉ.रामप्रसाद मिश्र –पृ. 125–126
40. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (पंचमभाग) – पृ. 162

41. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (पंचमभाग) – पृ. 163

42. संस्कृति के चार अध्याय – दिनकर – पृ. 72

43. तमिल में वैष्णव भक्ति – डॉ.रवीन्द्रकुमार सेठ – पृ. 25

44. तोलकाप्पियम् तमिल पोरुल – सूत्र 60

45. तोलकाप्पियम् तमिल पोरुल – सूत्र 83–84

46. कुरुन्तोकै – पृ. 7' तमिल साहित्य

47. भगवद् भक्ति रसायन (34, 35, 36) जो गीता गूढ़ार्थ दीपिका का तात्विक विमर्श – डॉ.परमात्मा सिंह – पृ.105

48. विहरित हरिरिह सरसवसन्ते नृत्यति
युवति जनेन समं सविविरहिजनस्य दुरन्तेधुवम – जयदेव –
गीतगोविंद – पृ. 30

49. The three alwars tjis decroned the Divinej not through the knowledge got throught perception and inference but through 'Sruti Anubhava' that came to them when all lthe three pressed against each other. It is as ti were soma that was present of the triple strands of tntuituve, knowledge intuitive devotion and love.
– डॉ. वरदाचारी जो 'तमिल वैष्णव कवि आलवार' से उधृत है। पृ 4

50. मुदल तिरुवन्दादि – पोयगै आलवार गीत – 2092, 2093 नालायिर दिव्य प्रबंधम् – डॉ.जयद्रक्षकन् – पृ 805

51. मुदल तिरुवन्दादि – पोयगै आलवार गीत – 2138 नालायिर दिव्य प्रबंधम् – डॉ.जयद्रक्षकन् – पृ 818

52. मुदल तिरुवन्दादि – गीत 5

53. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – गीत संख्या 2220, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 844

54. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – गीत संख्या 2188–2194,ना.दि. प्रबंधम्, पृ. 837

55. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – गीत संख्या 2219, 2220, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 844

56. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – गीत संख्या 2235, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 849

57. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – गीत संख्या 2238, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 851

58. तमिल वैष्णव कवि : आलवार – डॉ.रवीन्द्रकुमार सेठ – पृ. 51

59. Alwars of South India – Page 19, जो 'तमिल वैष्णव कवि से उधृत है

60. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – पाशुर, संख्या 2238, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 850
61. इण्डाम् तिरुवन्दादि – पाशुर संख्या 2230, 2231, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 84
62. इरण्डाम् तिरुवन्दादि – पाशुर संख्या 2281, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 863
63. मुण्ड्राम् तिरुवन्दादि – पाशुर संख्या 2285, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 866
64. मुण्ड्राम् तिरुवन्दादि – पाशुर संख्या 2298, ना.दि.प्रबंधम्, पृ. 870
65. तिरुच्छंदवृत्तम पाशुर – 803, 804, 805 – पृ. 335
66. तिरुच्छंदवृत्तम पाशुर – 838, 842 – पृ. 335
67. तिरुच्छंदवृत्तम पाशुर – 794 – पृ. 332
68. तिरुच्छंदवृत्तम पाशुर – 852 – पृ. 348
69. नाण्मुकम्तिरुवन्तादि – पृ. 923
70. सेविक्कु इण्बमावूटुम – चेण्कणमाल नामम्द नाण्मुकम्तिरुवन्तादि
पाशुर 2450,ना.दि.प्र. – पृ. 917
71. तिरुवृत्तम् – पाशुर 2497, पृ. 930
72. तिरुवृत्तम् – पाशुर 2497, पृ. 930
73. यत् ज्ञात्वा मत्ती भक्ति, स्तब्धो भवति
आत्मारामो भवति। –
सा न कामयमाना, निरोधरूपत्वात्। – नारद भक्ति सूत्र – 6,7
74. निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यास – नारद भक्ति सूत्र – 8
75. तिरुवासिरियम – पाशुर 2579, ना.दिव्य प्रबंधम्, पृ 952
76. एण्णिन् मिकु पुकऌार यावरे ...... पेरियतिरुवन्दादि – पाशुर 2588
77 पेरियतिरुवन्दादि – पाशुर 2589, पृ. 959
78. तिरुवाय्मोलि – पाशुर 2925, ना.दि. प्रबंधम् पृ. 1075
79. नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति (च)
यथा व्रजगोपिकानाम् । – नारद भक्ति सूत्र – 19, 21
80 पेरुमाल तिरुमोलि – पद 702, पृ 301

81. पेरुमाल तिरुमोलि – पद 702, पृ 301

82. पल्लाण्डु, पल्लाण्डु पल्लायिरत्ताण्डु

पलकोड़ि नूरायिरम् मल्लाण्डु

तिणतोल मणिवण्णा
सेवड़ि चेव्विस तिरुकाप्पु – तिरुपल्लाण्डु – 4, पृ. 36

83. तिरुपल्लाण्डु – 5, पृ. 37 (ना.दि.प्र.)

84. तमिल साहित्य – एक झाँकी – डॉ.यम.शेषन – पृ. 61

85. तिरुप्पावै – आलोचना, सी.राजाजी

86. कीचु कीचेण्रु एंगुम्
आर्णैयाचात्तान कलदु
पेसिन पेच्चरवम् केट्टिललैय्यो
पेय पेण्णे। – तिरुप्पावै 480, पृ. 218

87. तिरुप्पावै – पाशुर 478, पृ. 231

88. तिरुप्पावै – पाशुर 502, पृ. 223

89. तिरुप्पावै – पाशुर 510

90. नाच्चियार तिरुमोलि – पाशुर 505, पृ. 229

91. तिरुमालै पाशुर 900, पृ. 362

ऊरिले काणिइल्ले उरवु मट्रोरूवर इल्लै
परिल निण्णादि मूलम पट्रिलेन परममूर्ति
करोलि वण्णणे येन कण्णने कद रुगिण्रेण
आरुलर कलैकण् अम्मा अरंगमा नगरुलाने।

92. अमलणादिपिरान – पाशुर, 936, पृ. 375

93. पेरिय तिरुमोलि – पाशुर 948, पृ. 380

94. पेरिय तिरुमोलि – पाशुर 956, पृ. 382

95 तिरुनेडुताण्डकम् – पृ. 787–791

96. सिरिय तिरुमड़ल – पाशुर 2679–2698, पृ. 995–1000

97. सिरिय तिरुमड़ल – पाशुर 2699, पृ. 1000

98. सिरिय तिरुमड़ल – पाशुर 2701, पृ. 1000

अध्याय – तीन

हिन्दी और तमिल के कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में भक्ति का स्वरूप

प्रस्तावना

1. हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल के आलवारों के पाशूरों में "सगुण भक्ति"
2. हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में "अवतारवाद"
3. हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में 'श्रीकृष्ण के रूपसौंदर्य और पराक्रम'
4. कृष्ण काव्य में पराभक्ति का स्वरूप
5. हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में 'भक्ति की अनुभूतियाँ' :

   5. (1) भक्ति अनिर्वचनीय है।

   5 (2) भक्ति प्रेम स्वरूपा है।

   5 (3) भक्ति में अनन्यता है।

   5 (4) भक्ति में समर्पण है।

   5 (5) भक्ति में अविस्मृति है।

   5 (6) भक्ति उपास्य सुखापेक्षी है।

   5 (7) भक्ति में निष्कामना है।

   5 (8) भक्ति में समदर्शिता है।

   5 (9) भक्ति में शांति हैं, परमानंद है।

   5 (10) भक्ति अमृत स्वरूपा है।

निष्कर्ष

अध्याय – तीन

हिंदी और तमिल के कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में भक्ति का स्वरूप

प्रस्तावनाः–

भगवान के प्रति भक्त का अटूट, अव्यक्त अनुराग का नाम भक्ति हैं। यह अनुराग लौकिक होकर भी अलौकिक है। अपने आराध्य के नाम–स्मरण में, गुणगान में, लीलागान में भक्त अपने को भूलकर आराध्य के ध्यान में तन्मय हो जाता है। उस तन्मयावस्था में उसे लौकिक आनंद सुख या किसी के प्रति रूचि नहीं होगी वह भगवान के प्रम में एक खास उन्मादावस्था का अनुभव करता है। यहीं भक्ति का पूर्ण रूप है। इस प्रकार की भक्ति वैधी भक्ति नहीं बल्कि पराभक्ति हैं क्योंकि भक्त को विधि–निषेध, दैनिक कर्मकाण्ड की बात का ध्यान नहीं होता। वह सदा अपने उपास्य की चिन्ता में उसके स्मरण में समय बिताता है। वह किसी के प्रति राग द्वेष नहीं रखता।

उपासना का मार्ग नया नहीं था। भागवत धर्म के रूप में इसका प्रचलन भारत में बहुत प्राचीन काल से ही था। दक्षिण भारत में भागवत धर्म आलवार भक्तों के तमिल गीतों के रूप में मिलता है। यह भक्ति धारा ईसा की चौथी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक प्रवाहित होती रही। कुछ आचार्यो ने विष्णुभक्ति की प्रेरणा आलवार गीतों से ली और भागवत धर्म के प्रचार को ये उत्तर ले आए। इन आचार्यों ने आलवारों की उपासना भक्ति को शास्त्रीय रूप दिया और "प्रबन्धम्" एवं ब्रह्मसूत्रों के कथनों का समन्वय करने का प्रयास किया। इन में रामानुजाचार्य, विष्णु स्वामी, निबार्काचाय एवं माध्वाचार्य प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने शंकर के मायावाद का खंडन किया और जीवन और जगत् की सत्यता तथा ईश्वर भक्ति

की पुनःस्थापना की। ईसवीं की सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक यह भक्ति आलोचना बडे वेग के साथ उत्तर भारत प्रवाहित रहा।

उपासना भक्ति का मार्ग मुख्यतया दो रूपों में प्रचलित हुआ– निर्गुण ब्रह्मोपासना और सगुण ब्रह्मोपसना। सगुण ब्रह्मोपासक भक्त अपने इष्टदेव की मूर्ति की कल्पना करके मनमें उसका दिव्य दर्शन प्रदान करते हैं। मध्यकालीन सगुण भक्त कवियों का उपस्यदेव सगुण रूप है। जो वैष्णव संप्रदाय की देन है। इन्होंने विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के सगुण रूप का वर्णन अपनी रचनाओं में अत्यन्त रमणीय पदों में किया है। सगुण भक्त कवियों का कथन है कि भगवान की मूर्ति को मानकर, उनका ध्यान करने से भक्ति जनसुलभ बन जायेगी। भगवान की मूर्ति की कल्पना से लोगों के मन में ईश्वर के प्रति एक विशेष भक्ति भावना उत्पन्न होगी जिससे भक्ति मार्ग आसान होगा। सगुणभक्त कवियों ने निर्गुण भक्ति को अपने भक्तिमार्ग से बहुत श्रेष्ठ समझा। निर्गुणवादियों द्वारा वर्णित भगवान अलौकिक अगम्य, अगोचर है जो जगत के कणं कण में विद्यामान है। उनके कई नाम है लेकिन वे निराकार, निर्गुण है। मन की एकाग्रता से उनपर भक्ति करके उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। सगुण ब्रह्म का विरोध सभी निर्गणवादियों ने किया है लेकिन इसके विपरीत सगुण भक्त कवियों ने भगवान के निर्गुण रूप को मानते हुए उसे ऋषियों, योगियों के पूजने योग्य बताया, जन सुलभ के लिए सुगुणोपासना पर ही बल दिया है। विद्याहीन जनता याने पंडित पामर, ऊँच–नीच लोगों के लिए सगुण भक्ति की आवश्यकता का वर्णन किया है। सगुणभक्ति में उपास्य के रूप भक्त के हृदय में अंकित होने पर उन पर प्रेमपूर्वक भक्ति रखना आसान है। इसीलिए सगुण भक्ति जन सुलभ भक्ति बन गयी है।

सगुण भक्त कवियों द्वारा कप्लित विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण का रूप साँवला रूप है, जो मोरमुकुट धारी है। मकराकृति कुंडल से उसके कान शोभित है।

हाथ में बाँसुरी, हृदय पर वैजयंती माला से शोभित है। जो भक्तों के कल्पतरु है, दुष्ट नाशक, शिष्टक, रक्षक है।

1. हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशूरों में सगुण भक्ति:

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवि और तमिल के आलवारों ने ईश्वर के सगुण रूप का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। आलवारों में ब्रह्मा शिव आदि से उसी पर ब्रह्म विष्णु के अंश माने है। यह ठीक है कि वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने परवर्ती आचार्यों की तरह सैद्धांतिक ग्रंथ नहीं रचे और भक्ति का समीक्षा विवेचन नहीं किया किन्तु उनके द्वारा भक्ति के भावावेश के क्षणों में अपने मानस में उद्भूत अनुभूतियों में भी परम तत्व का जो कल्पाना की गयी है, वह आज भी संपूर्ण साहित्य में वहीं ह एक परम तत्व श्रीविष्णु है, उन्हीं के सब अवतार है उन्हीं से सब उद्भूत है। उन्होंने गाया है – "जिससे भुवन में कोई भी नहीं दीखे, एसे व्यापक महाप्रलय के काल में सबको उनके श्री उदर में दीर्घकाल तक पडे रहने की बात को मन में विचारने की शक्ति से हीन अज्ञानियों। यदि जान लोगे तो लोकमापक देवाधिदेव महाकीर्ति से संपन्न परमात्मा के वाचक सहस्त्र नामों का संकीर्तन करो।(1) वे ही परमात्मा, आज देखो, दही मक्कन खाकर गोपियों के हाथ बद्ध होकर रहते है। (2)

तमिल के सभी आलवार सगुण थे। इन्होंने श्रीकृष्ण के मुग्ध, मनोहारी रूप सौंदर्य का वर्णन यत्र–तत्र किया है। संपूर्ण ग्रन्थ "नालायिर दिव्य प्रबंधम्" सगुण भक्ति का प्रतीक है। निर्गुण भक्ति का नाम मात्र भी उस में नहीं मिलता। पेरियालवार ने अपनी रचना "तिरुमोलि" में श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग की सुन्दरता पर बलि बलि जाते हुए उस दिव्य अलौकिक छवि को देखने की कामना करते हैं।(3) सभी आलवार वैष्णव है इसीलिए सगुण भक्त ही है। हर एक पाशुर में भगवान के रूप, नाम गुण स्मरण करते है। लेकिन तिरुमलिचै आलवार के कुछ

पाशुरो में अद्वैतवाद" के सिद्धांत यथेष्ट रूप से विद्यमान है, जहाँ वे अपने सगुण ईश्वर को बिना आकार, बिना नाम के, उनका स्मरण करते है।

उनकी रचना "तिरुच्चन्द वृत्तम" में वे कहते हैं कि "भगवान जगत के पंच तत्वों में जैसे आकाश, अनल, पृथ्वी, जल, वायु, सभी में व्याप्त सर्वान्तर्यामी है। (4) ईश्वर प्राणियों के प्राण में विराजमान है, जो अद्वैतवाद का मूल सिद्धांत है, उनका वर्णन तिरुमलिचै आलवार ने किया है। (5) लेकिन तिरुमलिचै आलवार भी अपने पाशुरों में अधिक सगुण ब्रह्म का ही वर्णन किया है।

हिन्दी के अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों ने वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रेरित होकर अनुकरण किया है, ईश्वर की उपासना की है। वल्लभ संप्रदाय में ईश्वर के दोनों रूप – सगुण तथा निर्गुण–मान्य है। लेकिन उस मार्ग का इष्ट रस रूप सगुण ब्रह्म ही है। इस संप्रदाय ने कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति मार्गों में से भक्ति को अपनाया है। सूरदास, परमानंददास आदि अष्टभक्तों ने भी सगुण ईश्वर की ही उपासना का भाव अपनी रचनाओं में प्रकट किया है। अनेक पदों में उन्होंने अपना यह निश्चित मत तथा अनुभूति प्रकट की है कि सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है तथा वह मार्ग परमानंद का शीघ्र फल देनेवाला है। सूरदास तथा नंददास के भॅवर गीतों का गोपी–उद्धव संवाद इसी सगुण–निर्गुण तथा भक्ति और ज्ञान के विवाद को प्रकट करता है। इन कवियों ने इस विवाद के अंत में सगुण ईश्वर की भक्ति को ही अधिक प्रभावमयी सिद्ध किया है। यहाँ इन्होंने निर्गुण ईश्वर और ज्ञान तथा योग मार्ग का खण्डन नहीं किया, प्रत्युत उनके काल और पात्र के अनुसार अपने युग में अनुप्रयुक्तता दिखाई है।

"सूरसागर" के आरंभ में सूर ने निर्गुणोपासना में होनेवाली कठिनाई का उल्लेख किया है। वे कहते हैं, निर्गुण ईश्वर की गति न तो कहने में आती है और न उस अव्यक्त पर मेरे मन की भावमयी वृत्ति ही ठहरती है, इसलिए सब

प्रकार से अव्यक्त ब्रह्म तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाकर मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूँ और उसकी लीला के पद गाता हूँ।

अविगत गति कुछ कहत न आवै
ज्यों गूँगे मीठ फल को रस अंतर्गत ही भावै
परम स्वाद सब ही जु निरंतर अमित तोष उपजावै
मन बाणी को अगम अगोचर जो जानै सो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत छावै
सब विधि अगम विचारै ताते सूर सगुण लीला पद गावै

सूर ने स्वयं कृष्ण के मुख से, कहलवाया है, योग, कर्म और ज्ञान के मार्ग से लोग मुझे नहीं पा सकते, और जो गद्‌गद कंठ से मग्न होकर मेरा गान करते हैं, उनके हृदय में मेरा निवास है।

कहत नंद लाड़िलो
जटा भस्म तनु देहिं गुफा बसि मोहि न
तजि अभिमान जो गावही गद्‌गद सुरहि पावै प्रकाश
तासु मगन हो ग्वालिनी ता घट मेरी बास।

गोपी–उद्धव–संवाद में सूर ने गोपी द्वारा यही बात सिद्ध करायी उन्हें सगुण भक्ति में चारों प्रकार की मुक्तियों (सालोक्य, सांनिध्य, सारूप्य और सायुज्य) का लाभ मिल गया है।

"ऊधो सूधे नेकु निहारो।
हम अबलनि को सिखवन आये सुनो सयान तुम्हारो
निर्गुण कहो कहा कहियत है तुम निर्गुण अति भारी।
सेवत सगुण स्याम सुन्दर को मुक्ति लहीं हम चाहीं
हम सालोक्य स्वरूप सरो ज्यों, रहत समीप सहाई।

सो तजि कहत और की और तुम अलि बडे अदाई।
अहो ज्ञान कतहि उपदेशत ज्ञान रूप हमहीं।
निस दिन ध्यान सूर प्रभु को अलि देखत जित तितहीं।

सूरदास की तरह परमानंद दास ने भी भँवरगीत के पदों में निर्गुण ईश्वर का निराकरण करके सगुण ईश्वर को अपनाया है। अन्य अष्टछापी कवियों का मत भी यहीं था।

कृष्ण प्रेमानुरागिणी मीराबाई तो श्रीकृष्ण के सगुण रूप को अपनी आँखों में सदा बसाना चाहती है –

"बसो मोरे नैनन में नंदलाल
मोहनि मूरत साँवरि सूरत नैना बने बिसाल
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सबद रसाल
अधर सुधामृत मुरली राजत उर वैजयन्तीमाला
मीरा के प्रभु संतन सुखदायी भंक्तबछल गोपाल।। (6)

अवतारवादः–

सगुण भक्ति के अन्तर्गत भगवान विष्णु के अवतारों में प्रमुख अवतार राम और कृष्ण का वर्णन सारे कवियों ने किया है। शक्ति, शील सौंदर्य से समन्वित रूप में राम का वर्णन किया है और कृष्ण को लीलाकारी, लोक रंजक के रूप में अपनाया है। इन भक्तों का विश्वास है कि जगन्नाथ महाविष्णु धर्म की रक्षा के लिए प्रत्येक युग में अवतार लेते है। (7) कृष्ण भक्त कवियों का दृढ़ विश्वास है कि भगवान श्रीकृष्ण दुष्ट संहारक एवं शिष्ट रक्षक है। इन भक्तों ने भगवान विष्णु को अपनी माँ, अपना बाप सखा पुत्र, मालिक आदि रूपों में देखकर उनके प्रति अपनी अपार भक्ति प्रकट की। जिस प्रकार माँ अपने पुत्र की देखभाल अत्यंत प्यार के साथ करती है उसी प्रकार भगवान भक्त की देख भाल करते है।

विष्णु के सभी अवतारों को एकत्रित करके अपने आराध्य श्री कृष्ण के रूप में उन सभी अवतारों में की गयी लालाओं का गुणगान करके श्रीकृष्ण की महिमा गाते हैं। भक्त जयदेव का कहता है।(8)

"वेदानुद्वरते जगान्निवहते भूगोल मुद्रिभ्रते
दैत्यन्त दारयते बलि छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुथ्यंनमः

हे श्रीकृष्ण। वेदों की रक्षा करनेवाले जगत् को धारण करनेवाले (वराहवतार) बाढ़ से जगत को बचाकर लोगों की रक्षा करनेवाले, राक्षस हिरण्यकश्यप के शरीर को चीरकर संहार करनेवाले (नरसिंहवतार) कपट से बलि पर विजय प्राप्त (वामनावतार) क्षत्रियों के वंश का नाश करनेवाले (परशुरामावतार) रावण पर विजय प्राप्त करनेवाले (रामावतार) हलायुध धारण करनेवाले (बलरामावतार) करुणामय, दुष्टों के नाश करनेवाले इस प्रकार इस प्रकार के अवतार धारण करनेवाले है कृष्ण। अष्टछाप के सभी कवियों ने, संप्रदाय निरपेक्ष कवयित्री मीराबाई ने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी लीलाओं का गुणगान किया है। सूरदास श्रीकृष्ण को एक ओर बालक मानते हुए उनकी नटखट चेष्टाओं का वर्णन करते हैं, दूसरी ओर से अलौकिक भगवान श्रीहरि के रूप में देखकर तन्मय होते हैं।

2. हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में अवतारवाद :

सूरदास को अपने श्रीकृष्ण की महिमा पर अपार विश्वास है। उनका कहना है कि श्रीकृष्ण की शरण में जानेवाले लोगों को असंभव भी संभव हो जाता है।

"चरण कमल बंदो हरिराई।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधो को सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय, बार बार बन्दो तिहि पाई। (9)

मीराबाई तो श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार किये गये भक्तों के नाम लेकर कृष्ण को हरि के अवतार मानकर अपने उद्धार की प्रार्थना करती है। मीराबाई कृष्ण की लीलाओं को इस प्रकार गाती है – हरि। तुम जनता के कष्टों तो मिटाओ। तुमने चीर देकर द्रोपदी की लाज रख ली। भक्त प्रह्लाद की रक्षा हेतु नरसिंहावतार धारण कर दुष्ट हिरण्यकश्यप का बध किया। मगर से ग्रसित हुए गजेन्द्र की पुकार सुनकर उसकी रक्षा की और उसे पानी से बाहर निकाला। मैं (मीरा) तेरी दासी हूँ। हे गिरिधर। जहाँ दुःख होगा उसे दूर करने तुम वहाँ आ जाना। (9.1)

मीरा ने भी अपने प्रियतम आराध्य श्री कृष्ण में अवतारों का समावेश करके देखा है और उसकी महिमा गाती है।

मनरे परसि हरि के चरण
सुभग सीतल कंवल कोमल, त्रिविधज्वाला हरण।
जिस चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ब्रह्माण्ड प्रभु परसि लीणों, लीणों, गौतम धरण
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीलाकरण
जिण चरण गोवरधन धारयो इन्द्र गर्वहरण
दासी मीरॉ लाल गिरिधर, अगम मारणतर। (10)

आलवारों ने विष्णु के सभी अवतारों का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण को अपने आराध्य के रूप में स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन करते हुए

उनके रूप में हिरण्यकश्यप को संहार किये नरसिंह एवं जगत को मापे वामन को समाकर देखा है।

अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार मानकर उनकी लीलाओं को गाकर अपने उद्धार की प्रार्थना की है। आलवार संत तो पग पग पर श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाते है।

भक्त पेरियालवार ने श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार मानकर उनके समस्त अवतारों का वर्णन किया है। (11) उन्होंने श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार स्वीकारते हुए समस्त अवतारों में विष्णु की लालाओं को गाया है। पेरियालवार श्रीकृष्ण की लीला इस प्रकार गाते है –

"मगर के मुँह में फँसकर गजेन्द्र ने तुम्हारी वन्दना की है "कृष्ण" कृष्ण पुकारा उसका आर्तनाद सुनकर उनके दुःख को दूर किया। श्रीहरि इधर गोकुल में बालक बनकर डरा रहा है। (12)

आण्डाल अपनी रचना "तिरुप्पावै में श्रीकृष्ण को साक्षात् श्री महाविष्णु मानकर उन के अवतारों को, लीलाओं को वर्णन करती है। आण्डाल अपने पाशुर में कहती है "यहाँ गोकुल में रहनेवाले श्रीकृष्ण और कोई नहीं, साक्षात् महाविष्णु है। (13) उनकी लीलाओं को गाती हुई आण्डाल उनके समस्त अवतारों की महिमाओं को इस प्रकार गाती है – "हे कृष्ण। तुमने उस दिन त्रिलोक को माप लिया (त्रिविक्रम वामन बनकर) दक्षिण में स्थित लंका पर विजय प्राप्त किया। (रामावतार में), शकटासुर, धेनुकासुर का वध करके रक्षा की है। गोवधर्न पर्वत का छत्र बनाकर उसे धारण कर लिया है। दुष्टों पर हमेशा विजय पानेवाले हे श्रीकृष्ण। हमारी वन्दना स्वीकार करो। हमें ऐसा वर दो कि हम सदा तुम्हारा सेवक बनकर सेवा करें। (14)

3. हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में वर्णित श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य और पराक्रम :

हिन्दी के कृष्णभक्त एवं तमिल आलवारों द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण मोरमुकुट धारी है, कमलनयन उनके है। वे मकराकृति कुंडल से शोभीयमान है। घुँघुराले बाल से युक्त उनके सिर अत्यंत शोभनीय है, पीतांबरधारी है। श्रीकृष्ण वर्णन का मूल आधार है भागवत पुराण और विशेषतः दशम स्कंध। वल्लभव संप्रदाय के प्रमुख कवि सूरदास ने पुष्टिमार्ग के अनुसार कृष्ण को साँवरी सूरतवाले कमलनयन आदि से संबोधित करक वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के पराक्रम का वर्णन भी इन कृष्ण भी इन कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। आलवार कवियों ने श्रीकृष्ण को अलौकिक सर्वशक्तिमान के रूप में स्वीकारते हुए पग पग पर उनके पराक्रम गाते हैं।(15) तिरुमलिशै आलवार श्रीकृष्ण के पराक्रम गाते हुए कहते हैं,(16) "केशी अश्व को संहार किये, गोवर्धन धारण करके पत्थर की वर्षा से बचाये, गोप बालकों के नायक, गायों के चराये सारे जगत को अपने उदर में धारण किये श्रीकृष्ण की वन्दना है। सगुण भक्ति साहित्य में श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन प्रत्येक कृष्णभक्त कवि ने किया है। पेरियालवार ने मैया यशोदा के माध्यम से गोपियों को श्रीकृष्ण के रूपसौंदर्य का वर्णन कराया है। "शीतल समुद्र से अमृत समान देवकी द्वारा यशोदा को भेजा गया पुत्र नन्हा बच्चा कान्हा अपने हाथों से चरणारविंद को मुँह डाल रहा है। इस मनमोहक दृश्य को मँग जैसा अरुणिम अधरवाली गोपियाँ। आकर देखिए। पैर की ऊँगलियों का वर्णन (17) पायल सहित पैरों की सुन्दरता(18) घुटनों पर रेंगने की शोभा (19) बालक कृष्ण द्वारा अँगूठी मुँह में रखने की शोभा, उंगलियों की कोमलता, सुन्दरता, पादों के लालित्य, जाँधों की सुन्दरता, पेट एवं दांत, कमर, नाभि, भुजाएँ, हाथ, ग्रीवा, भौहों की सुन्दरता, मुख सौंदर्य, कुडल की रमणीयता, पसीने से पूर्ण ललाट की सुन्दरता वेणी की सुन्दरता आदि संपूर्ण शारीरिक अवयवों का वर्णन पेरियालवर ने यशोदा द्वारा, गोपियों द्वारा करवाया है। यह सगुण भक्ति का परमोत्कृष्ट उदाहरण है।

कृष्ण भक्त कवियों द्वारा वणित श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान, दीन बन्धु जगत रक्षक, दुःखहारी है। तिरुमळिचै आलवार ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को सर्वशक्तिमान, सर्वमंगलदाता, शत्र संहारक मानते हुए उसे आद्यंत रहित मानते है। इस सारी दुनियॉं के सुष्टिकर्ता के रूप में उन्हें ठहरते हैं। (20)

कृष्ण भक्त कवियों के सम्मुख भगवान भक्त तत्सल है, दीन बन्धु है, जीवन का एक मात्र साथी है। वे अपने आराध्य की लीलाओं को गाकर, अपने उद्धार की प्रार्थना करते है। उनका दृढ़ विश्वास है कि भगवान उनके रक्षक है और कोई भी उनको कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आलोचकों ने कृष्ण भक्तों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए कहा है " कृष्णभक्ति साहित्य में दैन्य भाव की भक्ति को महत्व नहीं दिया गया है। कृष्ण भक्त अपने भगवान से अधिकाधिक ममता और घनिष्ठता का संबंध स्थापित करना चाहता है। अतः वह दैन्य पूर्ण वचनों से संतुष्ट नहीं रहता। स्वभाव भेदानुसार यह प्रेम कृष्ण–भक्तों में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य इन तीन रूपों को धारण कर लेता है। (21)

4. कृष्णकाव्य में परा भक्ति का स्वरूपः–

कृष्णकाव्य पूर्ण रूप से कृष्ण भक्ति रस से ओतप्रोत काव्य है। भक्ति मूलतः दो प्रकार की हैं। (1) गौणी भक्ति (2) पराभक्ति (22) गुणों के आधार पर करनेवाली भक्ति गौणी भक्ति है। पवित्र प्रेम पर आधारित भक्ति पराभक्ति है। गौणी भक्ति में तीन प्रकार के गुण (1) सात्विक (2) राजसी (3) तामस पर आधारित है। उन्हीं गुणों के अनुसार आर्त, जिज्ञासु अर्थार्थी भक्त है। (23)

कृष्णकाव्य में पराभक्ति की प्रधानता दीख पड़ती हैं। पवित्र प्रेम के आधार पर विकसित पराभक्ति कृष्णकाव्य में यत्र तत्र मिलती है। माँ यशोदा, गोपियों के द्वारा प्रेमाभक्ति पूर्णरूप से कृष्ण काव्य में प्रकटित होती है। आलवारों के कृष्ण

काव्य में प्रेमा भक्ति के विभिन्न रूप यत्र त्र मिलते है। (24) कृष्ण भक्ति काव्य में 11 प्रकार की भक्ति वर्णित है जो निम्न लिखित है।

(1) भगवान श्रीकृष्ण का गुण–माहात्म्य गाने में आसक्त रहना (2) उन के रूप सौंदर्य के वर्णन में आसक्ति दिखाना (3) आराध्य की पूजा करने में आसक्ति (4) उपास्य श्री कृष्ण के सदा स्मरण में आसक्ति (5) अपने स्वामी श्री कृष्ण के सामने दास बनकर उनकी सेवा करने में आसक्ति (6)आराध्य श्री कृष्ण को अपने मित्र एवं सखा मानकर समान प्रेम दिखाने में आसक्ति (संख्या सक्ति) (7) आराध्य श्री कृष्ण को छोटे–से बालक के रूप में मानकर उस पर वात्सल्य भावना दिखाना (8) कांतासक्तिः नायक के रूप श्री कृष्ण को मानकर अपनी आत्मा को नायिका (या) पत्नी मानकर उनसे मिलने की उत्कण्ठा (9) आत्मनिवेदनासक्ति (संपूर्ण समर्पण के साथ उनकी शरण में जाना (10) तन्मयासक्ति श्री कृष्ण के गुणगान रूप सौंदर्य, लीलाओं को देखकर तन्मय होकर उस पर बलि बलि हो जाना (11) परम विरहासक्तिः इसमें माधुर्योपासना की प्रधानता होती है। अपने प्रेमी के रूप में श्री कृष्ण को स्वीकार करके उनके वियोग में तड़पना। इन सबके बारे में अगले अध्याय (चौथे अध्याय में) में सविस्तार से चर्चा हुई है।

हिन्दी के कृष्णकाव्य एवं तमिल आलवार काव्य में उपर्युक्त सभी प्रकार की भक्ति भावनाएँ मिलती हैं। हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों से भी परमविरहासक्ति का वर्णन करने में आलवार एक कदम आगे है। आलवारों के विरह वर्णन हिन्दी सगुण भक्तों के विरह वर्णन की अपेक्षा निर्गुण वादियों के वर्णन के समीप है। वह रहस्यवाद से भरी हुई भक्ति है। आलवारों में से एक मात्र स्त्री आलवार "आण्डाल" ने अपनी रचना "नाच्चियार तिरुमोलि" में प्रियतम श्रीकृष्ण के वियोग में उत्पन्न वियोग पीडा का अत्यंत मार्मिक शब्दों से वर्णन किया है। यह माधुर्य भक्ति का सार है। इसमें माधुर्योपासिकाओं द्वारा वर्णित पारंपरिक, सांप्रदायिक मन्मथ पूजा और उस पूजा करने की विधियाँ आदि का वर्णन मिलता है। यह

रचना आण्डाल की तीव्र विरहानुभूति का उत्कृष्ट प्रतीक है, जहाँ आण्डाल ने संयोग एवं वियोग श्रृंगार का सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है। प्रेमरोग से पीडित आण्डाल का परम व्याकुल, विरह दग्ध हृदय, विरह की दस दशाओं का अनुभव करता है। नायिका प्रकृति को अपनी तीव्र विरह व्यथा सुनाती है। (25) हिन्दी के सूफी कवि जायसी की नायिका नागमति के वियोग वर्णन की अतिशयता भी आण्डाल की रचना में दृष्टिगोचर होती है। विरह विदग्धा नायिका आण्डाल कृष्ण प्रेम में कायल, मेघ, समुद्र आदि को दूत बनाकर भेजती है।

आण्डाल कोयल से इस प्रकार अपनी विरह–व्यथा सुनाती है। (26) हे कोयल। श्रीकृष्ण की सोच में पड़कर मेरी सारी हड्डियाँ गल गयी है। मेरी पलकें भी आँखों पर बैठती नहीं (मैं आँखें मूँदती ही नहीं) बहुत दिनों से वियोग के दुःख सागर में फँसकर तड़प रही हूँ। इस दुःख सागर से पार करनेवाली एक मात्र नाव वैकुण्ठवासी ही है। अब तक उसके वियोग में त्रस्त हूँ। प्रेमियों के विरह तो तुम्हें मालूम ही होगा। सुवर्ण जैसे प्रकाश पूर्ण गरुड ध्वज धारी मेरे नायक को अपनी मधुर ध्वनि से यहाँ बलाओ। अपने नायक श्रीकृष्ण को आण्डाल विष्णु के रूप से देखने के कारण उसे सुनहले रंगवाला कहती है।

आण्डाल अपने प्रिय नायक श्रीकृष्ण से सपने में ब्याह रचती है। आत्मा रूपी नायिका अपने प्रियतम, अराध्य, अलौकिक परमात्मा से लौकिक वैवाहिक बंधनों के माध्यम से मिलना चाहती है। दुलहिन आण्डाल कहती है (27) हे सखी। स्वप्न में मैं ने देखा सहस्र गज सहित नारायण शहर भर घूमते वैभव के साथ आ रहे है। सोने के पूर्णकुंभों के साथ, शहर भर तोरण सजाकर लोग दूल्हे (नारायण) का स्वागत कर रहे है। आण्डाल द्वारा रचित "नाच्चियार तिरुमोलि" पूरे का पूरे सपने में ब्याह रचने का ही सांप्रदायिक वर्णन है। (28) इसमें आण्डाल तमिलनाडु के श्रीवैष्णवों की वैवाहिक, पारंपरिक, सांप्रदायिक, प्रादेशिक पद्धतियों का वर्णन किया है। आण्डाल श्रीकृष्ण के हाथ में सदा रहनेवाले "पांचजन्य" शंख से जलती

है। आण्डाल की ईर्ष्या का कारण है कि पांचजन्य सदा श्रीकृष्ण के समीप रहता है और उसका अधर रसामृत का आस्वादन करता है। इसलिए पांचजन्य धन्य हो गया है। आण्डाल "पांचजन्य" शंख से पूछती है "हे श्वेतशंख! कुवलचापीट हाथी पर विजय प्राप्त श्रीकृष्ण के अधर रसामृत का आस्वादन करनेवाला शंख, मैं बड़ी उत्कण्ठा से पूछती हूँ बताओ " श्रीकृष्ण के मधुर सुन्दर मूँग जैसे अरुण अधरों का स्वाद कपूर की तरह सुगन्धित है (या) कमलों के मधु की तरह मधुर है ? (29)

आण्डाल शंख को श्रीकृष्ण के अधर रसामृत का स्वाद बताने का योग मानकर कहती है – "हे शंख! तुम्हारे साथ सागर में वास करनेवालों का स्वभाव तुम्हें मालूम ही होगा। तुम ही श्रीकृष्ण के मधुर अधरों के स्वाद बताने में समर्थ हो क्योंकि तुम सदा श्रीकृष्ण के अधर रसामृत स्वाद का पान करनेवाले हो। यहाँ आण्डाल शंख से श्रीकृष्ण के अधरों के मधुर रसास्वाद जाना लेना चाहती है। दोनों जो पास–पास रहने पर भी एक दूसरे के स्वभाव को पूरी तरह से नहीं जानते लेकिन आण्डाल सोचती है सागर में पन्नगशायी विष्णु के स्वभाव की जानकारी सागर से उत्पन्न हुआ शंख को जरूर मालूम हुआ होगा। (30)

श्रीकृष्ण प्रेम से पीडित विरह विदग्धा नायिका आण्डाल प्रकृति के प्रत्येक अंग पुष्प लताएँ, पक्षीगण, मेघ (31) वर्षा, सागर, आदि को अपनी विरह व्यथा सुनाती है। वह कहती है "अब शर्माने से कोई फायदा नहीं। सारे गाँव के लोगों को मेरी स्थिति मालूम हो गयी। मेरी विरह व्यथा दूर करने कुछ तो कीजिए। देर मत कीजिए। कृष्ण मिलन रूपी दवा मुझे जल्दी पिलाइए। मुझे जल्दी गोकुल ले जाइए।(32)

5. हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में भक्ति की अनुभूतियाँ:–

(1) भक्ति अनिर्वचनीय हैं :

भक्ति की परिभाषा देना कठिन है। वह अवर्णनीय है। असप्रेषित अनुभवपरक है। निर्गुणवादियों ने उस "गूँगे" का गुड कहकर वर्णन किया है। वह हृदयस्पर्शी, आन्तरिक अनुभूति है। आत्मा परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करने से उत्पन्न एक अनिर्वचनीय अनुभूति ही है। कृष्ण काव्य में भक्ति अनिर्वचनीय अनुभूति प्रदान करनेवाला है। "प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है अवर्णनीय है। (33) क्योंकि वह अनुभूति परक हैं, वह गूँगे के गुड के समान है।(34) उसका आस्वादन कर सकते है। न कि अभिव्यक्ति। भक्त गुणरहित होकर, तीव्र भक्ति के कारण कामना रहित होकर प्रतिक्षण अपने आराध्य से अविच्छिन्न अन्योन्यता स्थापित कर लेता है, जो प्रति क्षण बढ़नेवाला है। वह सूक्ष्माति सूक्ष्म अनुभव है, इसीलिए अकथनीय एवं अवर्णनीय है। (35)

भक्ति की चरम सीमा में भक्त को कोई भी वस्तु पसंद नहीं यहाँ तक मोक्ष का सुख भी। अर्थात् पहुँचे हुए, ऊँचे साधक भक्त को जो सुख भगवान की उपासना में मिलता है, वह अनुभूतिपरक है, उसके आगे मोक्ष का सुख भी उसे हेय प्रतीत होता है। पुरुषोत्तम भगवान के विषय में भक्तजनों की भक्ति होती है जिसमें "तत् सेवनम् बिना" परमात्मा की उपासना को छोडकर दिये जानेवाले सालोक्य, सायुज्य, सामिप्य, सारूप्य को भी भक्तजन स्वीकार नहीं करते। भक्ति क्लेशों का नाश करके, मंगलप्रदान करके मोक्ष को भी तुच्छ बना देनेवाली है, कठिनता से प्राप्त होनेवाली है, असीम आनंद से पूर्ण भगवान को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली है। (36) स्वामी चिद्भवानंद के ग्रन्थ 'भक्तियोग सारम्' में भक्ति के फल के बारे में बताते हुए कहा गया है – " जो भक्तों द्वारा प्राप्त ब्रह्मानंद स्थिति है, वह अलौकिक आनंद है लौकिक नहीं। वह इन्द्रियों के सुख से परे हैं।

"भक्ति की अवस्था का वर्णन भागवत इस प्रकार होता है। भक्त कभी कभी भगवान की स्मृति में रोने लगता है, कभी कभी हँसने लगता है। ..... भगवान की लालाओं का अनुशीलन करते हैं। परम निवृत्ति में कभी कभी वे मूक हो जाते है।(37) सिर्फ भगवान का ही दर्शन करता है। उसके महिमा ही सुनता है। भगवान के बारे में सोचता है और बोलता है।(38)

हिन्दी के सभी कृष्ण भक्त कवि भगवन्नाम का उच्चारण करते हुए तन्मयता के कारण नाचे भी हैं। सूर को तो श्रीकृष्ण के गुणगान गायन में जो सुख होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

"ज्यों सुख होत गुपालहिं गाये
सो नहिं हात जप तप के कीने को कतीरधन्हाये।
उसी प्रकार अष्टछाप के "अन्य कवियों ने भक्ति की
सुखानुभूति का वर्णन किया है।
सूर के लिए कृष्ण भक्ति में जो सुख मिलता है वह
अन्यत्र नहीं मिलता। (39)

परमानंद को तो गोपाल श्रीकृष्ण से भक्ति करने से जो सुख प्राप्त हुआ उसका वर्णन तन्मयता से इस प्रकार करते है –

"माई हौं अपने गोपालहिं गाऊँ
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन देखि सुख पाऊँ (40)

हिन्दी की सुप्रसिद्ध संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा का कहना है – कृष्णप्रेमी बेली उसके मन में फेली गयी। उनमें आनंद फल ही निकलेंगे।

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई
अँसुवन जल सींची सींचि प्रेम बेलि बोई
अब तो बेल फेल गयी" आनंद फल दोई। (41)

सभी आलवार अनुभूतिपरक भक्ति में डूबकर पागल हो गये। कुलशेखर आलवार खुद अपने को हरिभक्त में "पागल" कहते हुए उनके गुणगान करते है। "विष्णु महिमा के सिवा मुझे किसी की चिंता नहीं। मैं किसी से भी मिलना नहीं चाहता। मैं विष्णु भक्ति में पागल हो गया हूँ।" (42) तोडुरडिप्पोड़ि आलवार का मन भक्ति की चरमावस्था में किसी अन्य देवता को मानने के लिए तैयार नहीं है।

"मट्रमोर दे‍व् मुण्डे मदियिल्ला माणिडगल (43)

अनिवर्चनीय भक्ति के कारण सभी कृष्ण भक्त कवि का मन अपने आराध्य के गुण गाना में रूप सौंदर्य गाने में बहुत रमा है। आलवार की रचनाओं में भक्ति महिमाएँ, भक्ति के साधन आदि का विस्तार रूप से वर्णन मिलते हैं।(44) अनिर्वचनीय भक्ति के कारण प्राप्त आनंदानुभूति को भी इन पाशुरों में हम देख सकते है। (45)

इस प्रकार भक्ति अनुभूतिपरक है। वह अकथनीय है, अवर्णनीय है। डॉ. रामचंद्र शुक्ल कहते हैं" साहित्य के क्षेत्र में जो रहस्यवाद है, आध्यात्मिक क्षेत्र में वहीं भक्ति हैं।

5.2. भक्ति प्रेम स्वरूपा है:-

दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी और खींचनेवाला एक मात्र सूत्र प्रेम है। जो अधिकार से, बल से प्राप्त नहीं कर सकता है, वह प्रेम द्वारा प्राप्त कर सकता है। पवित्र प्रेम में अपने सन्निहितों के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा, ध्यान रखने के कारण उन पर आधिपत्य भी स्थापित कराने की क्षमता होती है। प्रेम के सामने सबको झुकना ही पड़ता है। प्रेम में एक ऐसी अनुपमशक्ति है जो मानव को ही नहीं बल्कि सारी दुनिया को बदल सकती है। पशु पक्षी, मनुष्य, सभी प्रेम में विह्वल हो जाते हैं। प्रेम का महत्व सभी साहित्यकारों ने स्वीकार किया है। प्रेम के बिना रहनेवाले मनुष्य शव के समान है। (46) तमिलकवि तिरुवल्लुवर ने

प्रेम रहित आदमी को अस्थियों से घिरा चमडे से तुलना की। पवित्र प्रेम हृदय में उद्‌धृत होने से अपने प्रेमपात्र वस्तु (या) व्यक्ति को देखने से शरीर पुलकित होकर अनायास से आँखों में से आँसू निकलत हैं। (47) पवित्र प्रेम अगर किसी के प्रति हो तो उनकी गलतियों की परवाह भी नहीं होती। इसका एकमात्र कारण अचंचल अटूट प्रेम। इसी संबंध में अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है "गलतियाँ बडी नज़र आती है जब प्रेम की कमी होती है। (48) कृष्ण भक्त कवियों का हृदय माँ यशोदा के माध्यम से, गोपियों के माध्यम से कृष्ण प्रेम में रमा है। श्रीकृष्ण की नटखट चेष्टाओं से तंग आकर गोपियाँ यशोदा से शिकायत करती है। श्री कृष्ण की गलतियॉ यशादा को दीखती नहीं। इसका एक मात्र कारण कृष्ण के प्रति यशोदा द्वारा रखा गया पवित्र, अटूट, असीम पुत्र प्रेम। प्रेम के संबंध में कबीरदास ने कहा–

"प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाथ बिकाय
राजा परजा जेहि रुचि सीस देय ले जाय।।

भगवान से भक्त का प्रेम लौकिक होकर भी अलौकिक है। पत्ता, पुष्प, फल पानी इनमें से किसी भी चीज़ को प्रीति के साथ भगवान को समर्पित करें तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। (49) भगवान से भक्त का प्रेम पार्थिव शरीर को अपार्थिवच लोक तक पहुँचाने की प्रेरणादायी है। प्रेम अनेक प्रकार के है।। मातृप्रेम, पितृप्रेम भातृ–प्रेम वत्सप्रेम, पत्नी प्रेम, पति प्रेम, सखा प्रेम आदि। साधारणतः कृष्ण भक्त कवियों ने वात्सल्य रस, माधुर्य रस का पोषण करने के लिए मातृप्रेम एवं पत्नी–प्रेम का सहारा लिया है। माधुर्य रस के आलंबन के रूप में प्रेमी प्रेम या पति प्रेम को अपनाया है। भगवान से भक्त का प्रेम साधारण प्रेम नहीं परम प्रेम है। (50) रस में भाव की प्रधानता होती है और वहीं भगवान को प्राप्त कराने में सहायक होते है।

नारद ने प्रेम को दो रूपों में अनुभव किया एक सेवक का सेवा तत्पर प्रेम दूसरा आजीवन प्रेयसी का प्रेम (51) शांडिल्य भक्तिसूत्र में भक्ति को भगवान के प्रति अत्युत्तम श्रेष्ठ प्रेम कहा गया है। (52)

<u>हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में वर्णित प्रेमस्वरूपा भक्ति</u>

कृष्णभक्ति साहित्य में "भक्ति प्रेम स्वरूपा है" उक्ति पग पग पर दीखती है। श्रीकृष्ण से नंद एवं यशोदा का प्रेम जो माँ–बाप के प्रेम है वात्सल्य रस से पूर्ण है। ग्वाल बालकों का प्रेम सखा, प्रेम है, जहाँ भक्त कवि भगवान श्रीकृष्ण को अपने इष्ठ सख (या) मित्र के रूप में स्वीकार करते है। गोपियों का प्रेम (या) राधा का प्रेम श्रीकृष्ण के प्रति कांता प्रेम है, कृष्ण के प्रति बलराम का प्रेम भातृ प्रेम है। संपूर्ण कृष्णभक्ति साहित्य प्रेम स्वरूपा भक्ति से ओतप्रोत है। कृष्णभक्त कवि भगवान कृष्ण को सर्वशक्तिमान, दुष्टसंहारक, जगदोद्वारक स्वीकारते हुए उनकी लीलाओं पर बलि बलि हो जाते है। इस क्षेत्र में कृष्ण भक्ति कवियों की प्रेममय भक्ति राम भक्त कवियों से एक कदम आगे है। राम भक्त कवियों की प्रेमा भक्ति मर्यादावाद से पूर्ण दास्य भक्ति है। राम की लीलाओं का वर्णन वे मर्यादावाद की सीमाओं को पार किये बिना करते है। कृष्ण भक्त कवि कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में मर्यादावाद विधि–निषेध, वैदिक कर्मकाण्ड का ध्यान नहीं रखते क्योंकि श्रीकृष्ण को उन्होंने अपना पुत्र, सखा, प्रेमी, पति सब कुछ मानकर उनसे एक अविनाभाव संबंध जोड लेते है। यह अनुपम प्रेम के कारण भगवान से उनका सामिप्य और निकट ही जाता है। वे उस अलौकिक भगवान कृष्ण में लौकिक रिश्तों के गुण दोष देखकर एक सखा की तरह उन्हें भी प्रश्न करने का साहस कर बैठते है।

अष्ठछाप के कवियों का मत यह है कि संसार दुःख से निवृत्त का सरल मार्ग ज्ञान और योग की अपेक्षा प्रेमा भक्ति का ही है और जहाँ इन्होंने भगवान की

स्तुति की है, वहाँ उनसे उन्होंने प्रेमाभक्ति ही माँगी है। प्रेमा भक्ति की महिमा को सूर ने इस प्रकार प्रकट किया है।

'रे मन समुझि सोचि विचारि
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ कहत निगम पुकारि।

यहाँ सूरदास ने ज्ञान तथा योग के अन्य मार्गों का खंडन नहीं किया है, उन्होंने यही कहा कि ज्ञान और योग मार्ग से भगवान कठिनता से मिलते हैं और भावमय प्रकृति रखने व्यक्तियों के लिए भक्ति का प्रेम मार्ग ही सरल उपाय है। ''सूरसागर के 'गोपी–उद्धव संवाद में यहीं बात सूर ने सिद्ध की है। परमानंद दासने भी कई पदों में यहीं कहा है – जो ज्ञान और योग के मार्ग पर लगे है, वे लगे रहें, परन्तु मैं तो गोपाल का उपासक हूँ और उसी में मुझे सुख प्राप्ति हुई है।(53)

ज्ञानयोग की कठिनता को बताते हुए परमानंद दास कहते है ज्ञान, कर्म मार्ग में शरीर को कष्ट देते है। हरि भजन के सरल मार्ग में सर्व सिद्धि है। सूर का कहना है प्रेमा भक्ति के बिना मोक्ष नहीं मिलता। (54)

हरि के भजन में सब बात।

ज्ञान कर्म से कठिन करि कत देत हो दुखगातु बदत वेद पुराण छिनु छिनु साँझे अरु परभात संत जन मुख द्रवत हरि जसु नंदलाल पद अनुराग नाहिंन भव जलधि कोड औरों विधन के सिरलात दास परमानंद प्रभु पै मारि मुख ये जात।

नंददास भक्ति की श्रेष्ठता ''दशम स्कंद भाषा भागवत में इस प्रकार बताते है। हे प्रभु। तुम्हारी भक्ति के बिना ज्ञानादि का जो लोग साधन करते हैं, उनको बहुत श्रम करना पड़ता हैं। अष्टांग योगी और कर्मयोगी सब अपने अपने मार्गों में अत्यंत क्लेश जानकर उन्हें छोड देते हैं और अंत में वे आपकी ही शरण

लेते हैं और आपकी भक्ति पाकर तथा आपकी कथा सुनकर सहज में मुक्ति और परमगति पाते है।

"अब विधि कहत ग्यान दे जोई, भक्ति बिना सिद्ध न होई।
तुम्हारी भगति अमी रस सरवर मोक्षादिक जाके बस निर्झर
तिहि तजि जे केवल बोध कौं, करत क्लेस चित सोध कौ।
तिन कहुँ छिन ही छिन श्रम बढे, और कछू न तनक कर चढे
जैसे कन बिहीन ले धान, धमकि धमकि कूटत अज्ञान।
और "हे प्रभु पाछे बहु तक भोगी, तजि तजि भोग भये भल जोगी।
हृद अष्टम जोग अनुसरे, ग्यान हेतु बहुते तप करे।
अति श्रम जाति कहा ते फिरे, तुम कहूँ कर्म समर्पन करे
तिनकर सुद्ध भयो मन मर्म, तब लीने प्रभु तुम्हारे कर्म।
कथा श्रवन करि पाई भक्ति, जाके संग फिरत सब मुक्ति
ता करि आत्म तत्व कौं पाई, बैठे सहज परम गति पाई।

गोविंद स्वामी प्रेमाभक्ति की महिमा के संबंध में कहते है –

"प्रीतम प्रेम से ही मिलते है, बिना स्नेह किये भगवान को पाने की लालसा सेमर के फल से निराश हुए तोते की लालसा की तरह होती है।

प्रीतम प्रीति ही ते पैये।
यद्यपि रूप गुण सील सुधरता इन बातन न रिझैये।
सत कुल जन्म करम शुभ लक्षण वेद पुराण पढैये।
गोविन्द बिना स्नह सूझा लौं रसना कहा नचैये।

चतुभुर्जदासजी भगवान के प्रति पनी स्नेहमयी भक्ति का भाव निम्न लिखित पद में बडे सुंदर रूप में प्रकट करते हैं:–

स्याम सुन नियारो आयो मेहु।
भजेगी मेरी सुरँग चूनरी ओट पीत पट देहु
दामिनि ते डरपित हौं मोहन निकट आपुनोदेहु
दास चतुर्भुज प्रभु गिरिधर सों बाँध्यो अधिक सनेहु।

रसखान ने कृष्ण को प्रेम स्वरूप मानकर चित्रण किया है।(55)

"प्रेम हरी कौ रूप है, ज्यों हरि प्रेम स्वरूप
एक होई द्वै में लसै, ज्यों सूरज अरुधूप

रसखान का मत है प्रेम गुण रहित, बिना धन, कामना, स्वार्थ प्राप्त होता है अर्थात् प्रेम गुण रहित, कामना रहित, सतत वर्धमान, विच्छेद रहित सूक्ष्माति सूक्ष्म और अनुभव रूप होता है।(56)

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवि कृष्ण प्रेमारस में डूबी कर उसके आनंद को रसास्वादन किया है।

कृष्णभक्त कवियों द्वारा वर्णित कृष्ण भक्ति रस आदि से अंत तक कृष्ण प्रेम रूपी अमृत से भरा हुआ है। अपने बेटे से माँ का प्रेम, जो वात्सल्य रस से पूर्ण है। उसका यथार्थ चित्रण पेरियालवार ने यशोदा के माध्यम से किया है। गोपियों द्वारा कही गयी शिकायतों का सुनकर यशोदा श्री कृष्ण से कहती है 'केशव' उधर खडे होकर देखते नहीं रहना। इनकार मत करो। इधर आओ। जिन के लिए तुम्हारे प्रति प्रेम नहीं, उनके घर में जाकर मत खेलो। अफवाहे फेलानिवाली नौकरानी नौकरों के पास जाकर मत खेलो। इधर आओ। माँ की बातों का मानना बच्चों का कर्त्तव्य है। पहले की तरह मुझे रस्सी से बँधवाने का काम मत दे दो। इसलिए इधर आओ। (57) दूसरों के सामने पवित्र–प्रेम से पूर्ण

मातृ हृदय अपने बच्चों का अपराध स्वीकार नहीं करती। (58) सूर की यशोदा भी पेरियालवार की यशोदा जैसी है – वह श्री कृष्ण को मनस चोर नहीं मानती। (59)

पेरियालवार द्वारा चित्रित यशोदा पवित्र प्रेम स्वरूपिणी है। श्रीकृष्ण को गाय चराने भेज देने के बाद वह खुद अपने काम के लिए पछताती है। प्रेम में एक ऐसा महत्व है कि जिन पर प्रेम रखते है, उन्हें थोडा–सा भी कष्ट होने पर भी हम रोने लगते हैं। पछताने लगते है। यशोदा कृष्ण को भेजने के बाद इस प्रकार पछताती है "कांटों से, पत्थरों से भरे जंगल में बिना छतरी (या) पदत्राण भेजनेवाली मैं कितनी कठिनात्मा हूँ। (60)

बालक कृष्ण जूते पहने बिना, छतरी लिये बिना गाय चराने जंगल गया। उसे भेजने के बाद माँ यशोदा पछताने लगती है कि और अपने को कठिनात्मका कहकर कोसने लगती है। यह माँ के पवित्र प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है।

तिरुमलिचै आलवार तो कृष्ण प्रेम को ही जीवन का एक मात्र सहारा मानते है। कृष्ण प्रेम के बिना आलवार की कुछ भी नहीं है। (61) तिरुमलिचै आलवार की भक्ति प्रेमरस से भरी हुई कृष्णामृत है। (62) भक्त आण्डाल द्वारा कृष्ण के प्रति दिखाई गयी प्रेमभावना माधुर्य प्रेम है। आण्डाल कोयल से अपने प्रिय श्रीकृष्ण को मिलाने की प्रार्थना करती है। उनके प्रेमाभक्ति का यह ज्वलंत उदाहरण है। "श्रीकृष्ण के वियोग में मेरी आँखें पर पलक बैठती नहीं (अटूट प्रेम के कारण) मेरे दुःख सागर को पार करने श्रीकृष्ण मिलन रूपी नाव चाहिए। जिसके प्रति मन में प्रेम हो उनसे अलग रहना रोग जैसा है। उसके बारे में भी तुम्हें भी मालूम हो। सुवर्ण रंगवाले विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को बुलाते हुए तुम कूकना शरु करो। श्रीकृष्ण के वियोग में वह अपने को रोग से ग्रस्त रोगिणी महसूस करती है। कायल की कूक के माध्यम से भी वह कृष्ण का नाम रटना चाहती है।

5.3. भक्ति में अनन्यता है :

परम प्रेमा भक्ति की विशेषता यह है कि भक्त का मन अपने आराध्य को छोडकर किसी और देवता की महिमा को स्वीकार नहीं करता। यह भक्त द्वारा भगवान के प्रति दिखाये गये अटूट प्रेम का प्रमाण है। भक्ति की चरमावस्था में उस परम प्रेम स्वरूप भगवान को ही भक्त सब जगह देखता है, सुनता है उसी के बारे में बोलता है। (63) उपनिषद में इसी स्थिति को भूमानंद कहा गया है। भक्त अपनी सारी इन्द्रियों को, सारे अवयव को अपने आराध्य में लगाकर भक्ति करता है। सभी कृष्णभक्ति कवियों ने मुक्तकंठ से इसे स्वीकार किया है कि भगवान श्रीकृष्ण की सेवा में लीन अवयव ही अवयव है। सुप्रसिद्ध तेलुगु कवि पोतना का कहना है "हे करुण नीरज पत्र आँखेंवाले आप हमें ऐसा सोभाग्य प्रदान करें कि हमारे कान हमेशा तुम्हारे गुणगान संबंधी पर ही सुनें, मुँह सदा तेरा स्मरण करें मेरे हाथ हमेशा तेरा चरणार विंद के पास जोड़े रहें, मेरा मन हमेशा आपकी सेवा करने में मग्न रहें, मेरी समस्त बुद्धियाँ आप पर ही लग जाएँ (64) सुप्रसिद्ध आलवार कुलशेखर ने भी अपनी रचना "मुकुन्दमाला" में अपनी सारी इन्द्रियों से भगवान में लग जाने की प्रार्थना की है। (65) भागवत में भक्ति की अनन्यता के संबंध में कई कहानियाँ मिलती हैं।

इसी अनन्यता का एक और नाम है "एकाश्रय ग्रहण"। भक्त के तन, मन, धन सारे अवयव अपने आराध्य को छोडकर कहीं नहीं जाता है। अनन्यता का मतलब है सभी प्रकार के दूसरे सहारों के छोड़ना" (66) ऐसी अनन्यता में आराध्य के प्रतिकूल के विषय में भक्त उदासीनता दिखाता है। (67) भक्त अपने आराध्य के प्रति रखी हुई असीम भक्ति के कारण किसी अन्य के बारे में सोच भी नहीं कर सकता। उनका एम मात्र सहारा अपना आराध्य भगवान ही है।

हिन्दी के कृष्ण काव्य और तमिल आलवा. पाशुरों में अनन्यता:-

हिन्दी के प्रमुख कृष्ण भक्त कवि सूरदास का मन कृष्ण भक्ति के बिना, कमल नयन कृष्ण के बिना अन्यत्र सुख पाता ही नहीं। अपने आराध्य की तुलना कवि श्रेष्ठतम वस्तुओं से करते है।

"मेरा मन अनत कहाँ सुख पावै
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।
कमल नैन को छाँडि महातम और देव को धावै।
परम गंगा को छॉडि पियासो दुर्मति कूप खनावै।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यों क्यों करील फल खावै
सूदरास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै। (68)

हिन्दी के सभी कृष्ण भक्त कवि वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अनुयायी होने के कारण अनन्य भक्ति पर जोर ज्यादा देते हैं। "विवके-धर्माश्रय" नामक ग्रन्थ में वल्लभाचार्य जी ने कहा "कृष्णभक्त को अन्य देवों का भजन तथा उनकी शरण का परित्याग करना चाहिए। (69) अष्टदाप के कवियों ने विष्णु के सभी अवतारों के प्रति श्रद्धा प्रकट की, लेकिन श्रीकृष्ण को सभी देवी-देवताओं से श्रेष्ठ माना। यह उनके एकनिष्ठ प्रेम का घोतक है। एक ही के प्रति विशेष प्रकार से आकर्षित होना है एकनिष्ठ प्रेम। सभी कृष्ण भक्त कवियों का एक मात्र सहारा, एकमात्र आश्रय भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। इसीलिए अनन्य भक्ति का दूसरा नाम "एकाश्रयग्रहण"। अष्ट छाप के अन्य कवियों ने भी एकाश्रय का ग्रहण किया। परमानंद दास कहते हैं प्रीति एक ही से ही हो सकता है। श्रीकृष्ण भक्ति को श्रेष्ठ मानते हुए उनको छोड़कर वे कहीं भी नहीं जाना चाहते है। यह उनकी अनन्य भक्ति का उज्जवल उदाहरण है। (70) कुंभनदास (71) चतुर्भुजदास (72) ने भी अनन्य भक्ति पर बल दिया है।

वैष्णव कवि आलवारों ने भी अपने आराध्य के प्रति अनन्यभाव प्रकट करके एकाश्रय ग्रहण किया है। पेरियालवार ने अपने आराध्य को छोड़कर कहीं भी नहीं जाने का दृढ़ निर्णय ले लिया। उनका कहना है "तूफान की तरह संसार के दु:ख सागर में फँसकर मैं त्रस्त हूँ। सांसारिक बाधाएँ तेरी कृपा से मिट गयी। मैंने तुम्हें जान लिया है। अब मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं। कंस ने तुम्हारे पहले जन्मा देवकी की छः संतानों का संहार किया है। तुम देवकी की कोख में जन्म लेकर उनका दु:ख दूर किया है। हे वामन् जी । मैं तुम्हें कहीं भी जाने नहीं दूँगा। (73) मैं तुम्हें छोडकर कहीं जाने नहीं दूँगा। तुम्हारी महिमाओं को मैं ने जान लिया है। जिस प्रकार भरत राम के पर्णशाला के पास ही बैठकर उनकी शरण में गया उसी तरह मैं तुम्हारी शरण को छोडकर जाऊँगा नहीं। तेरी माया से तुम मुझे छोड़कर जाओगे तो तेरी पत्नी पर क़सम। (74) तिरुमालिरुंजोलै क्षेत्र में स्थित हे भगवान तुम्हारी सेवा करने का सौभाग्य मुझे मिल गया है और मैं किसी अन्यों की सेवा नहीं करुँगा। तोडरडिप्पोडि आलवार याने विप्रनारायण भी यह प्रश्न करते है "मेरे आराध्य को छोडकर कोई और देवता है, हे मूर्खजन। वह एक ही है इसे आप पहचानते नहीं। अभी जान लीजिए कि उसके बिना कोई और देवता नहीं। वह कोई और नहीं श्रीकृष्ण ही है। (75) तोंडरडिपोडि आलवार के लिए भगवान श्रीकृष्ण ही सब कुछ है। उसके बराबर कोई देवता नहीं। उनका दृढ विश्वास ही है कि उनका आराध्य श्रीकृष्ण ही सारे देवताओं में से श्रेष्ठ है। पोयेगे आलवार ने भी अपने आराध्य को परमबन्धु मानकर एकाश्रय ग्रहण पर बल दिया है। उनका कहना है "आँखों में सदा आराध्य को बसाकर पलके बंद करके उनकी मूर्ति का सदा स्मरण करना है। मन, आँख, पलकें सारे अंग अपने आराध्य को अर्पित करना है। (76) तिरुमंगै आलवार (77) तिरुमलिचै आलवार का कहना है "मेरे लिए तुम्हारे सिवा कौन है: नीलमेघश्यामल। मेरे बिना तुम्हारी महिलाएं कोई नहीं पहचान सकता" (78) अपने भगवान को सर्वशक्तिमान के रूप में स्वीकारते हुए सारे देवताओं में से उसे श्रेष्ठ बताते हैं। इस प्रकार सारे कृष्ण भक्ति साहित्य में अनन्य भक्ति दीख पड़ती है।

5.4. भक्ति में समर्पण है:–

" समर्पण" का शाब्दिक अर्थ है "सब कुछ अर्पण करना"। परिपूर्ण भक्ति समर्पण भाव से पूर्ण है। भक्त अपने प्रियतम आराध्य के लिए सब कुछ अर्पण करता है। प्रेम की पराकाष्ठा समर्पण में है। समर्पण भाव से प्रेम सार्थक हो जाता है। सारे कार्य भगवान को समर्पित करके एकाग्र मत से उनका ध्यान करेंगे तो भगवान इस नश्वर जगत से अतिशीघ्र उद्धार करेंगे। (79)

खुद भगवान कहते हैं "कुछ भी सोचे बिना जो जन मेरी उपासना करते हैं, उनके योग क्षेम खुद मैं देख लूँगा। (80)

यह समर्पण पूर्ण रूपेण होना चाहिए। तन, मन, धन सारी इन्द्रियों से जो भी किया जाता है उन्हें भगवान को समर्पित करना है। (81)

भक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक गुण है समर्पण भावना। भक्ति के लक्ष्णों में मुख्य है समर्पण। सभी प्रकार के कार्य को भगवान के लिए समर्पित करके खुद आत्मा समर्पित होना चाहिए। उनकी विस्मृति में परम व्याकुल होना। (82) भक्त समर्पण भावना के ही जाते है। समर्पण के अंतर्गत (82.1) आत्मनिवेदन, शरणगति आदि ओते है। सभी कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति में पूर्ण समर्पण को एक आवश्यक अंग माना है।

जब भक्त कवि अपना सब कुछ भगवान को समर्पित करता है, भगवान की शरण में वह अपने को ही सौंपता है। यही भक्ति का एक सुगम रूप है। जिसका नाम "प्रपत्ति" है। भगवान से मिलने की व्यग्रता प्रपत्ति का प्रधान अंग है। भक्त भगवान मेरे है। (ममै वासो) अतः उनकी सेवा का भार मेरे ऊपर है।

प्रपत्ति के दो भेद हैं शरणागति और आत्म समर्पण। प्रपत्त्ति की स्थिति भगवत्कृपा पर निर्भर है।

इसी प्रकार की भक्ति में भक्त अपने को "नी. ' मानकर उस पतित पावन परमात्मा की शरण में जाता है (या) तो अपना प्रत्येक कर्म उनको समर्पित करके इह लोक से पार कराने की प्रार्थना करता है। पूर्ण समर्पण भावना में "नैच्यानुसंधारन"(83) नामक भक्ति–पद्धति देखने को मिलती है। "शरणागति" (या) प्रपत्ति दो प्रकार की कही गयी – (1) दृप्त प्रपत्ति (2) आर्त प्रपत्ति। इस देह से सांसारिक कष्टों को भोगने के बाद पुनर्जन्म रहित होने के लिए भगवान की शरण में जाना दृप्त प्रपत्ति है। (2) सांसारिक बंधनों म फँसकर, उससे डरकर, अपने संपूर्ण अपराधों के लिए क्षमा मांगते हुए प्रार्थना करना आर्त प्रपत्ति है। (84) वल्लभ के पुष्टिमार्ग में समर्पण (या) प्रपत्तिवाद के लिए एक उदाहरण दिया गया है। भक्त भगवान श्रीकृष्ण से मार्जाल भक्ति की कामना करना है न कि मर्कट भक्ति। जिसका नाम (1) मर्यादिकी प्रपत्ति तथा (2) पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति।

मर्यादिकी प्रपत्ति (या) मर्कट भक्तिः–

बन्दर का बच्चा अपनी माँ की जक ड पकड लेता है। माँ उसकी करते हुए भी उसको पकड़ती नहीं।

पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति (या) मार्जार भक्तिः–

बिल्ली का बच्चा माँ को नहीं पकडता बल्कि बिल्ली जहाँ जाती है बच्चे को मुँह में लटका कर ले जाती है और उसकी सदा रक्षा करके उसके पीछे फिरा करती है (85)

उसी प्रकार अ त, दीन, हीन भक्त की देखभाल करने की जिम्मेदारी भगवान को है। सभी कृष्ण भक्त कवियों ने पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति की प्रधानता दी है।

हिन्दी के कृष्ण काव्य और आलवार पाशुरों में समर्पण भाव:–

हिन्दी के प्रमुख कृष्ण भक्त कवि सूर ने अपना सब कुछ भगवान कृष्ण को समर्पित करके कहते हैं "हे प्रभु। आप मेरे गुण–अवगुण की ओर ध्यान न दीजिए। (86) सब कुछ समर्पण करने के बाद भक्त कवि के मन में आत्म विश्वास पैदा होता है कि भगवान उसका साथी है कोई उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। यहीं मार्जल भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। परमानंददास इसी आत्मविश्वास के साथ कहते है कि श्रीकृष्ण उनका परम मित्र तथा परम रक्षक है(87)

अब डरु कौ रे भैया
गलगरजै गोकुल में बैठ, हमारी मित कन्हैया
....
परमानंददरस को ठाकुर सब प्रकार सुख दैया।

कृष्ण भक्ति साहित्य में गोपियों का प्रेम माधुर्य प्रेम है और उनकी भक्ति समर्पण भावना की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। पेरियालवार की गोपी श्रीकृष्ण की शोभा से विचलित होकर अपने को उनके लिए पूर्ण रूप से समर्पित कर लेती है। वह किसी और के पास जाना नहीं चाहती है।(88) वह खुद अपने को श्रीकृष्ण के लिए अर्पित कर लेती है। एक गोपी की माँ कृष्ण प्रेम में पागल हुई अपनी बेटी का वर्णन इस प्रकार करती है "ग्वाल झुंड में शोभित गायों के साथ हर्ष से पूर्ण नीरज नयन वेणुनाद करता हुआ, अपनी चालों से सभी को मुग्ध करनेवाले श्रीकृष्ण के अपार सौंदर्य को देखकर अपनी लाज, अपने स्त्रीत्व और मेरी भी परवाह किये बिना श्रीकृष्ण के पीछे दौडने लगी और वह कृष्ण प्रेम में विभेर हो गयी।

पेरियालवार अपने को नीचे के रूप में चित्रित करके भगवान श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहते है "शंखचक्रधारी। अपने से छोटे के अपराधों को बडे लोग स्वीकार करके क्षमा करते है। मेरी आँखें जब खोलेंगी तब तेरी मूर्ति के बिना किसी और को नहीं देखें। मेरा मन तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाएँ। (89) पेरियालवार की यहीं प्रार्थना है कि "सारे जगत् को मापे निर्मल। इस नीच को अपनाने में संकोच मत करो। मुझे घर (या) अन्न नहीं चाहिए। कंस को संहार करनेवाले तुम्हारा दास बनकर मैं सदा रहना चाहूँगा। (90) श्रीकृष्ण के बिना पेरियालवार किसी और को नहीं देखना चाहते है। उसे सांसारिक सुख भोग जैसे घर अन्न नहीं चाहिए। उन्हें चिरकाल आनंद प्रदान करनेवाला श्रीकृष्ण ही है। वे श्रीकृष्ण के दास बनकर जीने को महाभाग्य समझ रहे हैं। पेरियालवार का मन सदा विष्णु के अवतार कृष्ण में रमा है। उनका कहना है "मैंने अब तक कितना समय, कितने दिन व्यर्थ बिताये अब तुम्हें छोडकर मैं नहीं रह सकता। पांडवों की रक्षा हेतु तुमने दुष्ट सैकड़ों कौरवों का सर्वनाश किया। मेरा मन तुम्हारा है।(91) पूर्ण समर्पण भाव में भाक्त भागवान के ही हो जाते है।

तिरुमलिचै आलवार अपने पाशुरों में समर्पणभाव इस प्रकार व्यक्त करते है "कल और भविष्य में भी तुम्हारे कृपा कटाक्ष के लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मैं तुम्हारे सिवा किसी और का नहीं नारायण। तुम मेरे ही हो। (92)

इस प्रकार प्रत्येक आलवारों की भक्ति समर्पणभाव से पूर्ण है। इसके अंतर्गत नैच्यानुसंधान, शरणगति प्रपत्ति भाव, पुष्टिमार्ग में वर्णित मार्जाल भक्ति आदि को हम यथेष्ट रूप से इनको पाशुरों में देख सकते है। बारह आलवारों में एक मात्र स्त्री आण्डाल खुद श्रीकृष्ण को समर्पित होकर माधुर्यपिपासिका बन गयी है। आलवारों की भक्ति में समर्पण अधिक है।

5.5. भक्ति में अविस्मृतिः–

"विस्मृति" स्मृति शब्द के विपरीत शब्द है। विस्मृति का अर्थ है "भूलना" "अविस्मृति" का अर्थ है कभी नहीं भूलना। भक्ति में अविस्मृति है क्योंकि भक्त अपने आराध्य को कभी भी नहीं भूलता है। उनके नाम स्मरण में, ध्यान में रमा रहता है। परम प्रेम स्वरूपा भक्ति में भक्त सदा अपने उपसाय की याद करता है। भगवद्यान में स्मरण, कीर्तन, पूजन पर प्रधानता दिया गया है। "सदा सभी प्रकार की भावनाओं से भगवान का ही भजन करना चाहिए।(93)

रामकृष्णपरम हंस ने भगवद्भजन करते समय तालियाँ बजाने को कहा है। उन का कहना है भगवान का स्मरण तालियाँ बजाकर करने से पाप रूपी पक्षी बैठता नहीं।

हिन्दी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में वर्णित 'अविस्मृति से पूर्ण भक्ति':–

भक्ति में अविस्मृति का दूसरा रूप है भगवान का सामिप्य चाहना। सूरदास कहते है

तुम बिनु भूलोई भूलो डोलत।
लालचि लागि कोटि देवनि के, फिरत
जब लगि सरवस दीजै उनको तबहीं लगि यह प्रीति।
फल मॉगत फिरि जात मुकुट हूँ, यह देवन की रीति
....
सूरदास हम दृढ़ कदि पकरे, अब यह चरन सहायक। (94)

छीतस्वामी अपने भगवान श्रीकृष्ण को भूलता नहीं। वह सदा उनके ध्यान में संपूर्ण जगत् को कृष्णमय देखता है। उनका कहना है "मैं अपने आगे श्रीकृष्ण

को देखता हूँ। पीछे, नीचे जिधर देखता हूँ उधर कृष्ण है। यह "भक्ति में अविस्मृति का ज्वलंत उदाहरण है। (95)

अपने आराध्य की स्मृति में उनके रूप को अपने नयनों में बसाकर रसखान इतना बेसुध हो जाता है कि ऑखें नहीं खोलता। उन्हें अहर्निश अपने हृदय दर्पण में धारण करता है।

–"सोहत है चाँदवा सिर मोर के
जैसिये सुन्दर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल विराजत, जैसी हिय वनमाला लसी है।
रसखानि विलोकति बौरी भई, दृग मूँद के ग्वारि पुकारी हँसी है
खोली री घॅघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैननि माँझा बसी है। (96)

मीराबाई तो अपने प्रियतम आराध्य श्रीकृष्ण को कभी भी भूलती नहीं। दिन–रात सदा वह कृष्ण की याद में तडपती है। उनकी भक्ति में अविस्मृति पूर्ण रूप से देखने को मिलती है। मीरा श्रीकृष्ण के साथ सदा रहना चाहती है। उनके रूप सौंदर्य को याद करती हुई रात, दिन उनकी स्मृति में समय बिताती है उनके साथ खेलना चाहती है, उन्हें रिझाना चाहती है। उनके बिना एक पल भी नहीं रह सकती। कृष्ण की स्मृति में बलि बलि हो जाती है। (97)

आलवारों के पाशुरों में भी "भक्ति" की अविस्मृति भावना" देखने को मिलती है। भूदत्तु आलवार अपनी रचना "इरण्डाम तिरुवन्दादि" में इस प्रकार कहते है "संपदा से पारलौकिक सुख नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण की कृपा से आत्मिक आनंद मिलेगा। अपने कृपा कटाक्ष से वेदांतियों को सदा सुख देनेवाला, नीलमेघशमल श्रीकृष्ण के चरणाविदं को मन सदा बिना भुलाये याद करते रहो।(98) पेयालवार मन को संबोधित करके कहते हैं – "हे मनः समस्त ब्रह्मांड को मापे वामन, पन्नगशायी अविनाशी कंस का संहार किये श्रीकृष्ण को सदा याद करते रहो अर्थात्

उसकी स्मृति में सदा रहो। (99) भूदत्तु आलवार भगवान कृष्ण को महाविष्णु के अवतार मानकर उससे उसे सदा अविस्मरण की प्रार्थना करते हुए कहते हैं 'कि विजय को देनेवाले शंख को हाथ में धारण किये मेरे भगवान, सात जन्मों के साथी हो। तुम जन्म जन्मोंतर साथी हो। सदा तुमने मुझे भुलाये बिना कृपा कटाक्ष प्रदान किया। मुझे तुम ऐसा वर दो कि कभी भी मैं तुझे भूलूँगा नहीं। तुम्हारे नाम धारण करके आनंद सागर में डूबने का अवसर दो। (100)

भूदत्तु आलवार श्रीकृष्ण के साथ एक ऐसा रिश्ता स्थापित करना चाहते हैं कि वह जन्म जन्मांतर के हो कितने जन्म लेने पर भी वह श्रीकृष्ण को याद करके ही रहने का वरदान माँग रहे है। अनजाने में भी वह कृष्ण को नहीं भूलना चाहता है।

तिरुमलिचै आलवार अपनी भक्ति की अविस्मूर्ति भावना का वर्णन इस प्रकार करते हैं – मैं कभी नहीं भूलूँगा। मेरे हृदय में तुम्हें मैंने सदा बसाया हे है। मैं ने तुम्हारी सदा याद की। जब मैं गर्भ में था तब से तुम्हारा कृपापात्र बनकर सदा (खड़े होते वक्त, कार्य करते वक्त, तुम्हें भुलाये बिना तुम्हारी चिंता ही कर रहा हूँ।(101)

इस प्रकार सभी आलवारों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की याद में सदा अपनी सुध बुध खो बैठे है। वे कभी भी उन्हें भूलना नहीं चाहते।

5. (6). <u>भक्ति उपास्य सुखापेक्षी है</u>:–

भक्ति को उपास्य सुखापेक्षी इसीलिए कहा गया क्योंकि भक्त सदा अपने आराध्य के सुख, शुभ, मंगल चाहता है। भक्ति का उद्‌भव पवित्र प्रेम से होने के कारण वह अपने प्रियतम परमात्मा का सुख चाहती है। जिसके प्रति मन में प्रेम हो, हम उनके शुभ, मंगल चाहते है। भारत के मनीषी जगत कल्याण के लिए "लोका समस्त सुखिनों भवन्तु" कहा है।

हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में 'उपास्य सुखापेक्षी भक्ति'

कृष्ण भक्त कवि अपने आराध्य की लीलाओं को गाकर उपास्य के सुख हतु उनके जयगान गाते है। भगवान के जयगान गाने में भक्त का हृदय रम जाता है। उस जयगान के माध्यम से भक्त अपने भगवाती के यश एवं शौर्य का वर्णन करता है। उसमें भगवान की सुखापेक्षा ज्यादा दृष्टिगोचर होती है। (102) भक्त कवि यहीं चाहता है कि भगवान की महिमाएँ चारों ओर फैल जाएँ। उनका नाम महिमा अनेक सहस्र साल लोगों के मन में सदा रह जाए। इसके अंतर्गत हम आलवारों द्वारा गाये गये "पल्लाण्डु जयगान" को देखते है।

"सूर्यमण्डल को प्रकाशदाता। संसार के दुःखों के नाशक मुनियों के हृदयवासी। हे हरि। तुम्हें जय हो। (102.1) कालियमर्दन करके लोगों को संतोष प्रदान किये यदुकुल नीरज के सूर्य। हरि। तुम्हें जय हो। (102.2)

भक्त कुलशेखर आलवार अपने आराध्य के सुखापेक्षी के साथ–साथ आराध्य के भक्तों के भी जयगान करते है। यह उसकी पवित्र भक्ति का द्योतक है। उनका कहना है "मेरा मन ठंडा दही, मक्खन, दूध आदि को एक ही समय में खाकर यशोदा मैया द्वारा पकडा गया श्रीकृष्ण की स्तुति करनेवाले भक्तजनों के पादारविंद को प्रणाम करके उनके सदा जयगान करता है। (103) माधुर्योपासिका आण्डाल को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के यशोगान पग पग पर करती हुई कहती है। "वामनावतार में जिस पादों ने त्रिभुवन को मापा है उसकी जय हो। लंका में राक्षसों का वध किये तुम्हारी भुजाओं की जय हो! शकटासुर एवं धेनुकासूर का वध करनेवाले तुम्हारें चरणारविंद की जय हो। तुम्हारी कीर्ति की जय हो। पर्वत को छत्र के रूप में धारण किये गोवर्धनधारी तुम्हारे सद्‌गुण की जय हो। शत्रुनाशक तुम्हारे हाथ के शूल की जय हो। तुम्हारे साहसी गाथाओं के जयगान करने हम आयी। कृपा करो। (104)

लोगों को शुभकामनाएँ, आशीर्वाद दिया जाता है कि वह सुखी रहे। भक्त कवि पेरियालवार अपने आराध्य की महिमाएँ गाते हुए कहते है कि "जगत रक्षक, भक्तों के कल्पतरु, श्रीमहाविष्णु के अवतार श्रीकृष्ण करोड़ों, शत–सहस्र वर्ष रहें और अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ सदा अभय प्रदान करें। लोगों की कामनाएँ पूर्ण करें। (105) अर्थात् दुनियाँ में उनकी भक्ति लोगों द्वारा फैलाएँ जाए। उनके नाम पर सत्कर्म ही हो जाए। उनका यश सदा केलिए बनकर रहे। वह सदा भक्तों को अनुग्रह प्रदान करें। वह भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करनेवाला कल्पतरु बनकर सदा सुखी रहें। पेरियालवार की कामना है कि अपने उपास्य भगवान सदा सर्वदा के लिए भक्तों के रक्षक बनकर रहे। भक्त अपने आराध्य के सुख में खुद सुख का अनुभव करता है। यह प्रेमा भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। लोक रक्षक भगवान के कल्याण के लिए, शुभ के लिए कामना करना पेरियालवार की विशिष्टता है। बालक श्रीकृष्ण की रक्षा हेतु संध्या के समय बुरी नजरों से बचाते हुए ललाट पर काली बिंदी देने की (रक्षा बाँधने की) पारंपरिक पद्धति के माध्यम से पेरियालवार ने अपने को उपसाय सुखपेक्षी साबित किया है। पेरियालवार का कवि हृदय मैया यशोदा के माध्यम से श्रीकृष्ण की भलाई चाहती हुई कहती है।(106) "हजारों बच्चे इस गोकुल में दूसरों को सतायेंगे। सभी की नजरें तेरे पर ही है। तुम इधर आओ। शिष्ट जनों के आशीर्वाद सदा रहेगा। ज्ञान के मणि। तुम्हारी शारीरिक वृद्धि के लिए यह तिलक 'काप्पु' लगाओं एवं रक्षा बांध लो ताकि बुरी नजर तुम पर न गिरे। यशोदा अपने बेटे श्रीकृष्ण को बुरी नजरों से बचाने के लिए "काप्पु" (चंदन जैसा तिलक लगाना और कंगन जो नीम एवं ताम्र से बना हुआ) बाँधना चाहती है। तमिलनाडु के लोगों का विश्वास है कि "काप्पु' लगाने से बच्चे को नजर न लगेगी। "काप्पु" का शाब्दिक अर्थ है। "रक्षा"

सूरदास की यशोदा भी यहीं चाहती कि बालक श्रीकृष्ण को किसी भी प्रकार की बुरी नजर न लग जाय।।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति सदा उपास्य सुखापेक्षी बनकर रही।

5.7. भक्ति में निष्कामना है:–

पवित्र हृदय एवं प्रेम के साथ की जानेवाली भक्ति ही पराभक्ति है। परा भक्ति का प्रमुख साधन है त्याग। अर्थात् सांसारिक बंधनों का त्याग। यहाँ त्याग के लिए दी गयी परिभाषा अपने हृदय की अनुभूतियों को भगवान को समर्पित करना और निष्काम बनकर रहना। (107)

हिन्दी के कृष्ण काव्य तमिल आलवार पाशुरों में निष्काम भक्ति:–

भक्ति निष्काम रूपा है। सभी कृष्ण भक्त कवियों ने निष्काम भक्ति को स्वीकार किया है। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवि लोकाश्रय को बिलकुल छोड दिया। यह उनकी निष्काम भक्ति का द्योतक है। सूरदास कहना –

– कांचन ते जो माँटी तजै, त्यों तनु मोह छांडि हरि भजै,
नर सेवा से जो संख होई क्षण भंगुर धिर उडे न सोई।
हरि की भक्ति को चित लाई, होई हरम सुख कबहँ न जाइ।
ऊँच नीच हरि गनत न दोई,
यह जिस जानि भजो सब कोई (108)

हरि भक्ति के लिए परमानंददस सब कुछ छोडने के लिए तैयार हो जाते है। (109)

परमानंद दास को हरि भक्ति के बिना कुछ और ही नहीं चाहिए लोक वेद, कुल, मर्यादा, संपदा, राजवैभव सब कुछ छोड़ने को तैयार है। (110)

लोग जप–तप तीर्थ–व्रत आदि मुक्ति याने पुण्य प्राप्त करने के लिए करते हैं। कृष्ण भक्त कवियों के सामने वे सब तुच्छ है। उन्हें न स्वर्ग की कामना व

पुण्य की कामना। उनकी एक मात्र कामना है " कृष्ण मिलन"। सांसारिक कामनाओं के प्रति विरक्त होकर अपने आराध्य की भक्ति में डूबना ही स्वच्छंद निष्काम भक्ति है। मीराबाई ने कृष्ण भक्ति के सामने तीर्थ–व्रत, जप तप आदि को छोड दिया। वह कहती है –

"भजन चरण कंवल अविनसी।
कहा भयो सीरथ व्रत कीन्हें कहा लिये करबत कासी।
कहा भयो है भगवा पहर्या घर तज भये सन्यासी।
मीरा के प्रभु गिधिर नागर काटो जन्म की फाँसी।

सभी आलवारों ने भी निष्काम भावना से पूर्ण भक्ति को अपनाया है। पेरियालवार अपनी रचना "तिरुमोलि में इस प्रकार कहते है। (111) वामन के रूप में आकर सात लोकों को तुमने माप लिया है। निर्मल, सभी के नायक। दुष्ट कंस के नाश करके अपने पिता वासुदेव को कारावास से मुक्त किया है। मैं तुम्हारे दास हूँ। मुझे दास के रूप में स्वीकार करने में संकोच मत करो। वस्त्र, अन्न किसी भी चीज़ अर्थात् धन धान्य मैं तुम से चाहता नहीं सिर्फ तुम्हारे सेवक बनने से मुझे सब कुछ मिल जायेगा। स्वीकार करो।

माधुर्योपासिका भक्त आण्डाल तीस दिन लगातार मार्गशिर व्रत करके भी अपने लिए कुछ नहीं चाहती। इनका कहना है "प्रातःकाल में आकर तुम्हारी वन्दना करके तुम्हारे सुन्दर चरणारविंद की पूजा हमने की है। उस के लिए फल देना ही तो सुनो, पशुओं को चराकर आभीर जाति में जन्मा तुम हमारी आत्मा के कैंकर्य को स्वीकार करो। हमें किसी भी प्रकार का व्रत फल (या) वरदान नहीं चाहिए। जीवन भर तेरे साथ रहने की, तुम्हारी बंधु बनकर रहने की कामना दो। सिर्फ तुम्हारी दासी बनकर रहेंगे। इसके सिवा हमें कुछ भी सांसारिक विषय कामनाएँ नहीं हैं" (112) यह उनकी निष्काम भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। एक महीना कृष्ण पूजा लगातार कड़ी मेहनत से करने के बाद भी आण्डाल व्रत का

फल नहीं चाहती। उसके सारे व्रतों का फल उसका उपास्य श्री कृष्ण ही है। श्री कृष्ण मिलन के सिवा वह कुछ भी नहीं चाहती।

ऐसी प्रेमपूर्ण भक्ति को पाकर भक्त कुछ और नहीं चाहता। (113) "ऐसी प्रेमा भक्ति को पाकर मनुष्य कामना रहित हो जाता है। उसके लिए न द्वेष भावना, न शोक भावना होती है। किसी भी चीज़ की ओर आकर्षित नहीं होता, किसी के प्रति उत्साही बनकर नहीं रहता। उसे पाकर भगवद्ध्यान में स्तब्ध बनकर रहता है, आत्मा में रस कर रहता है। यह भक्ति त्याग के कारण (विषय वांछाओं के त्याग के कारण उत्पन्न हुई है इसीलिए कामना रहित है।

परम प्रेमाभक्ति निष्काम है। आलवारों की भक्ति में किसी भी प्रकार की लौकिक कामना नहीं है। न तो वे संपदा की कामना करते न कि वैभव की। उनकी एक मात्र चाह भगवद्मिलन। इस भवसागर से पार करना।(114) अर्थात् उनका दृढ विश्वास है भक्ति ही सांसारिक बंधन को पार करानेवाला साधन।

5.8. भक्ति में समदर्शिता:-

पूर्ण भक्ति में भक्त किसी के प्रति अनुराग (या) द्वेष नहीं रखता। (115) पंडित लोग तो सभी को समान दृष्टि से देखते हैं। किसी के प्रति द्वेष भावना नहीं।(116) अर्थात् इस पूरे जगत में अपने आराध्य को ही वे देख पाते हैं। उनके रूप का दर्शन प्रत्येक सृष्टि में प्राप्त करके सुखी होते है। उन्हें किसी के प्रति राग (या) द्वेष नहीं। सभी जन समान है क्योंकि उस प्रियतम आराध्य के अंश है।

हिंदी के कृष्ण काव्य एवं तमिल आलवार पाशुरों में 'भक्ति में समदर्शता'

हिंदी के सारे कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों की भक्ति विशद प्रेम के धरातल पर आधारित है। उनके अनुसार भक्ति करने के लिए जाति-पॉति जैसे भेदभाव नहीं। इसीलिए आलवारों में सभी वर्ण के लोग मौजूद है। पेरियालवार

कहते हैं(117) "भगवान से भक्ति करने के लिए, उनके दिव्यनामों के स्मरण करने के लिए जातिगत भेदभाव नहीं। नम्मालवार तो जगत् के घट घट में सर्व प्राणों में सर्व व्यापी भगवान का दर्शन कर लेते है। (118) यह उनके द्वेष रहित भक्ति का उदाहरण है।

5.9. भक्ति में शांति है भक्ति में परमानंद है:–

पूर्ण भक्ति शांत रूपा है। जब मन की एकाग्रता से इन्द्रिय निग्रह से भगवान का ध्यान किया जाता है, तब शांत रूपा भक्ति का उद्भव होता है।(119) यह शांति से पूर्ण है। भक्ति इसीलिए शांत रूपा है क्योंकि उसमें द्वेष नहीं होता है। गर्व नहीं होता है। इस में सभी प्राणियों को सम दृष्टि से देखने का भाव आ जाता है।(120) क्योंकि भक्त के लिए न कोई मित्र है न काई शत्रु। भक्ति के अंतर्गत दार्शनिकता, आत्म–ग्लानि, आत्म निवेदन, आत्म–प्रबोध आदि आते है। शांत रस का भाव निर्वेद है याने वैराग्य। इस लौकिक संसार को नश्वर मानकर परमात्मा की ओर भक्त हृदय आकृष्ट होता है तब अनायास से शांति से पूर्ण भक्ति फूटकर निकलती है।

"हिन्दी के कृष्ण काव्य और तमिल आलवार पाशुरों में 'शांता एवं परमानंदा भक्ति':–

हिन्दी के प्रमुख कवि सूर संसार को नश्वर मानकर अपनी शांति से पूर्ण भक्ति भावना को प्रकट किया है। इस संसार को "सपना" से तुलना करके सूर कहते है कि मन श्री कृष्ण (मुरारि) के चरण को छोड़कर किसी भी के प्रति आकृष्ट नहीं होता। (121) इस संसार की मिथ्या मानकर सूर वर्णन करते है। (122)

तमिल कवि तिरुवल्लूवर इस नश्वर जगत को संबोधित करके कहते हैं, "हमें नहीं मालूम कि अगले मिनट हम जीवित रहेंगे या नहीं। लेकिन हम शत सहस्र प्रणालियों से संतुष्ट नहीं है।(123)

आलवारों ने भी इस जगत को नश्वर मानकर निर्वेद भाव से अपनी शांति से पूर्ण भक्ति भावना को प्रकट किया है। कुलशेखरालवार ने अपनी रचना "पेरुमाल तिरुमोलि" में अपनी शांति स्वरूपा भक्ति को यथेष्ट रूप से प्रकट किया है।

भगवान के प्रति रखी गयी प्रेम भक्ति में डूबा कुलशेखर आलवार के मन दुनियाँ के किसी प्रकार के सुख–भोगों में नहीं रमा है। उनका कहना है "नारी सुख के पीछे पागल हुए लोगों के साथ मेरा सांगत्य नहीं है। सिर्फ तुम्हारे परम प्रेम में रम गया हूँ। दुनिया में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी विषय को लेकर पागल हो जाते हैं। सभी की दृष्टि में मैं भी पागल हूँ। हरि, रंगनाथ नामों से तुम्हें पुकार पुकार कर मैं तुम्हारे ध्यान में पागल हो गया हूँ।

भक्त कवि का मन भक्ति की तन्मयता के कारण अपनी परिस्थितियों को भूलकर भगवान की शरण में बलि बलि हो जाता है। भक्त भगवान से उनके घनिष्ट संबंध के कारण उनके ध्यान में, उनकी सोच में, नाम स्मरण में उनकी लीलाओं व महिमाओं पर मुग्ध हो जाता है और उनकी स्मृति में उन्माद हो जाता है। भक्त कुलशेखर आलवार की स्थिति भी वहीं है। यह भावोद्गारों से पूर्ण पराभक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। "खाने के लिए पीने के लिए इस लौकिक संसार के लोगों से मैं मिलना नहीं चाहता। लोक के स्वामि, पूतना का वध किये प्रेमस्वरूप श्री कृष्ण तुम्हारी भक्ति में मैं पागल हो गया हूँ। (124) लगभग दस पाशुरों में कवि ने अपने वैराग्य भाव से पूर्ण भक्ति को प्रकट किया है।(125) नम्मालवार अपनी रचना "तिरुवाय मोलि" में अपनी आत्मा को भगवान कृष्ण की शरण्या में जाने का उपदेश देते है। सभी को त्यागकर आशाओं को छोडकर भगवान की शरण में जाने का उपदेश देते हैं। (126) भगवान श्री कृष्ण की करुण भावना का वर्णन करते हुए नम्मालवार अपनी रचना तिरुवाय मोलि में इस प्रकार कहते हैं "हे कृष्ण। तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं, ऐसे कहने पर भी मैं कपटी हूँ।

इस नश्वर संसार में फँस गया हूँ। आँसू बहाते हुए मेरे प्राण को शरीर से अलग नहीं कर सका। यह संसार बंधन काटकर हे नारायण। मेरा उद्धार करो (127) तिरुवायमोलि़ पूर्ण रूप से शांत एवं करुण रस से पूर्ण रचना है जहाँ कवि नम्मालवार पग पग पर भगवान श्रीकृष्ण के ध्यान मे डूबे रहते है। (128)

भक्त अलौकिक आनंद प्राप्त करके इहलोक सुख से परे रहने के कारण उसकी भक्ति परमानंद रूपा भी है।(129) जिस प्रकार केतकी पुष्प में सुगंध व्याप्त है, उसी प्रकार भक्तों के हृदयवासी विष्णु और उनकी शक्ति की पहचान परम आनंद से पूर्ण अश्रुओं से होती है, शरीर की पुलकित भावना से होता है। यहीं परमानंद भक्ति का उदाहरण है।

भगवान के दिव्य दर्शन आत्मा में पाने के बाद भक्त जो अव्यक्त आनंद प्राप्त कर लेता है, वह अवर्णनीय है, असंप्रेषित है जिसका अनुभव ही किया जाता है न कि वर्णन। वह गूँगे के गुड के समान है। इसीलिए भक्ति को परमानंद स्वरूपा एवं शांत स्वरूपा कहते है। निर्गुणवादियों ने भी इसे स्वीकार किया है। निर्गुण वादियों का यह परमानंद स्वरूप (या) ब्रह्मानंद पर आधारित है। क्योंकि उनका ईश्वर निराकार हो जबकि सगुण कवियों ने भगवान की लीलाओं का वर्णन करके उसे सभी को कर्णामृत, नयनामृत बनाया है। इसीलिए सगुण भक्ति जन सुलभ बन गयी। सगुण भक्तों ने अपने आराध्य की शारीरिक चेष्टाओं पर, मुग्ध मनोहरी मूर्ति पर, लीलाओं पर मुग्ध होकर परमानंद स्वरूपा भक्ति का प्रचार किया है। इसमें भक्त अपने प्रियतम भगवान की प्रत्येक चेष्टा पर आकृष्ट होकर उस परमानंद का आस्वादन कर लेता है।

कृष्ण काव्य में चित्रित यशोदा इस शांत स्वरूपा एवं परमानंद स्वरूपा भक्ति की अधिकारिणी है। गायों को चरानेवाले श्री कृष्ण व गायों के साथ शाम की वेला में वापस आते है तब बालक श्री कृष्ण के रूप सौंदर्य पर शोभा पर यशोदा रीझ जाती है। आनंद से उसका रोम रोम पुलकित होता है, वह अपने आनंद को हर

एक गोपी से व्यक्त करके प्रसन्न हो जाती है। (130) कुलशेखरालवार तो अटूट अचंचल भक्ति के साथ भगवान के गुणगान को सदा स्मरण करते हुए उन्माद की अवस्था को पहुँच जाते है। उस स्थिति में जहाँ वे है, और उनका अलौकिक मात्र आराध्य है।

अष्ठछाप के कवि परमानंददास भक्ति के आनंद का आस्वादन करते हुए कहते है "हरिनाम लेने में आनंद है जो संसार रूपी सागर से हमें पार कराता है। कवि कहते है श्री कृष्ण का नाम कलियुग की मलिनता को दूर करनेवाला कामधेनु जैसे है। (131) परमानंद स्वरूपा भक्ति में भक्त अपने आराध्य का सदा स्मरण करते हुए मन विह्वल होकर अपनी दुनियाँ में भ्रमण करते हैं। कुलशेखर आलवार का कहना है "आँखों में अंश्रु बहाते हुए, रोमांचित होकर, भगवद्ध्यान करते हुए हाथ जोडते हुए, नाचते हुए, प्रभु कीर्तन गाते हुए अपने आराध्य के भक्तों का दास बनकर तुम्हारी भक्ति में मैं पागल हो गया हूँ। (132) कुलशेखर की भक्ति शांतरूपा है। क्योंकि शांतभाव का रस है करुणा। कुलशेखरालवार ने श्री कृष्ण की याद में विलाप करनेवाली देवकी के माध्यम से अपनी शांत रूपा भक्ति को प्रकट किया है। (133) श्रीकृष्ण के नेत्र सौंदर्य एवं दिव्यरूप के दर्शन करने के बाद कवि तोंडरडिप्पोडि आलवार किसी भी प्रकार के लौकिक आनंद को आस्वाद करना नहीं चाहते। (134) श्रीकृष्ण के नेत्र सौंदर्य पर तोडरडिटपोडि आलवार बलि बलि हो जाते है। उस आनंदानुभूति में उन्हें किसी भी लौकिक आनंद त्याज्य है।

5.10. भक्ति अमृत स्वरूपा है:–

भक्ति की तुलना अमृत से की गयी क्योंकि अमृत पीने से लोग मृत्युंजय हो जाते है। उसी प्रकार पूर्णभक्ति प्राप्त करने से मनुष्य अलौकिक आनंद प्राप्त करता है। (135)

हिन्दी के कृष्ण काव्य और तमिल आलवार पाशुरों में अमृत स्वरूपा भक्तिः

हिन्दी के प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि सूर ने कृष्ण भक्ति की तुलना अमृत से की है (136) अष्ठछाप के अन्य कवियों ने भी कृष्णभक्ति को सुधारस से संबोधन किया। तमिल आलवारों में प्रसिद्ध नम्मालवार अपने आराय के प्रति रखी गयी भक्ति भावना की तुलना अमृत रस से करके उसे आनंद के साथ आस्वादित करके कहते है "इस जगत् की सृष्टिकर्ता मेरे पिता। प्रलयकाल में लोकों को बचाये मेरे स्वामि। सज्जन भक्त लोग तुम्हारे चरणारविंद को शिरोधार्य करते है। हृदय में प्लावित भक्ति के कारण द्रवीभूत होकर तुम्हारी भक्ति रूपी मधु पीते रहते हैं। अतिशय आनंद (प्रेमा भक्ति के कारण) अमृत सागर में डूबे रहते है। मूर्ख जन ही संपादाओं के पीछे पडे रहते है। ज्ञानी सदा वैभव से, शक्ति से पूर्ण आदि अंत रहित, त्रिलोकनाथ तेरी भक्ति के सिवा कुछ नहीं चाहते। भक्ति में जो मधुरता है यह परमानंद अमृत स्वरूपा है। (137) भक्ति को पूर्ण रूप से आस्वादित करके उसे भक्त अमृत से तुलना करते है। अमरत्व प्रदान करनेवाला अमृत से भक्ति की तुलना करने के आशय के पीडे यही उद्धेश्य रहा है कि भक्ति अलौकिक आनंद प्रदायिनी है। उसके स्वाद का वर्णन करना असंभव है। उसी प्रकार श्री कृष्ण प्रेम मधुर है। इसका प्रत्येक अंग मधुर है। (138) इसीलिए कृष्ण भक्ति मधुर रस से पूर्ण होकर माधुर्यानुभूति को प्रदान करती है।

नम्मालवार अपनी रचना "तिरुवासिरियम" में भक्ति रस की तुलना अमृत से करते है। (139) आगे नम्मालवार कृष्ण मिलन में प्राप्त अनुभूति को नायिका के माध्यम से अपने पाशुरों प्राप्त करते है। (140) कृष्ण भक्ति की महिमा गाते हुए आलवार कहते हैं कि – अगर कीर्तन गाना है तो केशव के गुणगान गाना, अगर भक्ति रखना है तो कृष्ण पर भक्ति रखना बोलना है तो कृष्ण लीलाएँ गाना।(141) इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों के लिए भक्ति अमृत स्वरूपा है।

<u>निष्कर्ष</u> :–

इस प्रकार भगवान के प्रति भक्त द्वारा रखा गया अव्यक्त अटूट अनुराग ही भक्ति है उस में शांति है, प्रेम है, अमृत जैसी मधुरता है, परवशता है। जब भगवान के कीर्तिगान भक्त तन्मयता से गाते हैं, तब भगवान भक्तों के मध्य नाचते है। कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति में एक अनुपर रस है। वह जन सुलभ है, लेकिन उसे पाने के लिए "पराभक्ति" याने पवित्र प्रेम से पूर्ण भक्ति की आवश्यकता है। तिरुमलिचै आलवार का कहना है कि ज्ञानी बनना है तो के कृष्ण द्वारा प्रदत्त गीता पढनी है।

हिन्दी कृष्ण भक्त कवि और आलवारों की रचनाओं में प्रेमाभक्ति स्पष्ट रूप से दीखती है। अपने आराध्य पर रखे गये प्रेम में, समर्पण में, अनन्यता में दोनों भाषा के कवि तल्लीन होकर अपने हृदय से उभरनेवाले भावोद्‌गारों को प्रकट किये है वह सराहनीय है। इनकी भक्ति भावना में किसी भी प्रकार की आडंबर भावना नहीं, कर्मकाण्ड पर या कट्टरवादी संप्रदाय के सिद्धान्त नहीं बल्कि पवित्र प्रेम की धारा ही बहती है। दोनों द्वारा वर्णित विभिन्न भक्ति के स्वरूपों को देखकर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुॅच सकते है।

⇒1. हिन्दी कृष्ण कवि और आलवार भक्त दोनों कृष्ण के परमप्रेमी है औ कृष्णप्रेम में के पागल है।

⇒2. विरह वर्णन में आलवार कृष्ण भक्त कवियों से भी एक कदम आगे है। आलवार द्वारा प्रकटि विरह–वेदना लौकिक स्तर से अलौकिक स्तर का है। उसमें परमात्मा से मिलने की तीव्र विरहानुभूति में हिन्दी के निर्गुण सन्तों द्वारा वर्णित विरह–वर्णन से साम्य ज्यादा दीखते है।

⟹3. हिन्दी के कृष्ण कवियों ने विशेष रूप से पुष्टि–सम्प्रदाय से दीक्षा पाकर सिद्धान्तों का पालन करते हुए श्रीमद् भागवत के आधार पर अपना वर्णन प्रस्तुत किया है। आलवारों द्वारा वर्णित कथा भी कृष्ण कथा है। लेकिन आलवारों ने खास संप्रदाय से दीक्षा नहीं ली। उनका ध्येय यहीं था विष्णु महिमा गाना। श्रीवैष्णव बनकर जीवन बिताना।

⟹4. कृष्ण प्रेम को हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने नंद के रूप में यशोदा द्वारा गोप–गोपियों द्वारा प्रकट किया है तो आलवार संतों ने इनके अलावा नायिका की माँ याने गोपी की माँ के द्वारा भी प्रकट करवाया है। यह साहित्य की एक विशेष प्रवृत्ति है। आलवारों ने कृष्ण प्रेम में पागल हुई अपनी बेटी के प्रति एक माँ (गोपी की माँ) के माध्यम से कृष्ण की हाव–भाव चेष्टाएँ सुन्दरता रमणीयता को दर्शाया है।

⟹5. "पल्लाण्डु" गीत पेरिय आलवार साहित्य की अत्युत्तम विशेषता है। पेरियालवार सर्वशक्तिमान ईश्वर को अपने गीतों के माध्यम से कई करोड सहस्र, शत वर्ष जीने का आशीर्वाद देते है। इसके पीछे कवि का उद्देश्य यहीं रहा होगा कि जगद्रक्षक की महिमा गान सदा इस जगत में लोग करते रहें। उनकी महिमाएँ दिन–ब–दिन बढती जाएँ।

जहाँ तक वात्सल्य वर्णन का प्रसंग है सारे कृष्ण भक्त कवियों ने यशोदा के माध्यम से वर्णन किया है जब कि आलवारों ने यशोदा के साथ–साथ देवकी को भी आलंबन बनाया है। यह आलवार पाशुरों की ही अपनी विशेषता है जहाँ देवकी श्रीकृष्ण की मुग्धहारी नटखटी चेष्ठाओं को देखने के लिए तरसती है। तडपती है। अपने को कोसती है और यशोदा को बड़भागी समझती है। आलवारों ने देवकी द्वारा चित्रित वात्सल्य वर्णन में करुणा एवं शान्त रसों का समावेश किया

इसमें एक अद्भुत अनुपम रस है। इस प्रकार दोनों की कृष्ण भक्ति में एक अनुपम अकथनीय मधुर रस है वहीं कृष्णभक्ति रस है।

⇒6. आलवारों की भक्ति में खासकर कुलशेखर आलवार की भक्ति में भावाद्गाथें से पूर्ण प्रेमा भक्ति है, जो हिंदी कृष्ण भक्त कवि रसखान की भक्ति से साम्य रखती है। तिरुमल पर्वत में कुलशेखर आलवार पौधा बनकर रहना चाहते है। आलवार भक्ति में एक खास परवशता है वह सराहनीय है।

इस प्रकार हिन्दी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवारों ने भक्ति की तन्मयता में जिन अनुभूतियों को प्राप्त किया उन सबमें भक्ति रस का प्रवाह, भक्ति के सिद्धान्त, भक्ति की विभिन्न पद्धतियाँ अनायास से आ गयी। स्वानुभव ही इनकी भक्ति भावना का प्रमुख आधार है। सबकी वाणी में अपने उपास्य के अलौकिक मुग्धहारी रूप सौंदर्य लीलाएँ महिमाएँमिलती है। पूर्ण रूप से भक्ति रस से ओत प्रोत है। इस प्रकार उनके गीत हित अनुभूतियों के जीवन प्रमाण है।

संदर्भ

1. "पार् आरुम काणामे परवै मा
    नेंडुम कडले आन कालम्
आरानुम अवनुडैय निरुवयट्टिल
    नेंडुम कालम किडन्ततु उल्लतु
ओराद उणर्विलीर। उण्उरुदिरेल्
    उलहु अलन्द उम्बर कोमान्
पेरालन् पेरान पेर्हल
    आयिरङ्गलुमे षेशीहले।"
दिव्य प्रबंधम् (हिंदी अनुवाद) तिरुमंगै आलवार, चतुर्थ छंद 2007, पृ. 236

2. "वलैन्दिट्ट विल्लालि वल् वाल् एप्पट्ट
    मलै पोलु अवुणन उडल वल् उहिराल्
अलैन्दिट्टवन काण्मिन् इत्टु आय्च्चियराल्
    अलै वेण्णयुम् उण्डु आप्पुण्डु इरुन्दवने।"

दिव्य प्रबंधम् (हिंदी अनुवाद) तिरुमंगै आलवार, चतुर्थ छंद 2007, पृ. 236

3. नालायिर दिव्य प्रबंधम् : पृ. 43–48, पेरियालवार तिरुमोलि, पाशुर 23–43

4. तिरुच्छंद वृत्तम् तिरुमैलिचै आलवार – पाशुर 752, ना.दि.प्र. 321

5. – वही – पाशुर 755–757, ना.दि.प्र. पृ 321

6. मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेव शर्मा, पद 2, पृ 167

    (1) मीरा सुधा सिंधु – स्वामी आनंद स्वरूप, पद 5, पृ. 511

7. **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्
भगवद्गीता – अध्याय 4, श्लोक 7, 8

8. गीत गोविंदम्, प्रथम अष्टपदी श्लोक – 5

9. सूरसागर

    (1) हरि! तुम हरो जन की भी
    द्रौपदी की लाज राख्यो तुम बढ़ायो चीर।
    ....
    दास मीरा लाल गिरिधर दुःख जहाँ तहँ पीर।

    मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेव शर्मा – पृ. 232

10. मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेव शर्मा – पृ. 166, पद सं. 2

11. पेरियालवार तिरुमोलि –, पाशुर 22, 34, 44, 52, ना.दि.प्र.

12. पतक मुदलै वायपट्ट कलिरु
कदरि कैकूप्यि एण कण्णा, कण्णा, एण्ण
उदवपुलुर्लूदु अंगं उरुतुयरतीरतं
अदकन वन्दु अप्पूच्चि काट्टुकिण्राण् अम्मणे
– पेरियालवार तिरुमोलि – पाशुर 126

13. तिरुप्पावै – तूमणिमाडत्तु पाशुर 482

14. अण्रु इव्वलकम अलंदाय अडि पोट्रि
चेण्रंगत्तोन्नलकै चेट्राय तिरल पोट्रि
पोण्रें चकडम उदैत्तीय पकल पोट्रि
कण्रुकुणिला एरिन्द्राय केंलल पोट्रि
कण्रु कडैया एडुत्ताय गुणम पोट्रि
वेण्रु पेंगै केडक्कंम निणकैयिल वल पोट्रि
एण्रेण्रुम उनै सैवकमे ऐत्ति परैकोलवाने
इण्रु याम् इरंगेलो रेवाताय। – तिरुप्पावै – पाशुर 497

15. तिरुमंगै आलवार – पाशूर 1165, नालायिर दिव्य प्रबन्धम्

16. – वही – पाशुर 1165, नालायिर दिव्य प्रबन्धम् – पृ. 224

17. नालायिर दिव्य प्रबन्धम् – पाशुर – 224

18. नालायिर दिव्य प्रबन्धम् – पाशुर – 25, पृ. 43

19. नालायिर दिव्य प्रबन्धम् – पाशुर – 26

20. नालायिर दिव्य प्रबन्धम् – पृ. 333, पाशुर – 794,

21. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ.शिवकुमार शर्मा, पृ. 245

22. गौणी त्रिधा, गुणभेदाद् आर्तादिभेदाद् वा। – नारद भक्ति सूत्र – 56

23. भगवद्गीता – श्लोक 16

24. गुणमाहात्म्यासक्ति – रूपासक्ति – पूजासक्ति – स्मरणासक्ति
दास्यासक्ति – वात्सल्यासक्ति – कान्तासक्ति – आत्म निवेदनासक्ति
तन्मयतासक्ति – परमविरहासक्ति – रूपा एकधा अपि एकादशधा भवति–
– नारद भक्ति सूत्र – 82

25. नाच्चियार तिरुमोलि – पाशुर 597–606, ना.दि.प्र. पृ. 225

26. एण्बु उरुकि इणवेल नेडुंकण्कल्
इमै पोरुंदा परनाळुम्
तुण्ब कडलबुक्कु वैकुन्दन एण्बदु ओर।
तोणि पोरादु उल्लकिण्पेण।
अण्बु उडैयारै पिरिवु उरु नोयदु
पोणपुरै मेनि करुल कोडि उडै
पुण्यनै वर कूवाय – कुयिरपाट्टु– पाशुर 548, नाच्चियार तिरुमोलि, पृ. 247

27. तिरुमण कनवे उरैत्तल – नाच्चियार तिरुमोलि – आण्डाल (ना.दि.प्र.)

28. तिरुमण कनवे उरैत्तल – नाच्चियार तिरुमोलि – आण्डाल (ना.दि.प्र)
पाशुर 556–656, पृ. 248–252

29. कर्पूरम् नारुमो? कमलप्पू नारुमो?
तिरुपवल चेव्वायुदान तित्तिक्कुमो?
मरुप्पु ओचित्त माधवन तन
वायसुवैयुम नाट्रमुम्
विरुप्पुट्टु केट्किण्रेण् चोल आलि वेण्चंगे? – पाशुर 567, पृ. 252

30. उण्णोडु उडने ओरु कडनिल वालवारै
इण्णार इणियार एण्रु एण्णुवार इल्लैकाण
मण्णागि निपर मधुसूदनन् वायमुदम्
पण्णालुम उण्किग्राथ पाँच जन्यमें। – पाशुर 571, पृ 255

31. मेघविडुदूतु – पाशुर 578, ना.दि.प्र.

32. नाणि इणि ओरुकरुमम् इल्लै ....
नाच्चियार तिरुमोलि – पाशुर 618, ना.दि.प्र. पृ. 268

33. अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम्, नारद भक्ति सूत्र चतुर्थ अध्याय – श्लोक 51,

34. मूकास्वादनावत, नारद भक्ति सूत्र चतुर्थ अध्याय – श्लोक 52

35. गुणरहितं कामनारहितं, प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्
–नारद भक्ति सूत्र चतुर्थ अध्याय – श्लोक 54

36. भक्ति रसामृत सिंधु – श्री रूपगोस्वामी प्र सामान्य भक्ति लहरी,
श्लोक–23 जो – हिंदी भक्ति रसामृत सिन्धु– पृ. 13 से उद्धृत है।

37. भागवत 11.3.32

38. तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति, (तदेव भाषयति), तदेव चिन्तयति।

– नारद भक्ति सूत्र – 55,

(1) लाली मेरेलाल की जित दूखूँ तितलाल
लाली देखन मैं गयी मैं भी होगयी लाल – कबीरदास

(2) यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजा ति स भूमाश
यत्रान्यत्पश्यत्यर्न्यच्छृणोत्यन्त द्विजानाति तद पम् यो वै भूमा
तदमृमतय यदल्पं तन्मर्त्यम्
– छान्दोग्योपनिषद् – 7/24/1

39. सूरसागर – पद संख्या 341

40. परमानंददास पदसंग्रह से पद संख्या 110 जो अष्टछाप और
वल्लभ संप्रदाय – डॉ.दीन दयाल से उद्धृत है।

(1) मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै – सूरसागर

41. मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेव शर्मा – पृ. 185

42. पेरुमाल़ तिरुमोलि़ – कुलशेखर आल़वार, पाशुर 670–676, ना.दि.प्र. 286

43. तिरुमालै–तोंडरडिप्पोडि आलवार – पाशुर 880

44. नालायिर दिव्य प्रबंधम्, पृ 1429–1453

45. नालायिर दिव्य प्रबंधम्, पृ 1449–1453

46. तिरुक्कुरल : अधिकार अब्बिन् वलि़यदु उयिर निलै एण्बुत्तेल पोरत्तु उडंबु
अःदिलारक्कु

(1) जो घट प्रेम न संचरै सो घट मसान समान – कबीरदास

47. तिरुक्कुरल : अण्बिरक्कुम उण्डो अडैक्कुंताल़ आरवलर पुणं कण्जीर पूसल

48. False are thick when love is thin.

49. 'पत्रं पुष्पं, फलं तोयं योमें भक्तया प्रयछवि
तदहम .... मष्नामि प्रियतात्मना
नित्य कान्त भजनात्मकं प्रेम कार्य प्रेमैव कार्य – भगवद्गीता – अध्याय 9,
श्लोक – 26

50. अर्था तो भक्ति जिज्ञासा सा परानुरक्तिरीश्वरे – शा.भा.सू. 2

51. त्रिरुप भड्.ग पूर्वकं नित्यदास्य (स)

52. सा परानुरक्तिरीश्वर – शा.भा.सू. 2

53. माई हौं अपने गोपालहिं गाऊ
सुन्दर स्याम कमलदल लोचन देखि देखि सुखपाऊँ
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो जो जोगी ते जोग
कर्मठ हाेंय ते हर्म विचारो जे भोगी ते भोग
अपने अंसि की सुरति तजी है मांगिलियो संसार
परमानंद गोकुल मथुरा में उपज्यो यहै विचार। – परमानंद दास

54. सूरसागर – दशम स्कंध – पृ. 595

55. प्रेमवाटिका – रसखान – पृ. 2

56. बिनु जोबन गुन रूप धन, बिन स्वास्थ हित जानि।
सुद्ध कामना ते रहित प्रेम सकल रसखानि। – रसखान, प्रेमवाटिक, 27

57. ओण्पदाम तिरुमोलि (नौवी तिरुमोलि) – पेरियालवार – पाशुर 209
केशवने। इंगे पोदराये किल्लेणेण्णंदु इंगे पोदराये
नेचमिलादार कन्निरुन्दु, नी विलैयाड़ादे पोदरावे
इण्णाम चोल्लुम तोलत्तैमावरूम, तोण्डरूम निचर विडत्तिल निण्रु
ताय चोल्लुकालवादु तण्मम् कण्डाय, दामोदरा। इंगे पोदराये।

58. मेरो गोपाल तनक सौ कहा करि जानै दधि की चोरी
हाथ नचावत गावत ग्वारिन जीभ करै किन थोडी
कब सीकै चढि माखन खायौ, कब दिध मटकी फोरी
अंगुरी करि कबहूँ नहि चाखत घर की भरी कमोरी
– सूरसागर, पद सं. 611

59. कहन लगी अब बिढि–बढि बात – सूरसागर पद 673

60. इरण्डाम तिरुमोलि – पेरियालवार पाशुर 234 से 243 तक
"कुडैयुं सेरुप्पुं कोडादे दामोदरनै नाण
उडैयुं कडियन ऊण्रु वेंपर्कलुडै
कडिय वेंकाणिडै कालड़ि नोव कण्रिन्पिन
कोडियेन यन पिल्लैययै पोक्किणैन् एल्ले पावमे – 242

61. तिरुच्चन्दवृत्तम् पाशुर 827, नालायिर दिव्य प्रबंधम्

62. नाण्मुकन तिरुवन्तादि – तिरुमालिचै आलवार – पाशुर 2465
– ना.दि. प्रबंधम्, पृ 923

63. तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति, तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति
— नारद भक्ति सूत्र, 55

64. गजेन्द्रमोक्ष घटना – श्रीमद्भागवत – श्री बम्मेर पोतना (तेलुगु)

65. मुकुन्दमाला – कुलशेखर आलवार – श्लोक 29

66. अन्याश्रयाण त्यागै नन्यता, ना.भ.सू. 10
Unification means the abandonment of all other support.

67. तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता – ना.भ.सू. 9

68. सूरसागर – प्रथम स्कंध

69. अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेवच।
प्रार्थना कार्यमात्रे पि ततो न्यत्र विवर्जयेत्
अविश्वासों ने कर्तव्यः सर्वथा बालकस्तु सः
ब्रह्मास्त्रचातकी भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः
विवक धर्माश्रय, षोड़श ग्रंथ, भट्ट रमानाथशर्मा – पृ. 65 जो अष्टछाप और
वल्लभ संप्रदाय – डॉ.दीनदयालु गुप्त से उद्धृत है।

70. प्रीति तो एकहि टौर भली।
इहब कहामति चरन कमल तजि फिरै जु चली चली
सदा विचार विषय रस त्यागी जस गावत मधुबानी
बहुत देवी तहुत ते देवा कौन कौन भलो मनाऊँ
हो अधीन श्याम सुंदर के जनम करम पावन जस गाउँ।
हौ बलिहारी दास परमानंद करुना सागर काहे न भाव।
– परमानंद दास पद संग्रेह से पद संख्या 289
"कायेनवाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयात्मना वा प्रकतुस्वाभवेत
करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणनेति समर्पयेत्त

71. माई गिरिधर के गुन गाऊँ
मेरे तो व्रत एही है निसि टिन और न रुचि उपजाऊँ
खेलन आँगन आड लाड़िले नेकहु दरसनु पाऊँ
कुम्भनदास हिलग के कारन लालच लगि रहाऊँ
– कुंभनदास पद संगेह से पद संख्या 5

72. एकहि आँक जौ गोपाल
अब यह तन जाने नहिं सखि और दूसरी चाल
माता पिता पति बंधु वेदविधि तजैसबै जंजाल
चतुर्भुजदास अटल भए परसी गिरिधर लाल
—चतुर्भुजदास पद संग्रह से पद संख्या 56

73. तिरुमोलि़ – पेरियाल्वार पाशुर 453, ना.दि.प्र. पृ. 205

74. वलैत्तुवैत्तेन इनि पोक लोट्टेण तणिन्दिदरडालुगलाल मण्राम तिरुमोलि उनक्कु पणि .... मूण्राम तिरुमोलि़ पाशुर 454, 455, पृ. 205

75. तिरुमालै – तोंडरडिप्पोड़ि आलवार पाशुर – 880, 881, 882, ना.दि.प्र. पृ. 357

76. मुदल तिरुवन्दादि – पोयगै आलवार पाशुर – 2111,2112, 2113, पृ. 810

(1) पाशुर 2111

सांसारिक बंधन से मुक्त होकर, निर्मल मन से ज्ञानी बनकर यह जान लिया कि मेरा मन तुलसीमाला से शोभित श्रीकृष्ण के चरणारविंद में लग गया। जिस प्रकार बछडाा गायों की झुंड में अपनी माँ को पहचानकर दौड़ता है, उसी प्रकार मेरा मन श्रीकृष्ण के पास दौड लिया।

(2) – वही – पाशुर 2112, 2113

77. तिरुमंगै आलवार पाशुर 1742, 1743
हे श्रीकृष्ण। माँ, बाप, बंधु लोगों को चाहूँगा नहीं। तुम्हारे सिवा किसी और के पास लगाव नहीं। इसीलिए मैंने तुम्हें पाया। 'यह मेरा है' ऐसा दृढ़ निर्णय लेकर तुम मेरा उद्धार करो। – पाशुर 1742 – तिरुक्कुरु तांडकम् (एकाश्रयग्रहण)

78. भक्ति में अनन्यता–नाण्मुकन् तिरुवन्दादि – तिरुमलिचै आलवार पाशुर 2432, 2434, 2436, 2437

79. भगवद्गीता अध्याय 12 श्लोक 6, 7
तु सर्वाणि कर्माणि, यिसन्दस्य मत्पाराः
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासहे
तेषा महं समृद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्
भवामि न चिरात्परार्थ : मथ्याकेशित चेतसामं।

80. अनन्याश्न्तिपन्तोमा ये जनार्धस्यते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। – भगवत् गीता – अध्याय 9

श्लोक – 22

(1) मन्मनाभाव मद्भक्हो मद्याजी मा नमस्कु
मा में वैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽनि मे
सर्व धर्मापरित्यज्य मा मेकं शरणं व्रज
अहं त्वा सवपापेश्यो मोक्षयिष्यामि माशुच
– गीता – अध्याय 9, श्लोक 34

81. विष्णु सहस्रनामः फलनिरूपण अंतिम स्तोत्र–भगवान (भीष्म–युधिष्ठिर संवाद) एकादश स्कंध – 11.2.36

82. नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलेतिच – ना.भ.सू. 19
Narada is of the opinion that the essential characteristict kof Bhakthi are the consecreation of all activities, by complete self-surrender to him, and extreme angiurla. If he were self to be forgotten.

(1) शांडिल्य भक्ति सूत्र 44, पृ. 103
सम्मान, बहुमान, प्रीति, विरह, संदेह, गुणगान की प्रशंसा सब कुछ उनको समर्पित है। जीवन उनके लिए जीना, सब कुछ उसके लिए, समस्त जगत् में उसका दर्शन पाना, उनके अनुसार जीना आदि समर्पण के अंतर्गत आते हैं।

83. नैच्यानुसंधानः उस परम पावन भगवान के सामने अपने को 'नीच' मानकर भक्त कवि अनुसंधान याने उपासना करते है। – 'नैच्यानुसंधान' में भक्त अपने द्वारा किये गये अपराधों को स्वीकारते हुए पापविमोचन के लिए भगवान की शरण में जाते है।

84. पांचरात्र विष्वक्सेन संहिता, सानाउक, कल्याण अगस्त सन् 1940ई. उद्धृत पृ. 60

85. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय – डॉ.दीनदयालुगुप्त – पृ. 670–671

86. प्रभु मेरे गुण अवगुण न विचारो कीजै लाज शरण आये की रविसुतत्रास निवारो मोह समुद्र सूर बूडा है लीजै भुजा पसारि – सूर सागर प्रथम स्कंध

87. परमानंद दास पद संग्रह – पद संख्या 58

88. पेरियालवार तिरुमोऴि पाशुर 258, 260, 262

89. पेरियालवार तिरुमोऴि पाशुर 434, 435

90. पेरियालवार तिरुमोऴि पाशुर 436

91. पेरियालवार तिरुमोऴि पाशुर 460 'एत्तणै कालमुम ....

92. नाणमुकण तिरुवन्दादि – तिरुमलिचै आलवार पाशुर 2388

(1) कलनैन निन्नुतप्प अन्युलनु कन्पिंप नीयके कृष्णा
–कृष्णमंजरी द्विपदा (तेलुगु) – तरिगोंड वेंगमांबा।

93. सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तै :

भगवानेव भजतीयः – ना.भ.सूत्र 79

94. सूर – विनय पदावली , पृ. 24, संपादक प्रभु दयाल मीतल

95. आगे कृष्ण, पीछे कृष्ण, इत कृष्ण, उत कृष्ण
जित देखें तित कृष्ण ही मई री
छीतस्वामी गिरिधारी छवि अंग अंग उईरी
छीत स्वामी पद संग्रह – पद संख्या 42

(1) काक्कै चिरगिनिले नंदलाला
उदन करिय निरं तोण्रुदय्या नंदलाला – सुब्रह्मण्य भारती

(2) तिरुच्चंदवृत्तम – तिरुमलिचै आलवार – पाशुर 754, 777

96. सुजान रसखान – रसखान पद 21

97. मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै तब उठि जाऊँ, भारे गये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै साई पहिरूँ, जो दे सोइ खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण विग पल न रहाऊँ।
जना बैठावें तित ही बैठूँ बेचे तो बिक जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बार–बार बलि जाऊँ।
–मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेव शर्मा – पृ. 185, पद 20

98. पोरुलाल अमर अलकंबुक्कु इयलाल आकादु
अरुलाल अरम् अरुलुम् अण्रे, अरुलाले
मा मरयोरुक्कु ईन्द मणिवण्णन पाद में
नी मरवेल नेजे निर्ण
–इरण्डाम तिरुवन्तादि – भूदत्तू आल़वार पाशुर सं. 2222
ना.दि.प्र. पृ. 845

99.. अण्रु इव्वुलकम् अलन्द असवेक्कोल
तिण्रु इरुन्दु वेलुक्कै नील नगरवाय् अण्रु
किटन्दानै केडुयिल चीरानै मुण
कंजैक्कडन्याणै, नेंजम – काण्
– पेयालवार – मूण्राम तिरुवन्दादि।

100. एण्रुम् मरंदरियेन एल़पिरप्पुम् एप्पोल़दुम्
निण्रु निणैप्पु ओलि़या नीमैयाल वेण्रि
अडल अलि़क्कोण्ड अरिवणे–इण्बक्कडल
आलि़ नी अरुल सेय –
– इरण्डाम तिरुवन्दादि, भूदत्तु आल़वार – पाशुर 2236, ना.दि.प्र. पृ. 848

101. एण्रुम मरन्दरियेन् एण नेजत्तै वैत्तु
तिण्रुम् इरुन्दम नेडुमालै एण्रुम्
ति‌रु इरुन्द मारबन् श्रीधरनुक्कु आलाय
करु इरुन्द नाल मुदलाक्काप्पु
—नाणमुकण तिरुवन्दादि – तिरुमऴिचै आलवार —पाशुर – 2473, ना.दि.प्र. पृ. 925

(1) तिरुमलिचै आलवार – पाशुर 2474, पृ. 925

(2). कलनैन निन्नुतप्प अन्युलनु कन्पिपं नीयके कृष्णा।
– कृष्ण मंजरी, द्विपदा – वेंगमांबा

102. दिन मणि मण्डल मण्डल भवमण्डन ए।
मुनिमानसहंस जय जय देव हरे।।

(1). कालिय विषर्धरगञ्जन जनरंजन ए।

(2) यदुकुल नलिन दिनेश जय जय देव हरे।
– गीतगोविंद – पृ. 24, द्वितीय अष्टपदी – 293

103. "तोयक्त तयिर, वेण्णेय पालुडन
एत्ति वल़त्तुमु नेजमे – पेरुमाल तिरुमोलि – कुलशेखर आलवार
पाशुर 661, ना.दि.प्र. पृ. 287

104. 'अण्रु इव्वुलकम् अलदाय अडि पोट्रि
....
इण्रु याम् वन्दोम इ.गं एलोर एबांवाय।'
—तिरुप्पावै – पाशुर 497, आण्डाल, ना.दि.प्र. पृ. 225

105. तिरुपल्लाण्डु – पेरियालवार पाशुर – 1–12

106. एट्टाम तिरुमोली – पेरियालवार पाशुर – 192–201
कान्ह को दृष्टि दोष से बचानेवाला काप्पिडल प्रसंग

107. भक्तियोगविलक्कम – स्वामिविवेकानंद (तमिल) व्याख्याकार श्रीमद्स्वामि चिद्भवानंद

108. सूरसागर सप्तम स्कंध – बे:प्रे: पृ. 59

109. तुम तजि कौन नृपति पै जाऊँ
तुम कमला पति त्रिभुवन नाइक बिसंबर जाकौ नाऊँ
सुर तरु कामधेनु चिंतामनि सकल भुवन जाकौ ठाऊँ
तुम ते को दाता को समरथ जाके दिये अजाऊँ
परमानंद हरि सागर तजि के नदी सरन कत जाऊँ।
– परमानंदसागर – पदसंग्रह पद सं. 225

110. मेरो माई माधो सो मन यान्यो।

....

परमानन्ददास को ठाकुर, है पहियो पहिचान्यो
— परमानंद सागर पद सं. 352

(1) स्त्री धन नास्तिक वैरि चरित्रं न श्रवणीयम — ना.भा.सू. 63
(2) अभिमान दम्भादिकं त्याज्यम् — ना.भ.सू. 64
(3) तदर्पिता खिलाचार : सन् काम क्रोधाभिनादिकं
तस्मिन्नेव करणीयम् — ना भ.सूत्र 65

111. तिरुमोलि — पेरियालवार पाशुर 436

112. चिट्रम् सिरु कालै वन्दुण्णै — सेवित्रोम् — तिरुप्पावै, आण्डाल

113. यत् प्राप्य न किंचिंत वान्छिति, नशोचति, न द्वेष्टि न रमते, नोत्साही भक्ति पू यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धे भवति, आत्मारामो भवति — ना.भ.सूत्र 6

114. तिरुच्चंदवृत्तम् — पाशुर 859, 849

115. सम्शत्रौच मित्रौच तथा मानाभिमान
शीतोष्ण सुखदुः खेषु : .... गीता — अध्याय 12, श्लोक 18, 19

116. विद्या विनय संपन्नं ब्रह्मेणन गविहसि
शुन कैश्चेक पाकस्य पंडित समदृष्टिन —गीता — अध्याय 5, श्लोक 18

117. पेरियालवार — पाशुर 5, पृ. 37
(1) नास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वेषी न च मत्सरः — ना.भा.सू.

118. तिरुवायमोळि — नम्मालवार पाशुर 3154—3164 तक, ना.दि.प्र. पृ. 1153
(1) सर्वभूतस्थमात्मानाम् सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तान्मा सर्वत्र समदर्शनः — गीता — अध्याय 6, श्लोक 29

119. ना.दि.प्र. पाशुर 878, 879

120. शान्ति रूपात् परमानंद रूपाय — ना.भ.सू. 60

121. सकल तजि भजि मन चरण मुरारि
श्रृति स्मृति अरु मुनि जन भाषत है, मैं हूँ कहत पुकरि।
जैसे स्वप्ने सोइ देखियत तैसे यह संसार
जात विलैहे छिनक भावमें अछरत नैन किवार।
बारै सबार कहत मैं तोसों जन्म न जुवा हारि।
पाछे भई सु भई सूरजन अजहूँ समुझि संभारि।
—सूरसागर द्वितीय स्कंध, बे.प्रे. पृ. 38

122. मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है देह कहो क्यों हरि बिसराया।
तुम जाने बिन जीव सब उत्पत्ति प्रलयसमाहिं
शरण मोहि प्रभु राखिये चरण कमल की छाहिं – सूरसागर – दशमस्कंध

123. नेरुनल अलन् ओरुवन इण्रु इल्लौ एण्णुम
पेरुमैं उडैत्तु इण्वुलगु – तिरुवल्लुवर

(1) पानी केरा बुद बुदा अस मानुस जात।
देखत ही छिप जायेगा ज्यों तारा परभात।। – कबीरदास

124. उण्डिये उडैये उगन्दु ओडुम्–कुलशेखर आलवार
....
उण्डवायन् दान उन्मत्तन् कणिमने ।।
– पेरुमाल तिरुमोऴि पाशुर 671, ना.दि.प्र. पृ. 291

125. पेरुमाल तिरुमोऴि पाशुर 668 से 683 तक, ना.दि.प्र. पृ. 291–293

126. तिरुवाय मोऴि – नम्मालवार पाशुर 2899–2920, ना.दि.प्र. पृ. 1069

127. नम्मालवार – तिरुवायमोऴि पाशुर 3344, ना.दि. प्र. पृ. 1217

(1) समः सर्वेशु भूतेषु स शांतः प्रचितों रसः।।
–भक्ति रसामृतसिन्धु पश्चिम विभाग लहरी 1, पृ 325

128. – वही – पाशुर 3341–3351

129. अन्तः स्वं केतकी पुष्पं गन्धेमैव हि विद्यते।
तथैव विष्णु सान्निध्यं बाष्परोमात्र्च लक्षणात् – श्लोक 8
The fragrance of the Ketaki flower speaks of the flower hidden inside in the same way the holy presence of Lord Vishnu inside the hearts of of the devotees, is brought out by the symptoms of Bhakthi like tears of joys flowing and hairs standing on end.
– श्री वैष्णव संहिता – श्रीकृष्ण प्रेमी महाप्रभु

(1) ना.भ.सूत्र 68, पंचमोध्याय – पृ. 19
कण्ठावरोधरोमात्र्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति
कुलानि पृथ्वीं च।

130. नालायिर दिव्य प्रबंधम् – पृ. 123, मूग्राम तिरुमोलि – पेरियालवार पाशुर 244

131. प्रात संगैं डठि हरिनाम लीजै आनंद सो सुख में दिन जाई
चक्रपानि करुना का सागर ध्रिन विनासन जादों राई।
कलिमल हरन तरन भवसागर भकत चिन्तामनि कामधेनु
ऐसो सुलेस नाम कृष्ण को बन्दनीक पावन पदरेनु
....
भगत बछल ऐसो नाम कलद्रूम वरदायक परमानंददास
– परमानंददास पद संग्रह पद संख्या 35

132. इरण्डाम तिरुमोलि – कुलशेखर आलवार पाशुर 666, 665, 671, 676
(1) ना.भ.सूत्र, 55
तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति (तदेव भावयति)
तदेव चिन्तयति – चतुर्थोऽध्याय – पृ. 15

133. एलाम तिरुमोलि – कुलशेखर आलवार पाशुर 708–718

134. तिरुमालै–तोंडरडिप्पोडि आलवार पाशुर 889

135. अमृत स्वरुपा च – ना.भा.सू. 2

136. सुआ चलु वावन को रसुलीजै
जा वन कृष्ण नाम–अमरिन रस स्रवन पात्र भरि पीजै।।
को तेरो पुत्र पिता तू काकौ, मिथ्या भ्रम जग करो।
कालमंजार लै जैहै तोको, तू कहै 'मेरो–मेरो'।।
हरि नाना रस मुक्ति–छेत्र चलु तोकों हो दिखराऊँ।
– सूरसागर 340,

हिंदी काव्य में कृष्ण–चरित का भावात्मक स्वरूप – विकास

137. उलगु पडैत्तु उण्ड एन्दै अरे कलल
चुडर पूतामरै चूडुदर्कु अबाबु
आरुचिर उरुकि उक्क नेरिय
कादल अणिल इण्डु ईन् तेरल
अमुद बेल्लताण आम चिरप्पु बिट्टु
ओरु पोरुट्कु असैवोर असैक
तिरुवोडु मरुविय
इयकै माया पेरुवियल अलकम्
कोलवदु एण्णुमो तेल्लियारे कुरिप्पे।
– नम्मालवार – तिरुवासिरियम् पाशुर – 2579, ना.दि.प्र. पृ. 953

(1) शांडिल्य भक्ति सूत्र – 73

138. अधरं मधुरम्
वदनं मधुरम्
नयनं मधुरं हसितं मधुरम्
हृदयं मधुरं गमनं मधुरम्
मधुराधिपते रखिलं मधुरम् – मधुराष्टकम् – श्रीवल्लभाचार्य सत्चिरदर्शन से
– श्रीमधुराष्टकम् पृ. 74

139. तिरुवासिरियम् पाशुर 2579, ना.दि.प्र. पृ. 953

140. तिरुवायमोलि नम्मालवार – ना.दि.प्र. पृ. 1185–1189

141. तिरुवाय्मोलि पाशुर 3381–3391, ना.दि.प्र. पृ.1249–1253

(1) कमलाक्षु नर्चिंचु करमुले करमुले
श्रीनाथु वर्णिंचु जिह्व जिह्व
– श्रीमद् आन्ध्र महाभागवतम् – पोतना (तेलुगु)

(कमलाक्ष की अर्चना करनेवाले हाथ ही हाथ है श्रीनाथ के वर्णन करनेवाली जीभ ही जीभ है।)

अध्याय – चार

अध्याय – चार

हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार काव्य में चित्रित भक्ति के विविध रूप

प्रस्तावना

1. भगवद्‌गीता में वर्णित भक्ति के विविध रूप (गुणों के आधार पर)
   - 1.1. आर्त
   - 1.2. अर्थार्थी
   - 1.3. जिज्ञासु
   - 1.4. ज्ञानी
2. भागवत् में वर्णित भक्ति के विविध रूप (गुणों के अनुसार)
   - 2.1. तामस भक्त
   - 2.2. राजस भक्त
   - 2.3. सात्विक भक्त
3. आलंबन के आधार पर भक्ति के विविध रूप
   - 3.1. निर्गुण भक्ति
   - 3.2. सगुण भक्ति
4. साधन भेद के आधार पर भक्ति के विविध रूप
   - 4.1. वैधी भक्ति
   - 4.2. रागानुगाभक्ति
5. स्तर की दृष्टि से भक्ति के विविध रूप
   - 5.1. गौणी भक्ति
   - 5.2. पराभक्ति
6. नारद एवं शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में भक्ति के विविध रूप

7. नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित एकादश भक्ति या पराभक्ति के भेद

7.1. गुणमाहात्म्यासक्ति

7.2. रूपासक्ति

7.3. पूजासक्ति

7.4. स्मरणासक्ति

7.5. दास्यासक्ति

7.6. सख्यासक्ति

7.7. वात्सल्यासक्ति

7.8. कांतासक्ति

7.9. आत्मनिवेदनासक्ति

7.10. तन्मयतासक्ति

7.11. परमविरहासक्ति

8. हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार पाशुरों में 'नवधाभक्ति'

8.1. श्रवण

8.2. कीर्तन

8.3. स्मरण

8.4. पदसेवन

8.5. वंदन

8.6. अर्चन

8.7. दास्य

8.8. सख्य

8.9. आत्मनिवेदन

निष्कर्ष

अध्याय – चार

हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार काव्य में चित्रित भक्ति के विविध रूप

प्रस्तावना :

भक्त अपने प्रियतम आराध्य के बारे में सोच–सोचकर भक्ति की परवशता में, तन्मयता में अपने उपास्य के गुणगान करते हुए उनकी लीलाएँ गाता है, वहीं भक्ति साहित्य का आधार है। भक्त उस अलौकिक पुरुष की महिमाओं को खुद पहचानकर अपनी अनुभूतियों को वाणी देकर उस भगवान के सामने तन्मयता से भजन, कीर्तन, स्मरण करके अपनी भक्ति भावना को प्रकट करता है। अपने हृदय से याने अंतराल से उत्पन्न हुई अकथनीय, अवर्णनीय भावानुभूतियों को असीम भक्ति से गाता है और भगवान की प्रत्येक छवि पर बलि बलि हो जाता है। भगवान के प्रति दिखानेवाली श्रद्धा से पूर्ण प्रेम ही भक्ति है। भगवद् विषयक चित्त वृत्ति भी भक्ति कही जाती है।(1) व्यक्तियों के भावों के अनुसार भक्ति भी होती है। प्रत्येक व्यक्ति अलग4 अलग कामनाओं के साथ ईश्वरोपासना करता है। कोई भगवान से धन चाहता है, कोई किसी कार्य की सिद्धि चाहता है, कोई शांति चाहता है। लेकिन जो व्यक्ति भगवान से पूर्ण प्रेमा भक्ति रखता है, उसका अनुराग व्याज रहित है। भक्ति के सिवा वह भगवान से कुछ भी नहीं चाहता। भगवद् भक्ति की प्राप्ति ही उसके लिए परमानंददायक है। उसकी भक्ति निष्काम रहती है। उसकी भक्ति में भगवान से किसी भी प्रकार की कामना नहीं।

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवारों ने अपने उपसाय को सर्वशक्तिमान मानते हुए अपने को उनके सामने दास मानकर जो भक्ति दिखाई, उस भक्ति भाव में अनायास से भक्तिशास्त्र ग्रंथों में वर्णित भक्ति के विविध पक्षों का समावेश हुआ है। इन कवियों ने अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने भक्ति काव्य

रचे नहीं बल्कि इनके द्वारा वर्णित अनुभव करनेवाली भक्तिभावनाओं के बाद भक्त शास्त्र का निर्माण हुआ। जिसमें इनके द्वारा वर्णित भक्ति भावनाओं को शास्त्रीय धरातल पर विभाजित करके जन सुलभ अनुष्ठानस योग्य बनाने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार हिंदी भक्ति साहित्य के सारे कवि एवं तमिल के कृष्णभक्त कवि इस अध्याय में दोनों साहित्यकारों द्वारा वर्णित भक्ति के विभिन्न रूपों का वर्णन भक्तिशास्त्रों में वर्णित भक्ति के विविध पक्षों के संदर्भ में किया गया है। दोनों के द्वारा चित्रित विभिन्न प्रकार की भक्ति पद्धतियों काा सविस्तार से, सोदाहरण के साथ प्रस्तुत किया जाता है। भक्ति के विविध रूपों पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न भक्ति संबंधी ग्रंथों में वर्णित विभिनन भक्ति के रूपों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इनके द्वारा प्रकट की गयी भक्ति भावनाओं को शास्त्रीय विवेचन करने का भी प्रयास किया गया है।

1. भगवद्गीता में वर्णित भक्ति के विविध रूप :

भगवद्गीता में चार प्रकार की भक्ति के बारे में बताया गया है।(2) भगवान श्रीकृष्ण का कहना है "चार प्रकार के भक्त मेरी उपासना करते हैं। 1. आर्त, 2. अर्थार्थी, 3. जिज्ञासु तथा 4. ज्ञानी।

(1) आर्त :

जो दुःख विमोचन के लिए भगवान की पूजा करते हैं – द्रौपदी, गजेन्द्र आर्त भक्त है।

(2) अर्थार्थी :

सांसारिक सुख जैसे ऐश्वर्य, अधिकार, कीर्ति चाहनेवाला। ध्रुव अर्थार्थी है।

(3) जिज्ञासु :

ज्ञान के लिए भगवान की पूजा करनेवाला।

(4) ज्ञानी :

साधना सिद्धि प्राप्त जीवन्मुक्त। प्रह्लाद, नारद, विभीषण, व्यास, शुक्र, भीष्म आदि। इन भक्तों में ज्ञानी ही परम श्रेष्ठ है क्योंकि वह निष्काम है। उसकी भक्ति अनन्य एवं प्रेमाभक्ति है। (3)

2. भागवत् में वर्णित भक्ति के विविध रूप (गुणों के अनुसार) :

भागवत में भक्ति के नौ भेद बताये गये हैं, जिसे नवधा भक्ति की संज्ञा दी गयी है। भगवान के गुण, लीला, नामादि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण भगवान के चरणों की सेवा, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन। (4)

भागवत के तृतीय स्कंध में कपिमुनि देवहृति से भक्तों के गुणों के अनुसार उत्पन्न होनेवाली भक्ति की व्याख्या करते हैं। (5)

(1) तामस भक्त :

हिंसा, दंभ, गर्व, मात्सर्य के भाव रखकर भगवान पर भक्ति करनेवाले।

(2) राजस भक्त :

विषय, यश, ऐश्वर्य की कामना से भगवान पर भक्ति करनेवाले।

(3) सात्विक भक्त :

पापों के दूर करने के लिए परमात्मा को सब कुछ अर्पण करके भक्ति करनेवाले।

भक्ति के इन भेदों को निम्नलिखित आचारों पर विभाजित किया गया है।(6)

(3) आलंबन के आधार पर :

1. निर्गुण भक्ति। 2. सगुण भक्ति।

3.1. निर्गुण भक्ति :

निर्गुण भक्ति में परमात्मा निर्गुण, निराकार अलौकिक परब्रह्म है। मूर्ति पूजा, तीर्थाटन के विरोधी निर्गुण भक्त है।

3. 2. सगुण भक्ति :

भगवान के सुन्दर मूर्तिमान रूप की कल्पना करके अंग–प्रत्यंग की शोभा का वर्णन करके करनेवाली भक्ति।

4. साधन – भेद के आधार पर भक्ति के विविध रूप :

1. वैधी भक्ति, 2. रागानुगाभक्ति।

4.1. वैधी भक्ति कर्मप्रधान एवं शास्त्रानुगा है।

4.2. रागानुगा भक्ति : भाव प्रधान भक्ति है। रागानुगाभक्ति के भी दो प्रकार हैं :

1. कामानुगा, 2. संबंधानुगा

5. स्तर की दृष्टि से भक्ति के विविध रूप :

भक्ति के स्तर भेद से भक्ति दो प्रकार की हैं। 1. गौणी भक्ति (या) अपरा भक्ति, 2. पराभक्ति। (7)

नारद एवं शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में गौणी एवं पराभक्ति की प्रधानता दी गयी है। इन ग्रंथों में भक्ति को प्रेम स्वरूप कहा गया है। भक्त के लिए भक्ति ही काम्य है।

भक्तिर्भगवतो सेवा भक्तिः प्रेम स्वरूपिणी।
भक्तिरानंदरूपा च भक्तिःभक्तस्य जीवनम्।।

6. नारद एवं शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में वर्णित भक्ति के विविध रूप :

नारद भक्ति सूत्रों में पराभक्ति के महत्व एवं स्वरूप के बारे में वर्णन मिलता है। पराभक्ति के लिए अधिक महत्व दिया गया है। पराभक्ति भगवान पर रखने वाली प्रेमपूर्ण भक्ति है। पराभक्ति निष्काम भक्ति है, परमानंद स्वरूपा है, शांत स्वरूपा है।

कृष्णभक्ति साहित्य में पराभक्ति के लिए सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया गया है। कृष्णभक्तों के लिए विधि–निषेध, आचार–अनुष्ठान, जाति–पाँति आदि का भेदभाव नहीं। वह पवित्र कृष्ण प्रेम पर आधारित भक्ति है, इसीलिए परमानंद स्वरूपा है। कृष्ण भक्त कवि पवित्र कृष्ण प्रेम में डूबकर परवशता से अव्यक्त आनंद का आस्वादन करते हैं। शांडिल्य ने पराभक्ति के संबंध में कहा "सा परानुक्तिरीश्वर" कहा था। नारद भक्ति सूत्रों में भक्त को एकांत की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। (8)

7. नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित एकादश भक्ति (पराभक्ति)

नारद भक्ति सूत्रों में पराभक्ति के 11 भेद बताये गये हैं। पराभक्ति पवित्र प्रेम पर आधारित होने के कारण वह परम प्रेम स्वरूपा है, अमृत स्वरूपा है, निष्काम रूपा है।

पराभक्ति के भेद :

नारद भक्ति सूत्रों में पराभक्ति के निम्न लिखित भेद हैं। (9)

1. गुण माहात्म्यासक्ति, 2. रूपासक्ति, 3. पूजासक्ति, 4.स्मरणासक्ति, 5. दास्यासक्ति, 6. सख्यासक्ति, 7. वात्सल्यासक्ति, 8. कान्तासक्ति, 9. आत्मनिवेदनासक्ति, 10. तन्मयासक्ति, 11. परमविरहासक्ति।

इन सभी पराभक्ति के भेदों को हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल आलवारों के साहित्य में पूर्णरूप से देखने को मिलते हैं।

7.1 गुण माहात्म्यासक्ति

गुण माहात्म्यासक्ति के अन्तर्गत भगवान के गुण एवं महिमा के वर्णन आते हैं। सारे कृष्ण भक्त कवि श्रीकृष्ण के गुण एवं महिमा गाने में आसक्त होकर वर्णन किये हैं। उन्हें एक अलौकिक पुरुष के रूप में देखकर, उनके द्वारा उद्धार किये गये दीनों का, पापियों का नाम लेकर, अपने उद्धार करने की प्रार्थना करते है। सारे कृष्णभक्त कवियों का दृढ़विश्वास है कि उनके आराध्य श्रीकृष्ण भक्त वत्सल है, दीनोद्धारक है उनके द्वारा असंभव कार्य भी संभव है। हिंदी कृष्णभक्त कवियों के पदों में गुणमाहात्म्यासक्ति पूर्ण रूप से व्यक्त हुई है।

सूरदास ने अपनी गुणमाहात्म्यासक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है।

नेकु गुपालै मोको दौरी
देखों कमल वदन नीके करि ता पाछेतू कनियाँ लैरी।
अतिकोमल कर चरण सरोरूह अधर दशन नासा सौहैरी।
लटकन शीश कंठमजि भ्राजत मन्मथ कोहि वारन गैरी।
वासन निशा विचारित हौं सखि यह सुख कबहूँ न पायो मैं री।
निगमन धन सनकादिक सर्वसु भाग्य बड़े पायो तै री।
जाको रूप जगत के लोचन कोटि चन्द्र रविलाजत भैरी।
सूरदास बलिनाम यशोदा गोपिन प्राण पूतना बैरी। (10)

मीरा श्रीकृष्ण को 'जगदीश' स्वीकारती है।

"आप तो सांच छा जी जगदीश
आप तो बड़ा हो जगदीश, दर्शन देवी विसवीस।
सनमुख जो गरुड़जी विराज्या, भक्ति देवो ने जगदीश।

बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरिचरण म्हारी सीस। (11)

मीरा के अनुसार उनके आराध्य प्रियतम श्रीकृष्ण दैत्यों के नाशक, द्रौपदी की इज्जत बचाकर उसकी रक्षा करनेवाला है। (12) मीरा श्रीकृष्ण के दया गुण गाती हुई उनके द्वारा उद्धार किये गये विभिन्न प्रकार के उद्धार कार्यों का उल्लेख करती है।(13)

सभी आलवारों ने भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं को, महिमाओं को, अव्याज अनुराग से पूर्ण दया गुण का यत्र–तत्र वर्णन किया है।

माधुर्योपासिका आण्डाल कहती है 'हे कान्ह। एक ही रात में देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लेकर उसी रात में यशोदा का लाड़ला बन गया। इसे जानकर कंस ने तुम्हारे लिए हानियाँ पहुँचाने की लाखों कोशिश की। उन सब को सर्वनाश करके उनके पेट की आग बन गया। हमारे कष्ट निवारण के लिए तुम्हारे गुणगान करती हूँ। मनोकामना पूर्ण करोगे तो, हम लक्ष्मी सहित तुम्हारे वैभव का गुण गान करेंगे। (14) तिरुमंगैआलवार तो अपने आराध्य को सर्वशक्तिमान के रूप में स्वीकरते हैं। भूदत्तु आलवार भगवान श्रीकृष्ण के गुणगान, इसप्रकार गाते हैं – वामन के रूप में तीन लोकों का आक्रमण किया है। सिंह के रूप में हिरण्य कश्यप को अपने नाखूनों से चीरकर संहार किया है। प्रलयकाल में सारे ब्रह्माण्ड को अपने उदर में रखकर रक्षा की है। सप्तलोक एवं अनंत को भी माप सकते है, लेकिन तुम्हारी कीर्ति का वर्णन करना मुश्किल है।(15) आगे श्रीकृष्ण की

महिमाओं को गाते हुए कहते हैं 'हे श्रीकृष्ण! रामावतार में तुम्हारे बाणों की शक्ति से लंका का सर्वनाश किया। लड़के के रूप में धोखा करके तुम्हें अपनायी पूतना का संहार तुमने किया। इन सब चेष्टाओं से यशोदा दिग्भ्रान्त हो गयी। (16)

भागवत में श्रीकृष्ण के गुणगान इस प्रकार मिलता है 'सर्वशक्तिमान, परमाराध्य सर्वज्ञ, सुदृढ़ व्रतवाले, समृद्धिमान, क्षमाशील, शरणागत रक्षक, सब भक्तों पर समदृष्टि रखनेवाले, सत्यभाषी, चतुर, सबके कल्याणकारी, प्रतापी, धार्मिक शास्त्र ही जिनके नेत्र स्वरूप हैं, इस प्रकार के भक्तों के परममित्र, दानशील, तेजस्वी, कृतज्ञ, कीर्तिशाली, श्रेष्ठ, बलवान, प्रेम से वशीभूत होनेवाले इत्यादि गुणों से युक्त श्रीकृष्ण चारों प्रकार के दास में (दासों के भी प्रीतिभक्ति रस में) आलंबन–विभाव होते है। (17) नंददास का कहना है "कलियुग में केवल केशव का नाम ही आधार है। सांसारिक विषयों में पड़कर न रहो। हरि का भजन करो। काम–कंचन से प्रेम त्यागकर, हरिनाम का ही भजन करना चाहिए। रे मन श्रीकृष्ण के गुण–चरित्र का ही गान प्रेमपूर्वक करो, छल–कपट को त्याग कर, ईश्वर का ही भजन करो, जो हरि का भजन नहीं करता वह तो गधा है।(18)

इस प्रकार कृष्णभक्ति साहित्य में अपने आराध्य के गुण एवं महिमा को आनंद के साथ गाते हैं। उनकी भक्ति में भगवान के गुण एवं महिमा को देखकर मुग्ध होते हैं।

7. 2. रूपासक्ति :

रूपसौंदर्य विधान सौंदर्यानुभूति का एक अंश है। सगुण भक्त कवि की मान्यता है कि भगवान की मूर्ति को मानकर उनका उपसाय करने से भक्ति जनसुलभ बन जायेगी। रूप की कल्पना से लोगों के मन में ईश्वर के प्रति एक प्रकार की विशेष भक्ति भावना उत्पन्न होगी जिससे भक्ति मार्ग आसान होगा।

सगुण भक्त कवियों द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण का रूप साँवला रूप हैं, जो अपने सिर पर मोर मुकुट धारण करके, मकराकृति कुण्डल से शोभीयमान रूप है। उनके नयन विकसित कमल जैसे विशाल एवं सुन्दर है और धुंधराले बाल से युक्त सिर है जो अत्यंत शोभित है। हृदय में श्रीवत्समणि और वैजयन्तीमाला शोभित है और हाथ में मुरली। श्रीकृष्ण वर्णन का मूल आधार संस्कृत के भागवत पुराण, विशेषतः दशम स्कंध। इसी के आधार पर दक्षिण के आलवार संतों एवं वल्लभ संप्रदाय तथा कतिपय संप्रदायों के कवियों ने श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवत में भीष्म पितामह के मुहँ से भगवान के रूप सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार मिलता है "त्रिभुवन सुंदर और तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण, सूर्य रश्मियों के समान उज्जवल पीतांबरधारी, अलकावली से आवृत मुख मण्डलवाले, सुन्दर रूपवाले अर्जुन सखा श्रीकृष्ण से मेरी निष्काम प्रीति हो। जिनका मुख कमल युद्ध में घोडों के खुर की धूलि से धूसरित और चंचल अलकावली एक पसीने की बूँदी से सुशोभित है तथा जिनकी त्वचा मेरे तीक्षण बाणों से बिंधी जा रही है, उन कवच सुशोभित कृष्ण में मेरा चित्त स्थिर हो। (19)

महाभारत में अलौकिक पुरुष श्रीकृष्ण के विश्वरूप का विस्तृत वर्णन मिलते हैं। (20) जो समस्त ब्रह्माण्ड से समा हुआ उगत रूप हैं। उसे देखने के बाद अर्जुन श्रीकृष्ण से विश्वरूप के उपसंहार की प्रार्थना करके सुन्दर उनके कृष्ण रूप देखने की कामना करते हैं। (21) सगुणभक्ति की विशेषता यह है कि उसमें रूपमाधुर्य एक अनिवार्य अंग है। नाम और रूप से ही वैधी भक्ति का आरंभ होता है।

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वणित रूपासक्ति :

सगुण भक्त को भगवान के नाम और रूप इतना मुग्ध कर लेते हैं कि लौकिक छवि उसके पथ में बाधक नहीं बन सकती है। सूरदास ने श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का अनुपम दृश्य खींचा है, वह अवर्णनीय है। (22)

मीरा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के दिव्य मंगल स्वरूप का संपूर्ण वर्णन करती है, जिन में उत्प्रेक्ष, उपमा आदि अलंकार अनायास से ही आ जाते हैं। मीरा का कहना है श्रीकृष्ण के मकराकृति कुंडलों पर पडे हुए अलको के प्रतिबिंब कपालों पर फैली हुई उनकी आभा इस प्रकार दिखाई देते हैं मानों मीनो का समूह सरोवर को त्याग कर मगर से मिलने के लिए आ गये हैं। श्रीकृष्ण की वक्रभृकुटियों से युक्त तिलक से शोभित भाल के सामने खंजन, भ्रमर, मीन और मृगशावक भी हार जाते हैं। (23)

आगे मीरा बाई कहती है कि –
बसौ मोरे नैननि में नंदलाल।
मोहनि मूरति, साँवरि सूरत नैना बने बिसाल।
मोर मकुट मकराकृति कुण्डल अरुण तिलक दिये भाल
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
मधर सुधामृत मुरली राजत उर वैजयन्ती माल
मीरा के प्रभु सन्तनु सुखदायी भक्त बछल गोपाल'
बालक श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का सुन्दर चित्रण सूर ने भी किया है।(24)

भक्त पेरियालवार श्रीकृष्ण के मुग्ध मनोहरी रूप पर बलि बलि हो जाते है और उनके रूपस्मरण करने में तन्मय होते हैं। पेरियालवार अपने आराध्य श्रीकृष्ण के शिशु रूप की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उनके अंग प्रत्यंग पर न्यौछावर हुए हैं। बालक कृष्ण द्वारा अंगूठी मुँह में रखने की सुन्दरता, उंगलियों की सुन्दरता पैरों के

लालित्य, जाँघों की सुन्दरता, पेट,कमर, नाभि, छाती, भुजाएँ, हाथ, ग्रीवा मुँह, मुख–सौंदर्य, आँखों के सौंदर्य, भौहें की सुन्दरता, पसीने से पूर्ण ललाट के सौंदर्य, कुण्डल की रमणीयता, वेणी की शोभा आदि कृष्ण के समस्त अंगों के रूप सौंदर्य का वर्णन पेरियालवार ने किया है। (25) नम्मालवार का भक्त हृदय प्रियतम भगवान के रूप के रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर उनके दर्शन के लिए तडपता रहता हैं। (26)

रसखान के कृष्ण सगुण सौंदर्य से पूर्ण श्रीकृष्ण हैं। ब्रजेश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्म के गुणात्मक विग्रह है। इनके रूप और गुण की कल्पना परम मनोहर है। उनका रूप मोहन है और गुण आनंद क्रीडा है। उनके रूप प्रेम हृदय में सदा बसाये रहता है। नयनों में बसा लेने पर वह उस मूर्त प्रेम की वारुणी को पीकर इतना बेसुध हो जाता है कि फिर आँखें भी नहीं खोलता है। (27)

हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों की तरह तेलुगु एवं तमिल के कृष्ण भक्त कवियों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को कोटि मन्मथाकार मानते हुए उनके अपार सौंदर्य पर मुग्ध हुए हैं। तेलुगु कवयित्री तरिगोंड वेंगमांबा अपने आराध्य श्रीकृष्ण के मुग्ध मनोहर रूप के प्रति अत्यंत आकृष्ट होकर कहती है "हे कृष्ण! सुवर्ण एवं रत्नों की आभा से जड़ित अपना मुकुट दिखाओ। हे कृष्ण! भड़कीले घुंघराले बालों से युक्त कोमल ललाट से शोभित अपना रूप दिखाओ। हे कृष्ण! प्रफुल्ल्ता की कान्ति से सुशोभित अपनी सुन्दर पलकें दिखाओं। हे कृष्ण! पूर्ण विकसित चंपक की कली जैसी सुन्दर लगनेवाली अपनी नाक दिखाओं। कुन्द जैसे अनुपम सुन्दर दाँत, बिंबफल की तरह लाल लाल सुन्दर लगनेवाले अपने अधर दिखाओं। हे कृष्ण! काली काली सुशोभित मूँछ से युक्त सुन्दर चुबुक दिखाओं। अपने सुन्दर शीशे जैसे गाल दिखाओं। हे कृष्ण! मकरकुण्डल से शोभित अपने मुख दिखाओं। हे कृष्ण! इन सभी चिह्नों के सौंदर्य से युक्त चंद्रबिंब जैसे अपने मुख दिखाओं। शंख, चक्र, गदा सहित अपने चतुर्भुज दिखाओ। कौस्तुभ मणिहार से शोभित अपने

सुन्दर कंठ, वैजयन्ती माला एवं श्रीवत्स से शोभित अपने वक्ष दिखाओं। हे कृष्ण! समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाले अपने सूक्ष्म उदर दिखाओं। हे कृष्ण! समस्त विश्व की कल्पना करनेवाले ब्रह्म के वासस्थल सुन्दर नाभि दिखाओ। हे कृष्ण! अतुलनीय मणिमेखलाओं से अलंकृत सिंह के समान सुन्दर अपने कमर दिखाओं। हे कृष्ण! पीताबंर से सुशोभित अपने सुन्दर जाँघ युग्म दिखाओं। सागर सुता लक्ष्मी के सुन्दर हाथों से दबानेवाले अपने पैरों को दिखाओं। हे कृष्ण! ब्रह्म, रुद्र आदि दिक्पालक द्वारा पूजित अपने सुन्दर चरण दिखाओं। (28)

सभी कृष्ण भक्त आलवारों ने श्रीकृष्ण की लुभानेवाली मूर्ति पर मुग्ध होकर बड़ी तन्मयता से श्रीकृष्ण के अंग प्रत्यंग का वर्णन सुरम्य रीति से किया है। आलवारों में प्रसिद्ध पेरियालवार अपनी रचना 'पेरियालवार तिरुमोलि' में श्रीकृष्ण के संपूर्ण शारीरिक सौंदर्य का वर्णन (सिर से लेकर पैर तक) 20 पाशुरों में किया है। पेरियालवार श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग की सुन्दरता पर बलि बलि हो जाते हैं।(29) तिरुप्पाणालवार तो श्रीकृष्ण के सौंदर्य को देखना आँखों का सौभाग्य मानते हैं। उनका कहना है "नीलमेघ श्यामल, गोकुल श्रीकृष्ण माखन चोर जिसने मेरे हृदय को आकर्षित किया है, जगत् के आदि पुरुष–श्रीरंग में स्थित अमृत स्वरूप को देखी आँखें किसी और को देखकर मोहित नहीं होती है। (30) अर्थात् श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य सम्मोहित करनेवाला है। उसे देखना आँखों का सौभाग्य है।

आलवारों में प्रथम त्रय आलवार (भूदत्तु आलवार पेयालवार, पोयगै आलवार) आदि ने जो भगवान का दिव्यदर्शन पाया उसका वर्णन इस प्रकार है – "वे नीलमेघश्यामल वर्णवाले, पीतांबरधारी, कौस्तुभ मणि से उनका कंठ शोभित था, श्रीवत्समणि वक्षस्थल में शोभित था। उनके नयन कमल जैसे सुंदर थे और मुख पूर्णचंद्र जैसा था। जगदीश्वर, लोकरक्षक, शंख चक्र गदा सहित शोभित होकन कोटि सूर्यों के प्रकाश के साथ विराजमान थे। उनके दर्शन करना आँखों के लिए

सौभाग्य था, वे करुणा के सागर थे। अनगिनत कनकांबरों से शोभित थे। ऐसे रूप सौंदर्य से युक्त गोविंद के दर्शन पाकर आलवार अतिशय आनंद में डूब गये। तब उन वैष्णवोत्तमों ने अटूट भक्ति से, तन्मयता से अनायास पाशुर गाये थे, वे ही प्रबंधम् बने गये। यह रूप स्मरण का उत्कृष्ट उदाहरण है जो वैष्णव संहिता में मिलते है। (31)

वृन्दावन में स्थित श्रीकृष्ण की दिव्य छवि की ओर देखकर माधुर्योपासिका आण्डाल उनके रूप सौंदर्य पर बलि बलि हो जाती है। 'काले घने बादलों से शीतलता प्राप्त लाल कमल जैसी आँखों वाले कृष्ण मेरे हृदय को चुराकर चला गया। मोतियों के चदरिया को तन पर ढक कर, छोटे हाथी की तरह भागकर पसीने सहित खेलनेवाले मोहन रूप श्रीकृष्ण को मैं ने वृन्दावन में देखा। (32) नाच्चियार तिरुमोलि में आण्डाल ने श्रीकृष्ण के अपार सौंदर्य के प्रति मुग्ध होकर उनकी शोभा की सुन्दरता का वर्णन करती है। (33) तिरुमंगै आलवार अपने माधुर्यभक्ति वर्णन के अन्तर्गत नायिका नायक श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर अपनी सखी के द्वारा रूपवर्णन प्रस्तुत किया है। "हे सखी! क्रोधित हाथी कुवलयापीट के दंतों को निकालकर फेंके श्रीकृष्ण वहीं है। नारियों के हृदय को लुभानेवाली सूरत उसकी ही है। मुझे नहीं मालूम, इनके नीरज नयन सौंदर्य को कैसा वर्णन करू? कंस को डराकर अपने चरणों से धंसे बैल है, देखनेवाले सब इनकी वन्दना करते हैं। काला पर्वत जैसे रंगवाले, इनके अतुलनीय सौंदर्य। वाह! मुझसे वर्णन किया नहीं जाता। (34) तिरुमंगै आलवार श्रीकृष्ण के अपार सौंदर्य को देखकर विस्मय से कह बैठते हैं कि श्रीकृष्ण का वर्णन करना उसके बस की बात नहीं। उनके वर्णन करने में वे असफल हो गये। जो देखा है उसे सिर्फ वह आनांदानुभूति से देखते ही रह जाते । उस परम सौंदर्य को वर्णन करना उसके लिए बहुत कठिन कार्य है। तिरुमंगै आलवार श्रीकृष्ण के अकथनीय

अवर्णनीय अनुपम सौंदर्य को देखकर सुधबुध खो बैठते हैं। (35) इस प्रकार रूपासक्ति श्रीकृष्णभक्त कवियों की भक्ति का अनिवार्य अंश है।

7. 3. पूजासक्ति :

भक्त अपने प्रियतम भगवान के प्रति अपनी विनय भक्ति भावना को व्यक्त करनेवाले साधनों में पूजा भी एक है। वैदिक भक्ति के अंतर्गत आनेवाली पद्धतियों में पूजा एक है। (36) पूजा भगवान में वर्णित 'नवधा भक्ति' के अंतर्गत भी आती है।

भगवान पर अत्यंत प्रेम के साथ फूल चढ़ाकर उनके नाम स्मरण करते हुए, निश्चित मन से उनकी मूर्ति को आरती एवं नैवेद्य चढ़ाना ये सब पूजाएँ ही है। भागवत में नवधाभक्ति के अंतर्गत भगवान के नाम का स्मरण, कीर्तन, पाद सेवन, अर्चना करना, वंदना करना, दास्यभक्ति संख्यभक्ति के साथ आत्मनिवेदन भक्ति भी आती हैं। (37) नवधा भक्ति के अंतर्गत आनेवाली अर्चना ही पूजा है, नवधा भक्ति के पाद सेवन, अर्चना और वंदना रूप संबंधी वैधी भक्ति के अंतर्गत आते हैं। दास्य, सख्य और आत्मा निवेदन संबंधी भाव रागात्मिक भक्ति से संबंधित हैं।

नारद भक्ति सूत्रों में पूजा की प्रधानता कहीं गयी है। नारद ने व्यास का उद्धेश्य उद्धृत करते हुए कहा है कि पूजा, भक्ति आदि में अनुराग (प्रेम) हैं।(38) भगवद्गीता में भी पूर्ण प्रेम से करनेवाली पूजा की महिमा का वर्णन कृष्ण करते हैं भक्त द्वारा दिया गया पत्र, पुष्, फल और पानी इनमें से किसी भी वस्तु को पूर्ण समर्पण भाव से भगवान को अर्पित करने से भगवान संतुष्ट हो जाते हैं। (39) भक्त को पूजा से तथा अर्चन, श्रवण, कीर्तन आदि साधनों से भगवान का भजन करना चाहिए। (40) श्रद्धा और आदर के साथ भगवान के स्वरूप की पूजा अर्चन–भक्ति कही जाती है।(41)

<u>पूजा के प्रकार</u> : पूजा दो प्रकार की हैं। 1. समूर्त पूजा, 2. अमूर्त पूजा।

<u>समूर्त पूजा</u> :

मूर्ति याने प्रतिमा की पूजा। वैदिक वाड़्मय में यह उपलब्ध नहीं होता। इसके मूल का अनुसंधान शुद्ध–द्राविडों में, बौद्धों में तथा वैदिक आर्यों में किया है। (42)

<u>अमूर्त पूजा</u> :

बिना प्रतिमा के अग्नि में आहुति के माध्यम से उपासना करना। ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञिक कर्मकांड आदि का वर्णन मिलते हैं।

सुनीत कुमार चेटर्जी के अनुसार पूजा मूलतः द्रविड़ी शब्द है।

पू = पुष्प (द्रविड़ी) ऽगे = ऽजे (तालव्यीकृत) ऽचे (तमिल–तेलुगु) – ऽगे (कन्नड़) = करना अतः पूजा–पुष्प कर्म हैं।

जार्ल कारपेंटर ने भी पूजा द्राविड़ी पुशु अवलेषन से सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। (43)

अमूर्त और समूर्त परंपराओं का समन्वय यजुर्वेद (44) के विष्णु रूप को देखने से और शतपथ ब्राह्मण (45) में विष्णु एवं यज्ञ का तादाम्य हुआ। बाद में विष्णु का पूजन एक प्रमुख देवता के रूप में (त्रिमूर्तियों में एक) हुआ। इस प्रकार अमूर्त और समूर्त परंपराओं का समन्वय हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है भगवान पर अटूट भक्ति रखकर पूर्ण समर्पण भाव के साथ फूल, दीप, धूप नैवेद्य चढ़ाकर उनकी उपासना करना ही पूजा है। इसके अंतर्गत अर्ध्य, आराधना, अर्चना आती है। कृष्ण भक्त कवियों ने समूर्त पूजा

पर ज्यादा बल दिया है क्योंकि उनके उपास्य भगवान मुग्ध मनोहरी मोहनाकार श्रीकृष्ण है।

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित पूजासक्ति :–

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल आलवारों ने अपने पदों में पूजासक्ति का वर्णन यत्र तत्र किया है। सूरदास ने अपनी रचना सूरसागर में अर्चन–भक्ति का उल्लेख किया है। (46) सूरदास अपने आराध्य की पूजा करके आरती उतारते हैं।(47)

वैष्णव संत आलवारों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की पूजा के महत्व को स्वीकार किया है। नम्मालवार भक्ति की परवशता में अपने दोनों हाथों को जोडकर भगवान की पूजा में आसक्ति दिखाते हैं। (48) 'नम्मालवार अपनी रचना तिरुवाय्मोलि में पूजा के महत्व को स्वीकारते हुए कहते हैं।

दु:खरहित भगवान की स्तुति करके उन्नति पाइये, जल से उनका अभिषेक करके धूप एवं फूल उन पर चढ़ाइए। (49)

"परिवदु इल ईशनै पाडि
विरिव मेवल उरूवीर
पिरिवगै इण्रि नलनीर तूय्
पूरिवदुम् पुर्ग पूवे।।

वन्दना भक्ति पर जोर देते हुए नम्मालवार कहते हैं "आदि अंत रहित असीम सद्‌गुणी भगवान विष्णु है। उसके प्रति भक्ति करने के लिए वन्दना भक्ति को अपनाइए। सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करके इच्छाओं को त्यागिये। उसके लिए उसका ध्यान ही एकमात्र सहाय है। (50)

नम्मालवार अपने अधिक पाशुरों में पूजा भक्ति पर जोर देते हें। (51) उन का कहना है कि दुःख नाशक भगवान की स्तुति कीजिए। पवित्रजल छिड़काकर धूप, फल चढ़ाइए। दिन–ब–दिन बढ़नेवाला पाप विष्णुभगवान के चरणारविंद की वन्दना करने मात्र से नाश हो जाता है। पवित्र आत्मा के साथ उसकी वन्दना कीजिए, हमारे कष्ट दूर हो जायेगा। जीवन समाप्ति की वेला में भी उनकी वन्दना कीजिए। पोयगै आलवार कहते हैं "नीलमेघश्यामल, सदा पास में बसनेवाला सहस्र नामों से शोभित लाल आंखवाला काल मेघ जैसे रंगवाले के सामने हाथ जोड़कर वन्दना करने से दुःख नहीं होता। नरक नहीं मिलता। जरा–सा कष्ट भी नहीं होता। (52)

माधुर्योपासिका आण्डाल की रचना "तिरुप्पावै" श्रीकृष्ण के गुणगान, स्तुति से पूर्ण रचना है। उनकी और एक रचना "नाच्चियारतिरुमोलि" में आण्डाल ने श्रीकृष्ण को पति के रूप में पाने के लिए कामदेव की पूजा करती है। उसमें वैदिक परंपरा के अनुसार वर्णित विधिवत पूजा को विस्तार से वर्णन किया है।(53)

इस प्रकार कृष्ण भक्ति साहित्य में पूजा के लिए एक विशिष्ट स्थान है। अपने प्रियतम आराध्य श्रीकृष्ण पर पत्र, पुष्प, जल, आरती चढ़ाकर उसके द्वारा अपने मन को भी समर्पित करना ही वास्तविक भक्ति है। पवित्र, पूर्ण भक्ति को प्रकट करने का एक मात्र साधन है "पूजा"। भगवान को अपने कार्यों के द्वारा तृप्त करनेवाली पद्धतियों में एक हैं "पूजा"।

7.4. स्मरणासक्ति

"स्मरण" का मतलब है नाम सदा रटना, उच्चारण करना। प्रभु के दिव्य नामों को सदा स्मरण करना।

भगवद् प्राप्ति याने मोक्ष के लिए भगवान के नाम का निरंतर स्मरण करना चाहिए। (54)

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि – "भक्त लोग जब अपने इष्टदेव के गुण और नाम का कीर्तन करते हैं तब उसका हृदय प्रेम रस में मग्न हो जाता है। वे विवश होकर उन्मुक्तों की तरह कभी रोते हैं, कभी हॅंसते हैं, कभी नाम का उच्चारण करते हुए गाते हें और नाचने लगते हैं। (55) स्मरण भक्ति का मुख्य लगाव मानसिक जगत से हैं। (56) भगवान के नाम, गुण, महिमा, लीलाओं आदि को सदा ध्यान रखकर उसकी याद में लीन रहना स्मरण भक्ति है। नाम स्मरण, रूप स्मरण, लीला स्मरण आदि स्मरण के अंतर्गत ही आते हैं। इन सबमें से श्रेष्ठ है भगवान के नाम स्मरण। भागवत के एकादश स्कंध में श्रीकृष्ण उद्धव से स्मरण की महिमा बताते है।(57) जो कोई विषय का चिन्तन किया करता है उसका मन विषय कर्मों में लीन रहता है और जो व्यक्ति निरन्तर मेरा स्मरण करता है उसका मन मुझ में लीन हो जाता है। (58) भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं "जो मनुष्य मुझ में अनन्य चित्त से लगकर सदा मुझे स्मरण करता है, मेरे मन में उस योगी केलिए मैं सुलभ प्राप्त हूँ। (59) हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल आलवारों ने स्मरणासक्ति भक्ति का प्रकट किया है।

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित स्मरणासक्ति :

कुलशेखर आलवार ने अपने पाशुरों में भगवान के स्मरण पर बल दिया है।(60) आलवार प्रतिदिन भक्त जनों के साथ अत्यंत चाह के साथ भगवान की महिमाओं को गाते हुए परमानंद से अतिशयता के कारण आंखों में अश्रुबहाते हुए भगवान के गुणगान करते हुए स्मरण करना चाहते है। और पूछते है विष्णु के अवतार श्रीरंगनाथ की स्तुति गाते हुए, नाचते हुए स्मरण करने का दिन कब आयेगा? (61) नम्मालवार तो स्मरणासक्ति को इस प्रकार प्रकट करते है 'हे

श्रीधर! नीरज नयन श्रीकृष्ण, तुम्हारे नाम को दिन रात स्मरण करते हुए परमानंद को प्राप्त करके मेरे चित्त में तुम्हें रख लूँगा। सदा तुम मेरे मन में रहनेवाले हो। आँखों में भरे अश्रु (अतिशय आनंद के कारण) के साथ मेरे नीरज नयन श्रीकृष्ण तुम्हारा स्मरण करूँगा।(62)

हरिस्मरण भक्ति के संबंध में सूरदास कहते हैं "सभी लोगों को हरि स्मरण करना चाहिए। नामस्मरण से सुख मिलता है। उनके स्मरण करते हुए उनके चरणों पर चित्त लगाओ। शत्रु–मित्र की बात हरि नहीं देखते जो उसका स्मरण करता है, सद्गति प्रदान करते हैं।"(63) सूर को हरि नाम स्मरण के बिना सुख नहीं। वह सैकड़ों में एक है। दिन–रात हरि–स्मरण करने को कहते है। नामस्मरण के संबंध में सैकड़ों पद सूर ने लिखा है। अष्टदाप के अन्य कवियों ने भी नामस्मरण पर जोर दिया है। परमानंददास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भजदास, छीत स्वामि, कृष्णदास आदि कवियों ने भी नामस्मरण की महत्ता को स्वीकार किया है। (64)

मीराबाई तो गोपाल का स्मरण करती हुई नाचती थी।

"पग घुँघुरू बांध मीरा नाचीरे।"

पेरियालवार का कहना है कि बच्चों के नामकरण भगवान के दिव्य नामों पर होने से उनको दास सदा उच्चरित करते हैं। (65) इससे इहलोक परलोक में भी आनंद मिलता है। भक्ति के लिए भगवान के नामस्मरण की आवश्यकता है। पेरियालवार की अचंचल भक्ति, दार्शनिकता का निम्नलिखित पाशुर से पता चलता है। पेरियालवार का कहना है "मौत के शिकार होने के पहले ही नमो नारायण नाम स्मरण करके हमें अपने जन्म को सार्थक बनाना है। (66) 'मरणासन्न व्यक्ति दर्द के कारण मुँह लटककर एक ओर गिरता है, आंसुओं के साथ भीगी कांतिहीन

आंखों सहित, मां एक ओर, बाप एक ओर पत्नी एक ओर इकट्टे होकर दहन संस्कार की बातें करते है।

इन सबके पहले ही विष्णु का नाम स्मरण करना चाहिए। (67) पेरियालवार स्मरण की आवश्यकता बताते हुए मरने से पूर्व विष्णु का नाम स्मरण करने का उपदेश देते हैं। मृत्यु के समय होनेवाली यातनाओं का उल्लेख करके स्मरण की महिमा बताते है। इस प्रकार की भक्ति में भक्त भगवद्शरण में जाने को ही अपना एकमात्र लक्ष्य समझता है। इसे आर्तभक्ति की संज्ञा भी दी जाती है।

पेरियालवार मौत के समय होनेवाली वेदनाओं को बताकर श्रीकृष्ण की शरण में जाने का उपदेश देते हैं। 'मरणासन्न समय में मूत्र विसर्जन ज्यादा होकर, मुंह में डाले चावलरस कंठ में अवरुद्ध होकर फिर मुंह की दूसरी ओर से गिरने के पहले, सदा के लिए सोने वाली अवस्था के पहले 'हृषीकेश' कृष्ण की शरण में जाइए। मरते वक्त कुत्ते भी पास नहीं आते। यम दूतों के शूल आपको कुछ भी नहीं करेगा। दुःख से पूर्ण भवसागर से पार करने के लिए श्रीकृष्ण की शरण में जाइए।(68) नम्मालवार 'पेरिय तिरुवन्दादि' में मन को उपदेश देते हुए कहते हैं "हे मन हमारे दुःखों को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण के चरणारविंद की शरण में जाओ। वह कभी भी साथ छोडेगा नहीं चक्रधारी की आराधना करो। अब क्या है, कल क्या है, सदा तुम उसका ध्यान करके दुःख से विमुक्ति हो जाओ।" (69)

"आण्डाल" की रचना "तिरुप्पावै" तो गाने योग्य सुमधुर गीतों से पूर्ण है जहाँ कवयित्री ने नामस्मरण, रूपस्मरण पर बल दिया है। "तिरुप्पावै" एक प्रकार के जागरण गीतों का संग्रह है, जहाँ माधुर्योपासिका आण्डाल अपनी सखियों के साथ कावेरी नदी में स्नान करके एक पूरे महीने (मार्गशिर) में श्रीकृष्ण को पति के रूप में पाने के लिए व्रत करती है। वह अपनी सखियों को श्रीकृष्ण के गुणगान

गाती हुई जगाती है। सांसारिक माया रूपी निद्रा से पीडित जीव को कृष्ण प्रेम रूपी अमृतगान से जगाना ही "तिरुप्पावै" का उद्देश्य रहा। तिरुप्पावै तीस गीतों का संग्रह है, जहाँ आण्डाल ने नामस्मरण भक्ति का महत्व गायी है।(70) आण्डाल इस प्रकार सखी को जगाती है, "हे सुन्दर तोते की तरह रहनेवाली युवती अभी तक तुम सो रही हो तब वह युवती उठकर बोलती है मृदु कंठ से बात करो। मैं अभी आयी। सभी आ गयीं हैं। आण्डाल कहती हैं सारी युवतियाँ आ गयी हैं बलवान कुवलयापीड हाथी को संहार करके आनेवाले दुष्ट संहारक, श्रीकृष्ण के गुणगान गाने के लिए उठो। (71)

तिरुमलिचै आलवार ने अपनी रचना तिरुच्चन्दवृत्तम में पग पग पर नाम स्मरण की महिमा गायी है। "कभी भी नहीं घटनेवाले प्रेम के साथ मंदर गिरि के साथ समुद्रमंथन करनेवाले, नीलमेघश्यामल का नाम उत्सुकता के साथ सदा भजने वाले सार्थक हैं। यहाँ भगवान के नाम को अक्ष में से युक्त कहा गया है यह उसकी भक्ति का द्योतक है। (72) एक और पाशुर में कवि कहते हें "हृदय में लक्ष्मी को धारण करनेवाले देवाधिदेव। वेदों का सार बनकर विराजमान हैं। नीलमेघश्यामल। तुम्हारे नाम सदा स्मरण करने की कृपा करो। (73) तोंडरडिप्पोडि आलवार (विप्रनारायण) के लिए तो श्रीकृष्ण के नामस्मरण के आस्वादन के सिवा कुछ नहीं चाहिए। उनके नामस्मरण के सामने इन्द्रलोक की इच्छा भी नहीं। (74) जैसे उनका कहना है नील रंग से युक्त नीलमेघश्यामल। हे कृष्ण!!! जैसे सुंदर मुँखवाले, कमल नयन, अच्युत, अमरों के ईश्वर गोपगोपिकाओं के लाड्ले, तुम्हारे नाम स्मरण के स्वाद को मैं ने पहचान लिया। मुझे इन्द्रलोक का सुरेश्वर पद भी नहीं चाहिए। इस प्रकार आलवार संतों ने मुक्त कंठ से नामस्मरण भक्ति की महिमा को स्वीकार किया है। उनका दृढ़ विश्वास है विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के नाम स्मरण मात्र से हम अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है।

आलवारों में प्रथमत्रय आलवार (भूदत्तु, आलवार पेयालवार, पोयगै आलवार) आदि ने जो भगवान का दिव्यदर्शन पाया उसका वर्णन इस प्रकार है – ''वे नीलमेघश्यामल वर्णवाले थे, पीतांबरधारी, कौस्तुभ मणि से उनका कंठ शोभित था, श्रीवत्समणि वक्षस्थल में शोभित था। उनके नयन कमल जैसे सुन्दर थे और मुख पूर्णचंद्र जैसा था। जगदीश्वर, लोकरक्षक शंख, चक्र, गदा सहित शोभित होकर कोटि सूर्यो के प्रकाश के साथ विराजमान थे। उनके दर्शन करना आँखों के लिए सौभाग्य था, वे करुणा के सागर थे। अनगिनत कनकांबरों से शोभित थे। ऐसे रूपसौंदर्य से युक्त गोविंद (विष्णु) के दर्शन पाकर आलवार अतिशय आनंद में डूब गये। तब उन वैष्णवोत्तमों ने अटूट भक्ति से, तन्मयता से अनायास से पाशुर गाये थे। वे ही प्रबंधम् बन गये। यह रूपस्मरण का उत्कृष्ट उदाहरण है जो वैष्णव संहिता में मिलते हैं। (75)

7. 5. दास्यासक्ति :–

भागवत में (नवधा भक्ति) के अंतर्गत आनेवाली ''दास्य भक्ति'' ही नारद के भक्ति सूत्र में ''दास्यासक्ति'' के नाम से वर्णित है। भक्त अपने को अधम, पतित, पापी मानकर अपने आराध्य को अलौकिक पुरुष के रूप में देखकर दीनता के साथ अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। मूल रूप से यह स्वामि के प्रति सेवक के द्वारा रखी गयी श्रद्धा, मर्यादा से पूर्ण भक्ति है। ''दास्य भक्ति का स्थायी भाव 'प्रीति' है। उसके आलंबन कृष्ण तथा आश्रय दास वर्ग है। (76)

वल्लभभाई ने अपने ग्रन्ध ''कृष्णाश्रय'' में दास्य भाव के साथ स्वदोष–प्रकाशन भगवान के प्रति विनय, प्रार्थना तथा दैत्य भाव धारण करते हुए उनकी शरण और रक्षा का आवाहन किया है। (77) कृष्ण भक्ति साहित्य में रामभक्ति साहित्य की तरह दास्य भाव, विद्यमान न होने पर भी कृष्ण भक्त कवि अपने आराध्य श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर अपने उद्धार की याचना करते है।

अपने आराध्य श्रीकृष्ण को दीनोद्धारक, पतितपावन मानते हुए उनके द्वारा उद्धार किये गये पतितों का उल्लेख करते हुए, अपने को नीच के रूप में चित्रित करके अपने उद्धार की प्राथना करते हैं। नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति के प्रकार के अंतर्गत एकादश भक्ति में दास्यासक्ति का उल्लेख मिलता है। नारद भक्ति सूत्र के चतुर्थ अध्याय में "भगवान के प्रति रखनेवाला प्रेम वैसा ही होना चाहिए जो एक दास स्वामि के प्रति रखता है। (78)

रूप गोस्वामि के अनुसार अनुग्रहकामी छोटे जनों की भगवान कृष्ण के प्रति जो अनुरक्ति है वही "प्रीति" कहलाती है। (79)

इसके अंतर्गत भक्त सेवक है, भगवान सेव्य है। प्रीति दो प्रकार की होती है

(1) संभ्रम प्रीति (2) गौरव प्रीति।

(1) संभ्रम प्रीति :–

यह, वह प्रीति है जहाँ भक्त भगवान से अपने को अत्यंत दीन, हीन समझता है, और भगवान की कृपा की अभिलाषा करता है।

(2) गौरव प्रीति :–

इसमें भक्त भगवान के द्वारा सदा अपनी रक्षा तथा पालन की कामना करता है। दास्य का स्थायी है – संभ्रम प्रीति। (80) दास्य भक्ति के अंतर्गत दीनता, मानमर्षता (81) भर्त्सना, आश्वासन आदि आते हैं।

दास्य भक्ति में विनय भावना कूट कूटकर भरी रहती है। इसके अंतर्गत शरणागति, प्रपत्तिवाद, आत्मनिंदा आदि आते हैं। दास्य भक्त पर एक ओर अपने स्वामि के सामने दास मानकर अपनी दुर्बलताओं को, अपने पापों को क्षमा करने की

याचना करते हुए दूसरी ओर अपने स्वामि के प्रति दृढ़विश्वास रखते हैं कि वे उनका उद्धार अवश्य करेंगे। दास्य भक्ति में भगवान के चरणारविंद का वर्णन ज्यादा मिलता है।

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित दास्यासक्ति :

दास्य भाव प्रकट करते हुए सूर कहते हैं "कृष्ण की शरण में आकर मेरा मृत्युभय मिट गया। मैंने अन्य देवताओं की भक्ति के चिह्नों को मिटाकर कृष्ण भक्ति के चिह्न धारण कर लिये। है। मस्तक पर तिलक, कान में तुलसी पत्र, कंठ में वन माला आदि को देखकर लोग मुझे श्याम का दास कहते हैं। यह सुनकर मेरा मन प्रसन्न होता है। सब से बड़ा सौभाग्य यह है कि मैं दास्य वृत्ति से भगवान की जूठन प्रसाद रूप में पाता हूँ। (82) वे अपने आराध्य के चरणारविंद पर बलि बलि जाते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते। (83) मीराबाई तो अपने आराध्य श्रीकृष्ण के सम्मुख अपनी दास्य भावना को प्रकट करती हुई उनके द्वारा उद्धारित किये गये पतितों का नाम लेकर, अपने उद्धार की प्रार्थना करती है।(84)

भक्त तोंडरडिप्पोडि आलवार अपनी रचना "तिरुमालै" में अपने को नीच, अधम के रूप में देखकर भगवान के दासत्व ग्रहण करने में जन्म की सार्थकता मानते हैं। उनका कहना है मैंने त्रिलोकों के फूलों से तुम्हारे चरणारविंदों की अर्चना नहीं की। तुम्हारे गुणों को शुद्ध भाषा में गान नहीं किया। तुम्हारे प्रति अनुपम प्रीति भी नहीं रखी। इसीलिए हे भगवान इस पापी का जन्म बेकार हो गया। (85) पेरियालवार तो भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं 'अगर मेरी जिह्वा से कुछ सारहीन कविताएँ निकली। प्रलयकाल में सप्तलोकों को उदर में धारण करके सृष्टि काल में बाहर लानेवाले हे भगवान। मेरी गल्तियों को क्षमा करना। शंख चक्र धारी छोटों की गलितयों को क्षमा करना बड़ों का कर्तव्य है। इसी प्रकार इस

दास की गलितयों को माफ करो। मेरी अनगिनत गलितयों को तुम माफ़ करो जिस प्रकार हिरण में एक बिंदी ज्यादा हो कम हो कोई फरक पड़ता नहीं। (86)

''तिरुमलिचै आलवार अपनी रचना 'तिरुच्दंद वृत्तम' में अपने को कुत्ते से हीन बताकर आनेवाले जन्मों में अपने उद्धार की प्रार्थना करके भगवान के चरणारविंद पर बलि बलि जाते हैं। (87) तिरुमळिचै आलवार अपने को शुनक से हीन बता रहे हैं। कुत्ता वफादार जानवर है, याने वह मालिक के लिए जान देकर भी उसकी रक्षा करता है। आलवार अपने को कुत्ते से भी हीन मानने के पीछे यह उद्‌देश्य रहा होगा कि उसने भगवान के प्रति वफ़ादारी नहीं निभाई। भगवान के प्रति कृतज्ञता नहीं दिखाई। अपने को पतित मानकर अपने भगवान को सर्व शक्तिमान मालिक मानना उनकी दास्य भक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। श्रीकृष्ण की शरण में जाने का उपदेश देते हुए तोंडर प्पोडि आलवार कहते हैं ''हे मूर्ख जन्। श्रीकृष्ण के बिना कोई देव नहीं। मन संकट हारी श्रीकृष्ण अतुलनीय देव है। उनके चरणारविंद की शरण में जाइए। (88) अपने को स्त्री लोल के रूप में मानकर आलवार अपने द्वारा किये गये अपराधों के लिए पश्चात्ताप से क्षमा माँगते हुए, अपने को पतित कहकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं। अपने को पतित कहकर श्रीकृष्ण के चरणों की शरण में जाना चाहते हैं।(89) नम्मालवार तो अपनी रचना ''तिरुवायमोलि' में अपने को कृष्ण का ही दास नहीं बल्कि कृष्ण भक्तों के दास घोषित करते हैं। उनका कहना है ''प्रकाश से पूर्ण कमल नयन श्रीकृष्ण क्षीर सागर में शयन करनेवाले विष्णु के अवतार के भक्त कोई भी हो, मैं आनेवाली जन्मों में उनका दास बनकर रहना चाहता हूँ। (90) श्रीकृष्ण के दास के दास बनने में जो उत्सुकता नम्मालवार ने दिखायी है वह उसकी दास्य भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। (91)

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों में दास्यासक्ति की प्रधानता के साथ साथ अपने आराध्य के प्रति अचंचल प्रीति भी बनी रहती है।

7. 6. सख्यासक्ति :–

भक्त का अपने आराध्य भगवान को "सखा" याने मित्र के रूप में स्वीकार करना सख्या भक्ति है। रामभक्ति साहित्य से ज्यादा कृष्ण भक्ति साहित्य में इस प्रकार की भक्ति देखने को मिलती है। इसका एक मात्र कारण रामभक्त कवि मर्यादावाद के कारण भगवान के लोक रक्षक रूप को ग्रहण करते हैं जब कि कृष्ण भक्त कवि लीलाकारी लोकरंजक रूप को ग्रहण करते हैं।

भगवान को अपना सखा मानने से उनसे निकटता ज्यादा स्थापित करा सकते हैं। एक मित्र से खुले हृदय से अपनी मानसिक वेदनाएँ, विचारों, सुख–दुःख बाँटा जा सकता है। जब भगवान को मित्र के रूप में मानकर उनसे मित्रता स्थापित करने से सरल मन से अपने कष्टों का निवेदन अनायास कर सकते हैं। महाभारत में अर्जुन, भागवत में सुदामा, उद्धव, गोपबाल, रामायण में निषाद राज गुह, सुग्रीत, विभीष्ण आदि सख्य भक्त के उदाहरण है। भागवत् में इसका उल्लेख यथेष्ट रूप में मिलता है। (92)

भक्ति रसामृत सिन्धु के अनुसार दो समान पुरुषों की सम्भ्रम रहित रति सख्य भाव माना जाता है। (93)

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों की सख्यासक्ति :–

सभी हिंदी कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रेम से अपना सखा स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण की बाल और यौवन कालीन आमोद प्रमोदमय सख्य लीलाओं का मार्मिक चित्रण इनके पदों में मिलता है। श्रीकृष्ण की गोचारण लीला, माखन चोरी, आँख मिचौनी खेल आदि सख्य भक्ति के अंतर्गत आते हैं। सूरदास ने श्रीकृष्ण के साथ "आँख मिचौनी खेल" खेलनेवाले गोप बालकों के माध्यम से

अपनी सख्य भक्ति को बड़ी तन्मयता से प्रकट किया है। (94) गोचरण लीला में (95) यमुना नदी तट के कछारों में सूर की सख्य भक्ति निराली है। सुदामा के साथ जूठे कौर खाकर दिखाने से सूरदास की भक्ति में आत्मीयता आ गयी है। (96) सख्य–भक्ति के सुधा रस को पीते हुए परमानंददास ने उसका सुरम्य रीति से वर्णन किया है। (97)

आलवार प्रबन्धम में हम सख्य भक्ति को पूर्ण रूप से नहीं देख सकते जैसे हिंदी के कृष्ण काव्य में मिलती है। इसका कारण यह हो सकता है कि आलवारों ने कृष्ण के दास के रूप में अपने को स्वीकार किया है। पेरियालवार, कुलशेखर आलवार ने श्रीकृष्ण की गोचरण शोभा को चित्रित किया है लेकिन वह माधुर्य भक्ति (या) वात्सल्य भक्ति की पुष्टि के लिए। पेरियालवार ने गायों को चराकर अपने सखाओं सहित आनेवाले श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन गोपियों के माध्यम से करवाया हैं जहाँ सख्य भक्ति से ज्यादा माधुर्य भक्ति ही दीख पड़ती है। "हे सखी! सुन्दर ललाट पर अरुण तिलक लगाकर, उसके ऊपर मोर मुकुट सिर पर रखकर, शीतल मोर पंख से शोभित श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ–चूड़ियाँ फेंककर खेलते हुए अत्यंत सुन्दरता के साथ ग्वालों का लाड़ला श्रीकृष्ण मुझे और अपने को खूब जानकर इस गली में आकर मेरी गेंद को लेते हुए मुस्कुराता है। हे सखी। उसे हम देखेंगे। (98)

7. 7. <u>वात्सल्यासक्ति</u> :–

नौ रसों में "वात्सल्य" न होने पर भी साहित्यकारों ने उसको दसवें रस का स्थान दिया। "वात्सल्य" में वत्सलता का भाव है। अपने से छोटों के प्रति अत्यंत अनुराग से दिखाये जानेवाले प्रेम ही साहित्य में वात्सल्य रस है। माँ–बाप के अपने शिशु के प्रति दिखाया गया प्रेम, अपने से उम्र में बहुत छोटे बच्चों के प्रति दिखाया जानेवाला प्रेम ही वात्सल्य है। भक्ति के क्षेत्र में भगवान को एक

छोटे–से शिशु के रूप में देखकर उनके प्रति लौकिक प्रेम कलापों के माध्यम से भक्ति प्रकट करना ही वात्सल्य भक्ति है।

<u>हिंदी के कृष्णभक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित वात्सल्यासक्ति</u> :–

हिंदी के अष्टछाप कवियों में सूर ''वात्सल्य सम्राट'' के नाम से प्रसिद्ध है। हिंदी साहित्य में सूर जैसा वात्सल्य का वर्णन किसी और कवि ने नहीं किया। रामचंद्र शुक्ल इस संबंध में लिखते हैं ''सूर ने वात्सल्य का कोना–कोना झाँका है और उस क्षेत्र में औरों के लिए कुछ नहीं छोडा है। (99)

आलवारों में से सिर्फ तीन आलवारों ने ही (पेरियालवार, कुलशेखर आलवार, तिरुमंगै आलवार) वात्सल्य भक्ति का वर्णन किया है। पेरियालवार जैसे वात्सल्य का विस्तृत वर्णन किसी भी सहित्य में नहीं मिलता है।

हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों द्वारा चित्रित वात्सल्य वर्णन का मूल आधार भागवत के दशम स्कंध में वर्णित श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ हैं। हिंदी के प्रमुख कवि सूरदास बालक श्रीकृष्ण के रूपसौंदर्य पर, उसकी प्रत्येक चेष्टा पर मुग्ध होते हैं। वात्सल्य ही सूर है, सूर ही वात्सल्य है। मैया यशोदा के माध्यम से सूर का हृदय ममताअयी माँ के हृदय को झाँका है, स्पर्श करता है। यशोदा द्वारा बालक श्रीकृष्ण को सुलाये जाने का दृश्य सूरदास ने इस प्रकार वर्णन किये है। श्रीकृष्ण को यशोदा हलराकर, दुलारकर कुछ गाती हुई सुलाती है। मेरे लाल के पास जल्दी आओ निदरिया (नींद)। निद्रा से बात करती हुई कहती है ''तुम जल्दी आओ, तुझे कन्हैया बुला रहा है। कभी श्रीकृष्ण (हरि) आँख मूद लेता है, कभी अधर धीरे खोलकर सोता है। यशोदा इशारों से समझाती है कि कृष्ण सो रहा है, इसीलिए सभी मौन रहें। अगर श्रीकृष्ण बीच में उठ गया तो यशोदा मधुर गीत गाकर उसे सुलाती है। कवि सूरदास का कहना है जो सुख देवता लोग एवं

मुनिगणों को दुर्लभ है (त्रिलोकस्वामि को सुलाना) उसे यह नंदभामिनी यशोदा ने पा लिया। यह उसके वात्सल्य भक्ति का ज्वलंत उदाहरण है। (100)

सूर ने एक साधारण बालक की चेष्टाओं को मनोवैज्ञानिक रीति से वर्णन किया है। उसके अंतर्गत झूले में लिटाना, जन्मोत्सव, कन छेदन प्रसंग बालक की दुधमुँही दन्तहीन मुस्कान, स्तनपान, घुटरुन चाल आदि का वर्णन यशोदा के माध्यम से करवाया है सूर के बालकृष्ण वर्णन में उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ अनायास आ जाती है।

एक माँ की सहज लालस होती है कि बच्चा जल्दी बड़ा हो जाए। उन सब को यशोदा के माध्यम से कवि ने वर्णन किया है। (101)

कृष्ण कुछ बड़ा हो गया है। अब घुटनों के बल पर चलने लगा। उनकी शोभा का वर्णन इस प्रकार सूर करते हैं "नवनीत हाथ में लेकर बालक कृष्ण घुटनों पर चलता है। धूलि से उसका शरीर भर गया (इधर–उधर घूमने के कारण)। उनके मुख पर दहीं का लेप था। अत्यंत सुन्दर कपालों से, लुभानेवाली आँखों से, वह अत्यंत शोभित था। उनके काले घने घुँघराले बाल उनके ललाट पर घिरे हुए थे वे ऐसा लग रहे थे मानो मधुर रस को पीने के लिए मस्त होकर मधुप आ गये। (आँखों की तुलना कमल से, बालों की तुलना काले भ्रमर से), उनके कंठ पर बाघ के नख के साथ माला सुशोभित थी। वह दृश्य मनोहारी था। सूरदास कहते हैं एक पल इस दृश्य को (बालक श्रीकृष्ण के अपार सौंदर्य को) देखना धन्य है, सैकडों कल्पों तक जीना बेकार है। (102)

माँ द्वारा बच्चे को उँगली पकडकर चलना सिखाना, बालक की हठीली चेष्टाएँ जैसे माँ से जिद करना, चाँद खिलौने के रूप में माँगना (103) भैया से

झगडा करना, माखन चोरी, गोपियों की शिकायत, माँ यशोदा का समर्थन, गोचारण आदि का वर्णन विस्तार रूप से सूर में मिलते हैं।

अष्टछाप के कवि परमानंद दास ने भी बालक श्रीकृष्ण की चेष्टाओं पर मुग्ध होकर अपनी वात्सल्य भावना प्रकट की है। (104) श्रीकृष्ण के बाल–विनोद को देखकर पुलकित होकर, आनंद के साथ माँ यशोदा गाती है। बलराम सहित घनश्याम को देखकर मैया यशोदा वदन को घूमकर कोरा लेती है। जो सुख ग्वालिनी यशाोदा को प्राप्त है वह ब्रह्म, शिव, मुनि देवताओं को भी प्राप्त नहीं।

मीराबाई तो माधुर्योपासिका होने पर भी श्रीकृष्ण के बालक रूप के प्रति आकृष्ट होकर उनके जन्म, लीलाएँ, नटखट चेष्टाओं का घटनाक्रम वर्णन किया है। उसके अंतर्गत झूले में डालकर लोरी गाना (105) मैया को संबोधित करना (106) आदि मिलते हैं। उदाहरण के लिए – मीरा का वात्सल्य वर्णन कृष्ण कुछ बडे हो गये। मीरा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की तुतली बोली के माध्यम से माँ यशोदा से बात करवाती है। (107) कृष्ण यशोदा से अपनी तोतली बोली के साथ इस प्रकार बात करता है मैया। मुझे जल्दी बड़ा कर लो। मधु, मेवा, पकवान, मिठाई जब माँगूंगा देरी न करके खिलाना। सभी लड़कों में से जल्दी बड़ा बन जाऊँगा। बड़ा हो जाऊँगा तो सभी शत्रुओं को मारूँगा। मल्लवीरों को जीत लूँगा कंस का वध करूँगा। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर। मथुरा के राजा है। मीरा नेग गोपियों की शिकायत, माखन चोरी, कालिय दमन प्रसंग, माँ यशोदा से बालक श्रीकृष्ण का वार्तालाप आदि का सविस्तार रूप से वर्णन किया है।

आलवारों में तीन आलवारों ने ही वात्सल्य रस का वर्णन किया है। आलवारों में प्रसिद्ध पेरियालवार जैसा वात्सल्य वर्णन करना किसी भी कवि को संभव नहीं। उन्होंने वात्सल्य वर्णन के लिए प्रत्येक भाषा शैली को अपनाया है जो 'पिल्लै तमिल' नाम से प्रसिद्ध है। पेरियालवार ने तमिल साहित्य की प्राचीन शैली

पिल्लै तमिल में बालक श्रीकृष्ण का वर्णन करते हैं। जन्म से लेकर एक साल तक होनेवाली बालक की चेष्टाओं को दस वयोखण्डों में विभाजित करके प्रत्येक वयोखण्ड में होनेवाली चेष्टाओं का विस्तार रूप से वर्णन किया है।

बालवर्णन के समय भक्त आलवार अपने आराध्य को अलौकिक समझते हुए भी इतने सहज स्वाभाविक रूप में वर्णन करते हैं कि वे हमारे नेत्रों के समक्ष हँसते मुस्कुराते हुए घुटनों के बल पर रेगते हुए, उठ–उठकर गिरते हुए, इधर उधर दौडते हुए, मित्रों से झगड़ते हुए माँ से झूठी शिकायत करनेवाले किसी नटखट भोले भोले चंचल बालक की छवि के रूप में उपस्थिति होते हैं। पेरियालवार ऐसे एक कमनीय कवि है जिन्होंने तमिल साहित्य में सर्वप्रथम 'पिल्ले–तमिल' शैली को अपनाया है। इनके द्वारा ही तमिल भाषा साहित्य का वात्सल वर्णन अपने रूप को विशाल एवं सुदृढ़ बना सका है। पिल्ले का अर्थ है 'शिशु'। उन्होंने बालवर्णन के लिए 'पिल्ले–तमिल' नामक पद्धति को अपनाया है। अपने आराध्य लीलानायक श्रीकृष्ण के बाल्यकाल को 'काप्पु' चेंकीरै, ताल, चप्पाणी, मुत्तम, वारानै, अंभुलि, चिरुपिरै, चिट्रिल, चिदैत्तल, चिरुतेरोट्टल''(108) नामक वयाखण्डों में विभाजित करके प्रत्येक दशा में होने वाली विशिष्ट बालचेष्टा का वर्णन किया है। इसके अंतर्गत शिशु के दो मास की चेष्टा से लेकर, सिर को ऊपर उठाकर हिलाना, माँ की लोरी सुनना, दोनों हाथों को मिलाकर ताली बजाना, दूसरों की प्रार्थना पर चुंबन के लिए अपने मुख को आगे बढाना, घुटनों के बल पर रेंगना, चाँद खिलौना माँगना, हाथों को रखकर मुख छिपाना आदि शिशु की चेष्टाएँ आती है। इससे यह विदित होता है कि पेरियालवार बालविज्ञान के पारखी है। इनकी वात्सल्य भक्ति रस के अंतर्गत कृष्णजन्मोत्सव के कोलाहल का वर्णन रूपसौंदर्य अंगूठी में रखने की शोभा, आदि कोलाहल वर्णन में कवि ने तमिलनाडु में प्रचलित प्रादेशिक पद्धतियों का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण जन्म का समाचार सुनकर ब्रज के आनंद का एक दृश्य 'ओडुवार, विलुवार, उगन्दु अलिप्पन। (109)

बालक के जन्म का समाचार सुनकर ब्रज में लोग अत्यानंद के साथ इधर उधर दोड़ रहे थे। इधर–उधर एक दूसरे पर जल छिडकाते हुए कीचड़ में गिरते थे। एक दूसरे से परमानंद के साथ गले लगाते थे। "बच्चा किधर है, किधर हैं कहते हुए ढूँढते थे। नायक का जन्म ग्वालों के घर में हुआ था। उसकी महिमाओं को गाकर संतोष से बाजे बजाते थे। उसके अनुसार नर्तन करते थे। इस प्रकार गोकुल संतोष से भरा हुआ था। "श्रीकृष्ण के बाल रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर कवि बलि बलि जाते हैं। उनके संपूर्ण अवयवों का वर्णन करते रहते हैं। (110)

7.7 अ. <u>उंगलियों का वर्णन</u> :

हे दिव्य प्रकाश से पूर्ण ललाटवाली नारियाँ श्रीकृष्ण के चरणारविंद की दस उंगलियों पर मोती, नीलमणि आदि नौरंगमणियों को लगाकर श्रीकृष्ण के पैरों को सजाया गया है। इसी की शोभा को आप देखिए। (111)

7. 7. आ. <u>आँखों का सौंदर्य</u>

देवताओं के दुःख नाश करने के लिए भूलोक में वसुदेव को कारावास से मुक्त कराने के लिए बेटे के रूप में जन्म लेकर फिर दया रहित असुर गणों का संहार करने हेतु गोकुल में आया हुआ यह बच्चा असुरांतक है, शिष्ट रक्षक भक्तवत्सल की शोभा अपार है उनके सुन्दर नेत्रों को देखिए। हे स्वर्णचूंड़ियाँ पहनी हुई युवतियाँ इन की आँखों के सौंदर्य को देखिए। (112) पेरियाल़्वार की यशोदा शिशु को पुच कारती हुई सुलाती है और लोरी गाती है –

"माणिक्कम कट्टि वचिरम् इडै कट्टि।
आणि पोण्णाल् चेयद वण्ण चिरुतोट्टिल
पेणियुणक्कु पिरम्मन विडुतंदान
मणिक्कुरलणों तालेलो
वैयम् अलंदाने तालेलो। (113)

माणिक्कय एवं हीरे से सजाया हुआ, सोने के रंगीन छोटे पालने को प्यार से ब्रह्माजी ने तेरे लिए भेजा है। हे सुंदर वामनमूर्ति, सो जा (तालेलो), त्रिविक्रमजी (जिसने संसार को मापा) सो जो । चाँद को खिलौने के रूप में माँगने का वर्णन पेरियालवार इसप्रकार करते है –

पेरियालवार की यशोदा चन्द्र को संबोधित करके कहती है –

एन चिरुक्कुट्टन एन क्कोरुन्नमुदु एंपिरान
तन चिरु कैकलै काट्टिमलै किण्ड्रान
अंजन वण्णनोडु आडलाड उरुदियेलु
मंजिल मरैयादै मामदी मकुलतोडिवा। (114)

"हे विशाल चंद्र। मेरा 'चिरुकुट्टन" (छोटा–लाल) जो मेरे लिए अमृत के समान अमूल्य है, अपने नन्हें हाथ को दिखा दिखाकर तुम्हें बुला रहा हैं। श्याम के साथ खेलना चाहते हो, तो मेघों के पीछे छिप मत जाओं, पर संतोष के साथ आ जाओ।

श्रीकृष्ण को बाललीला वर्णन के अंतर्गत इन्होंने लोरियाँ गाना, चाँद दिखाना बच्चों की चाल, घुटना पर रेगना, उँगनियों से मुख छिपाना, स्तनपान, कन छेदन नहाने के लिए कृष्ण को बुलाना, कौए को बुलाना, आदि का सविस्तार रूप से वर्णन किया है। गायों को चराकर आनेवाले श्रीकृष्ण की शोभा देखकर माँ यशोदा का आनंद (115) गोपाल की खूब सूरती पर मोहित हुई गोपियों की स्थिति (116) गोवर्धन गिरिधारण (117) मुरली–माधुरी, मऴलै परुवम् (तोतलीबोली) गोपियों के प्रेम आदि का वर्णन मिलता हैं।

इनके अलावा जन्मोत्सव स्तनपान, कन छेदन, जलक्रीडा (नहाने के लिए कृष्ण को बुलाना, बच्चे को डराते लकड़ी लाने के लिए कौए से अनुरोध, सिर पर फूल गूँथने का बुलावा, श्रीकृष्ण की नटखट चेष्टाएँ, यशोदा–कृष्ण–संवाद, गोपियों

की शिकायत यशोदा द्वारा पुत्र का समर्थन, गोचारण, गायों को चराने के लिए कृष्ण को भेजने के बाद माँ यशोदा का विलाप, गायों को चराकर गोधूली वेला में लौटनेवाले कृष्ण की शोभा, गायों सहित गोपाल को देखकर मोहित हुई गोपियों की स्थिति, गोवर्धन गिरिधारण, मुरली माधुरी आदि का सविस्तार वर्णन पेरियालवार के पाशुरों में मिलते है।

इनके अलावा पेरियालवार ने वात्सल्य रस में मर्यादावाद एवं दास्यभक्ति को समन्वित करके दिखाया। माँ यशोदा द्वारा सर्वशक्तिमान, त्रिलोक के स्वामि भगवान को स्तन–पान देने में डर दिखाया है। "कण्णनिन तिरुमेनि–अऴ़गु (कान्ह की शारीरिक शोभा) के अंतर्गत पेरियालवार ने उनके संपूर्ण अवयवों में प्रत्येक अंग का वर्णन किया है।

7. 7. इ. <u>दुग्धदाँत की शोभा</u> :–

हे स्मितमुखी गोपियों! मदमत्र गजों को अपने राज्य में रखा वासुदेव एवं देवकी की कोख से 'श्रवण' नक्षत्र में जन्मा श्रीकृष्ण की सुन्दरता को, आकर देखिए। (118)

7. 7. ई. <u>मुख सौंदर्य</u> :–

भ्रमर मँडराने लायक बालों सहित शोभित गोपियों को यशोदा बुलाकर यशोदा उसे नहाते वक्त हल्दी लेपन लगाकर, जीभ साफ करते समय माँ–बाप को बुलानेवाली जीभ एवं सभी को करुणा से उद्धार करनेवाली सुन्दर आँखे, मुस्कुराहट से पूर्ण मुखारविंद को, इसके सौंदर्य को आकर देखिए। (119)

बच्चे को गोद में लेकर माँ यशोदा चंद्रमा को बुलाती हुई कहती है "मेरा लाड्ला अमृत समान मधुर है। अपने नन्हे हाथ उठा उठाकर बुला रहा है। अगर काले घनश्याम से खेलना चाहोगे तो मेघों के पीछे जाओ मत। खुशी से आ जा।"(120)

पेरियालवार की तरह कुलशेखर आलवार ने भी वात्सल्य का वर्णन किया है। लेकिन इनका वर्णन देवकी के माध्यम से होने के कारण वात्सल्य एवं शोक रस का अनुपम संगम इनके पाशुरों में मिलता है। इतना ही नहीं इन्होंने वात्सल्य के अंतर्गत अपनी रामभक्ति को भी प्रकट करके कौशल्या द्वारा बालक राम की चेष्टाओं को बतलाया है।

देवकी बालक श्रीकृष्ण को याद करके कहती है – "ईख जैसा मधुर कृष्ण। नीरज पुष्प जैसा विशाल नयनवाला। सो जा। सिन्धुजल जैसा नीलवर्ण का कान्तिवाला सो जा। किशोर हाथी की तरह चेष्टा करनेवाला सो जा। मेरा लाड़ला ऐसा तुम्हें मुँह खोलकर सुलाने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मैं उन अभागिनी माताओं में से मैं एक हूँ।(121)

तिरुमंगै आल़वार ने भी वात्सल्य वर्णन के अंतर्गत कृष्ण की नटखट चेष्टाओं पर तंग आयी गोपियों की शिकायत, बालक श्रीकृष्ण का गोपियों से वाग्वाद का वर्णन किया है। गोपी यशोदा से कहती है – "सुबह उठकर दही मंथन करके गली में बेचने गयी थी। मेरे सामने कृष्ण को देखकर उससे डरकर खड़ी हुई थी। सुगंधित पुष्पों को वेणी में गूँथे श्रीकृष्ण, नंद के लाड़ले के सिवा कोई और मेरे घर में आये नहीं यशोदा। कृष्ण ने क्या किया है जरा देखी मक्खन के साथ दस मटकियों में रखा हुआ दूध भी गायब। मेरा दुर्भाग्य मैं क्या करूँ।"(122)

आलवारों के वात्सल्य वर्णन एवं हिंदी कृष्ण कवियों के वर्णन में साम्य होने पर भी नयी प्रवृत्तियों को आलवार साहित्य में देख सकते है। देवकी के माध्यम से उन्होंने वात्सल्य एवं शोक रस को समन्वित करके प्रस्तुत किया।

स्तनपान कराने में यशोदा द्वारा प्रकटित भय आलवारों की दास्य भक्ति का प्रतीक है।

इस प्रकार दोनों के साहित्य में वात्सल्यासक्ति की भक्ति यथेष्ट रूप से न मिलती है।

7. 8. <u>कान्तासक्ति</u> :–

भक्त अपने आराध्य को अपना प्रिय (या) अपनी प्रिया मानकर रखनेवाली भक्ति ही कान्तासक्ति भक्ति है। इसका दूसरा नाम प्रेम माधुर्य भक्ति है। कान्तासक्ति (या) प्रेम माधुर्य भक्ति भावना का 'स्थायी भाव'' प्रियता अथवा ''मधुरा रति है।(123)

इस प्रकार की भक्ति पद्धति निर्गुण एवं सूफी साहित्य में भी मिलती है। भेद यह है कि निर्गुण के आराध्य निराकार अगोचर अलौकिक परमात्मा सगुण के आराध्य साकार, सुन्दर मूर्तिमान रूप से शोभित होनेवाला। जब कवि हृदय खुद नायिका बनकर अपने आराध्य को नायक के रूप में देखकर उनके प्रति लौकिक प्रेम (या) रतिभाव को व्यक्त करती है वहीं कान्तासक्ति। नारद भक्ति सूत्रों में व्रजांगन गोपिकाओं के प्रेम का उदाहरण इसके लिए दिया गया है।

रूप गोस्वामी के अनुसार ''कृष्ण और राधा के परस्पर संभोग की प्रवर्तक रति ''प्रियता रति कहलाती है। इसका दूसरा नाम ''मधुरा रति'' भी है। (125) साधारणतः प्रेम की पराकाष्ठता स्त्री–पुरुष के प्रेम याने दांपत्य प्रेम में होती है, जहाँ स्त्री एवं पुरुष सम भागी है। समान रूप से भोगने का अधिकार उन्हें है। इसीलिए खासकर भक्तों ने भगवान से अधिक सामीप्य पाने के लिए लौकिक स्त्री–पुरुष प्रेम के माध्यम से अपने आराध्य की भक्ति की है। इस प्रेम में किसी भी प्रकार का विधि निषेध (या) मर्यादा भाव नहीं होता। माधुर्योपासक की आत्मा

रूपी नायिका अपने आराध्य से रूठकर भी उसे मनाने की अधिकारिणी है। सेवक स्वामि पर विनय, श्रद्धा, भक्ति ही रख सकता है जब कि प्रिया प्रिय के समस्त कार्यों की अधिकारिणी बनती है। माधुर्य भावना की विशेषता यह है कि माधुर्य भक्त प्रेम की चरमावस्था में भगवान पर अधिकार करने में भी समर्थ होते हैं।

सभी कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी भक्ति में मधुर भावना का वर्णन किया है।

भारतीय मनीषियों का मत है कि भक्त में परमात्मा के प्रति उतना तीव्र प्रेम होना चाहिए जितना स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति। स्त्री भाव के प्रेम में ही आत्मोत्सर्ग और आत्म विस्मृति की आराध्य पूर्ण रूप में आती है। पाश्चात्यों का मत है – "In the male mind there is predominances of reason concern with active, the practical with doing, direction is centrifugal looking to external achievement. In the female mind there is prodominances of intuition, recepturty concern for being rather than doing, directon is centripetal, the welll doing of the object, of love rather than well doing of other external things.(126)

कांतासक्ति का वर्णन भागवत के दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध में श्रीकृष्ण की ब्रज लीलाओं मे मिलती हैं। उत्तरार्ध में कृष्ण की षटरानियाँ कांतासक्त भक्त थी। मनसा, वाचा, कर्मणा गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को पति के रूप में पाने के लिए कात्यायनी व्रत किया। (127)

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित कांतासक्ति :–

कांतासक्ति के अंतर्गत दो प्रकार की भक्ति भावनाएँ देखने को मिलती है। स्वकीया, परकीया। सिर्फ श्रीकृष्ण को ही बचपन से ही पति के रूप में माननेवाली कुमारी गोपियाँ स्वकीया के अंतर्गत आती है। सांसारिक बंधन में रहते हुए श्रीकृष्ण को अपने नाथ के रूप में माननेवाली विवाहित गोपियाँ परकीया के अंतर्गत आती

है, गोपी–कृष्ण का मिलन लौकिक नहीं अलौकिक आत्मा–परमात्मा का मिलन है। इसीलिए वल्लभाचार्य ने स्त्रीभाव को प्रधानता दी है। सूरदास और नंददास ने श्रीमद्भागवत, गीता तथा श्रीवल्लभ के कथनों का अनुकरण करते हुए कहा – "भगवान सभी भावों से भजनीय है।" (128) सूरदास द्वारा चित्रित स्वकीया में मधुर प्रेम ज्यादा है जबकि परकीया में कम है। सूरदास की गोपी कहती है –

"हम गोकुलनाथ श्रीकृष्ण की आराधना करनेवाली हैं। मन वचन से हरि को पति के रूप में धारण करके प्रेमयोग रूपी तप करती हैं। हमने माता, पिता, हितैषी से प्रीति एवं निगाम पथ को छोड़ दिया है। मानापमान, सुख–दुःख आदि को भी श्रीकृष्ण की सोच में छोड दिया है। (129) आगे वे कहती है।

"तुम ही मेरे पति हो, तुम्हारे समान कौन होता है? तुम्हारी कृपा के बिना हमें दुःख ही दुःख है। (130)

मीरा श्रीकृष्ण को अपने पति के रूप में स्वीकारती हुई स्वकीया प्रेम को इस प्रकार प्रकट करती है "मेरा तो गिरिधर गोपाल है, और कोई नहीं। जिसके सिर मोर मुकुट हैं वहीं मेरा पति है। माता, पिता, भ्राता, बन्धु आदि रिश्तों में अपना कोई नहीं। मैंने कुल की मर्यादा को छोड़ दिया। कोई मुझे क्या कर सकता है।(131) मीरा कहती है "मैं गिरिधर के घर जाऊँगी गिरिधर मेरा प्रीतम है, उसके रूप देखते ही लुभानेवाला है। मुझे रात–दिन नींद नहीं उठकर राह देखती हूँ। दिन–रात उनके साथ खेलूँगी। उसे रिझाती रहूँगी। उनकी इच्छा के अनुसार वस्त्र पहनूँगी, खाना खाऊँगी। मेरी उनसे जो प्रीति हुई है वह अत्यंत पुरानी है। उन के बिना एक पल भी नहीं रहूँगी। वे जहाँ बैठेंगे मैं बैठूँ अगर बेचते तो बिक जाऊँ। मेरा प्रभु गिरिधर गोपाल, बार–बार उस पर बलि जाऊँगी। परकीया–कांतासक्ति के अंतर्गत हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों ने विवाहित गोपियों की प्रीति के द्वारा श्रीकृष्ण का सुन्दर वर्णन किया है।

परमानंददास की गोपी का कहना है कि "मैंने तो प्रेम कृष्ण से किया है, यदि लोग इसे पातिव्रत्य कहें तो अच्छा और यदि व्यभिचार कहे तो भी अच्छा। जो व्रत हमने लिया है (कृष्ण से प्रेम करने का) उस में मर्यादा का भंग हो रहा तो होने दो। अपना संग श्रीकृष्ण को पाना ही है।" (132)

इसी प्रकार की भावना सूर एवं मीरा की गोपियों ने भी प्रकट की।

पेरियालवार की गोपियाँ गोचरण के बाद आनेवाले श्रीकृष्ण की शोभा को देखकर सुध बुध खो बैठती है। एक गोपी की माँ कहती है "सिन्दूर को धारण करके, पुण्डरीकाक्षों से शोभित ललाट से मोर मुकुट धारण करके देवताओं के बीच इन्द्र जैसा आनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर मेरी पुत्री गाँव के बीच में उन पर काम के कारण मूर्छित हो गयी है। उसकी साड़ी एवं चूडियाँ भी उसके वश में नहीं।" (133) आण्डाल तो श्रीकृष्ण मिलन के लिए तीव्र उत्कण्ठा से कामदेव की पूजा करती हैं और कहती है – "बिछुडे हुए प्रेमियों को मिलाकर कीर्ति देनेवाले हैं मन्मथ। श्रीकृष्ण मिलन की उत्कण्ठा से मैंने वस्त्रों की ओर भी ध्यान नहीं दिया। गंदे वस्त्रों के साथ, गूंथे बिना छोडे केशों के साथ, रक्त हीन सफेद ओठों से, एक ही वेला खाकर उसे देखने की लालच में मैंने तुम्हारी पूजा की। श्रीकृष्ण को मेरा स्त्रीत्व, सर्वसमर्पण करते हुए उनके कैंकर्य करने का अवसर दो।" (134) आलवार की नायिका भी लोक लाज की परवाह नहीं करती। "हे सखी! मुझे कमल नयन श्रीकृष्ण ने मोहित कर लिया। मैं लाज खोकर उसकी चिंता में ही सदा रहती हूँ। मेरे शारीरिक रंग मिटकर शरीर सफेद रंग का हो गया। उनके बिना मैं पतली हो गयी मेरा लाल मुँह एवं काली आँखे कांतिहीन हो गयी।" (135) हे सखी! देवताओं के नायक, द्वारकाधीश श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रेम पाश में मैं फँस गयी हूँ। अब मुझे माँ की बातों की परवाह नहीं। आप मेरे प्रति रखी गयी आशाओं को छोड दीजिए। मैं श्रीकृष्ण से मिलने के लिए तड़प रही हूँ। (136)

इस प्रकार आलवारों की भक्ति में भक्तिशास्त्र में वर्णित कांतासक्ति यथेष्ट रूप से मिलती है। कान्तासक्ति को हिंदी कृष्णभक्त कवियों ने और आलवारों ने समान रूप से चित्रित किया है। हिंदी साहित्य में अपनी विरह वेदना नायिका सुनाती है जबकि आलवारों के पाशुरों में नायिका की माँ सुनाती है।

7. 9. आत्मनिवेदनासक्ति :–

"आत्म निवेदन" का अर्थ है आत्मा को भगवद् कैंकर्य के लिए निवेदन करना। अर्थात् भगवान के लिए पूर्ण रूप से समर्पित करना। अपना सब कुछ भगवान के लिए छोडना ही आत्म निवेदनासक्ति है। यह भक्ति की चरम स्थिति है। इसका दूसरा नाम है शरणागति (या) प्रपत्ति।

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण प्रपत्तिवाद पर बल देते हुए कहते हैं "हे अर्जुन पूर्ण मन से भगवान को अर्पित हो जाओ। उसकी शरण में जाओ। उनके अनुग्रह से परमशांति प्राप्त करके शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति होगी।" (137)

"सभी कर्मों को ईश्वर को अर्पित करके एकाग्र मन से श्रीकृष्ण के ध्यान करेंगे वे मुत्यु रूपी संसार सागर से जल्दी पार करेंगे।" (138) अपने नवरत्न ग्रन्थ में वल्लभाचार्य कहते हैं "चित्त के उद्वेग को छोडकर हरि भगवान जो जो करें सो सो सब उसकी लीला है, ऐसा सोचते हुए, जल्दी चिन्ता का त्याग कर देना चाहिए। इसीलिए सब तरह से कृष्ण रक्षा करनेवाले है, मुझे कृष्ण की शरण में ही रहना है कहते रहना चाहिए।" (139)

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित आत्म निवेदनासक्ति :–

सूरदास अपने आराध्य श्रीकृष्ण के सामने सब कुछ समर्पण कर लेते हैं। उनका कहना है "हे प्रभु मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझ से कुछ भी किया नहीं जाता। मैं पाप कर्मों के भार से व्यस्त हूँ। आपके पतितपावन नाम लेकर

आपके द्वार पर खड़ा हूँ। अब तो आपकी शरण ही मेरा एकमात्र भरोसा है। शरण आये की लाज रखिए। (140)

मीरा कहती है कि आराध्य श्रीकृष्ण ही उसका एकमात्र सहारा है। वह उसीकी शरण में अपने को छोड देती है। वहीं उसका उद्धार करेगा। जग में उसका कोई और नहीं है। मीरा कहती है वहीं यम का फंदा काटकर उसकी रक्षा करेगा। (141)

सभी भक्त आलवार भगवान श्रीकृष्ण के लिए अंकित हो जाते हैं। सब कुछ उनको समर्पित करते है। नम्मालवार अपनी रचना "तिरुवन्दादि" में भगवान कृष्ण को सब कुछ मानकर कहते हैं "हे कृष्ण! तुम्हीं मेरे नायक हो मुझे जन्म दिया माँ भी तुम हो। बाप भी तुम हो। उपदेश दिये आचार्य भी तुम हो। कपट करने आयी पूजना का संहार किये कृष्ण। तुम मेरे मार्ग दर्शक हो।"(142) आलवारों में प्रमुख भक्त शिखामणि नम्मालवार श्रीकृष्ण को माँ, बाप, गुरु सब कुछ मानकर उन्हें अपने मार्गदर्शक के रूप में स्वीकारते हैं। वे श्रीकृष्ण की शरण में बलि बलि जाते हैं। इनका कहना है श्रीकृष्ण कुछ भी उसके लिए करेंगे चाहे उसकी अच्छाई या बुराई उसे स्वीकार्य है। उसे सिर्फ कृष्ण दर्शन की लालसा है। आगे वे कहते हैं "मेरे स्वामि! जीने के लिए रास्ता दिखाकर, मुझे बीच में आप छोड़ेगे? नीलमेघश्यामल रूप को दिखाकर मेरा कब उद्धार करेगा? मैं बहुत समय तक अज्ञानी बनकर रहा। मुझे तुम क्या करने की सोच में हो? तुम जो कुछ भी करोगे मैं उसे स्वीकार करूँगा। (143)

भूदत्तु आलवार भगवान की शरण में जाते हुए कहते हैं "हे भगवान! अपने कृपाकटाक्ष हम पर डालकर, हमारे जैसे अज्ञानी लोगों को ज्ञान दिया। तुम्हारे सुन्दर पादारविंद को छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जाऊँगा। मेरे प्राण सब कुछ तुम्हारे चरणारविंद में समर्पित हैं।" (144)

सभी आलवारों ने अपने आराध्य के प्रति अपनी आत्मनिवेदनासक्ति भक्ति को प्रकट किया है। वे अपने तन, मन, धन एवं संपूर्ण कार्यों को भगवान को अर्पित करते हैं।

7.10. तन्मयासक्ति :-

भक्त भगवान की लीलाओं को, चेष्टाओं को, कृपा को, उसके रूप को देखकर तन्मय होकर उसके प्रति भक्ति रखता है, वहीं तन्मयासक्ति है। भक्ति की परवशता में तन्मय होकर भक्त अपना सुध बुध खो बैठता है। वहीं भक्ति की तन्मयाता है, परवशता है, पागलपन है, विह्वलता भी।

श्रीमद् भगवद्गीता में ऐसे भक्तों का उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्ण कहते है "मेरे भक्त 'मद्गतप्राण' होते है और मेरे बारे में बोलते हुए सन्तुष्ट होते हैं।"(145) अर्थात् अपने प्राण सहित अर्पण करते है।

भागवत में प्रह्लाद के माध्यम से हम तन्मयासक्ति भक्ति को देखते हैं। विष्णु प्रेम में वह सदा तन्मय होता रहता। खाते, पीते, सोते, जागते, फिरते, चलते सदा वह विष्णु की चिंता में परवशता में तन्मय हो जाता। (146) नारद भक्ति सूत्र में तन्मय भक्तों का उल्लेख मिलता है। (147)

हिंदी कृष्ण भक्त एवं आलवारों द्वारा वर्णित तन्मयासक्ति :-

हिंदी के सभी कवि अपने आराध्य की चेष्टाओं पर मुग्ध हैं। अष्टछापों ने गोपियों के माध्यम से अपनी तन्मयासक्ति को प्रकट किया। इसका वर्णन निर्गुण कवियों ने भी किया है। (148) भक्ति की तन्मयता के कारण भगवान का नाम लेकर भक्त अपने में भगवान को देखकर मुग्ध होता है। सूर की गोपी दही बेचते समय (149) वे "दही लेहुरी" के स्थान पर "गोपाल लेहुरी" गोपाल लेहुरी कहने लगती है।

आलवारों ने भी अपनी भक्ति में तन्मयासक्ति को प्रकट किया है। पेरियालवार ने यशोदा के माध्यम से अपनी तन्मयासक्ति को प्रकट की। श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य को देखकर बड़ी तन्मयाता के साथ मॉ यशोदा उसकी मॉ होने के नाते गर्व का अनुभव भी करती है। इस भूलोक में एकमात्र अपुरूप सौंदर्य से पूर्ण सत्पुत्र को जन्म देनेवाली मां के रूप में अपने को महसूस करती है। तन्मयासक्ति पेरियालवार द्वारा चित्रित यशोदा में पूर्ण रूप से मिलती है। (150) गोचरण करके आनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर तन्मय होकर कहती है "हे नारियाँ कुंडलों में शोभित लालरंग के फूलों को धारण करके, वस्त्र को पकडे हुए रेशमी कटि बंध, मोतियों की मालाओं को धारण करके बछडों के पीछे आनेवाले नीलमेघश्यामल श्रीकृष्ण के सौंदर्य को आकर देखिए। भूलोक में सत्पुत्र को जन्म देनेवाली एकमात्र स्त्री मैं हूँ। कोई और नहीं। (151)

नम्मोलवार तिरुवायुमोलि में कहते हैं "श्रीकृष्ण की शारीरिक कान्ति का रंग नीला है। उसके मधुर अधर बिंब फल है। उसका मुँह अत्यंत मधुर है। वह फल की तरह दीखता है। मुझे लूटकर लुभानेवाली उसकी शोभा है। मैं जहाँ फिरूँ वहाँ मेरी जान को उसकी शोभा खींच लेती है। मैं उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर तन्मय हो रहा हूँ।(152) नम्मालवार तो श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य को देखकर उनकी महिमाओं को सुनकर तन्मय हो जाते है। श्रीकृष्ण के अपार सौंदर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। उसकी खूबसूरती उसे लुभा रही है। सभी आलवारों ने अपनी तन्मयासक्ति को यथेष्ट रूप से प्रकट किया है।

7.11. <u>परम विरहासक्ति</u> :–

अपने प्रिय के वियोग में प्रिया (या) प्रिया के वियोग में प्रिय तड़पना ही विरह व्यथा है। आत्मा रूपी नायिका उस अलौकिक परमात्मा का`नायक मानकर उनके विरह में तड़पना ही परम विरहासक्ति भक्ति है। निर्गुणवादियों ने भी इस प्रकार की विरह दशा का वर्णन किया। कबीर की विरहिणी नायिका के लिए "न

वासुरी सुख न रैन सुख।" कबीरदास की आत्मा उस परमात्मा से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा से राह देखती है।(153)

विरहिणी की अवस्था इस प्रकार है :–

"अँखडियाँ झाला पड़या पंथ निहरि निहारि
जीभडियाँ छाला पड़या राम पुकारि पुकारि।

सभी कृष्ण भक्त कवियों ने विरह का वर्णन किया है। भागवताकार ने गोपियों की हृदय स्पर्शी विरह दशा को खींचा है। भागवताकार ने दशम स्कंध के तीसवें अध्याय में गोपियों की कृष्ण के विरह में कातर एवं दयनीय दशा का चित्रण किया। प्रेम की मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्ण को वन में ढूँढकर धक्कर वन वन से झाडी झाडी में कृष्ण का समाचार पूछने लगी। कुछ दूर जाने पर कृष्ण के चरण चिह्न देखकर उसके साथ ही एक व्रज युवती के चरण चिह्न भी देखकर सोचा अवश्य ही वह भगवान की आराधिका होगी। हमें छोड़कर उसे एकान्त में ले गये। (154) भागवत में विरह के अनेक प्रसंग है।

नारद भक्ति सूत्र में एकादश भक्तियों के अंतर्गत सूत्रकार ने विरह को माना है।

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित परमविरहासक्ति :–

सूरदास रचित भ्रमरगीत विरह वर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनकी गोपियाँ उद्धव से कहती है "निसि दिन दरसत नैन हमारे"। सूर कहना है जहाँ जहाँ विरह दुःख नहीं लगेगा वहाँ प्रेम नहीं है। (155) सूर की गोपियाँ अपनी विरह वेदना को इस प्रकार प्रकट करती है "हे नाथ कृष्ण अनाथिन की याद कीजिए। गोपाल के बिना गोपी, ग्वाल सभी दीन, म्लान होकर दिन दिन क्षीण हो रहे है। उनके नयनों से बाढ़ की तरह अश्रुधारा बहाकर गोकुल को डुबा रहा है।

इतना विनती कर सकते आप कृष्ण पत्र लिखिए श्रीकृष्ण के चरणकमल दर्शन रूपी नाव देकर कृपा कीजिए क्योंकि आप करुणा के सागर है। गोपियों के माध्यम से सूर अपनी आशा प्रकट करते हैं "एक ही आशा है मिलन की, एक बार जरा मथुरा से गोकुल आइए।(156)

नंददास की विरहिणी नायिका इस प्रकार अपनी व्यथा को प्रकट करती है "विरह के बिना प्रेम की खोज नहीं। बिना जाने इन नयनों में (अनायास से) अश्रु रोज आ जाते है। मनोहर श्याम बिछुड़कर चले गये तब से मन्मथ हमारा शत्रु बन गया।(157)

माधुर्योपासिका मीरा का कहना है विरह दर्द दो ही पहचान सकते एक तो जो भोग रहा है, दूसरा जो उसे तड़प रहा है। (158)

इस प्रकार हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य में विरह भावना से पूर्ण भक्ति यत्र तत्र मिलती है।

माधुर्योपासिका आण्डाल अपनी रचना "नाच्चियार तिरुमोलि" में अनुभूतिपरक विरह दशा का वर्णन करती है। वह कोयल, मेघ, सागर के माध्यम से अपने विरह सन्देश कृष्ण को भेजती है। विरहिणी कोयल को संबोधित करके इस प्रकार कहती है "हे कोयल! श्रीकृष्ण की याद में रह रहकर मेरी हड्डियाँ जल गयी। पलके भी मूँदती नहीं। बहुत काल से कृष्णवियोग रूपी सागर में डूबती जा रही हूँ। मुझे वैकण्ठवासी का मिलन रूपी नाव नहीं मिली है। प्रेमी–प्रेमिकाओं के विछुडेपन तुम्हें मालूम ही होगा सुनहले वर्णवाले विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण इधर आने के लिए बुलाते हुए गाओ।" (159) आण्डाल श्रीकृष्ण के शंख पांचजन्य से जलती है। उनका कहना है श्रीकृष्ण के सदा समीप रहने के कारण उसके अधरस्वादन करने के कारण आण्डाल का स्त्री हृदय उस पर ईर्ष्या करता है।(160)

आण्डाल विरह की अवस्थाओं का वर्णन, विरहिणी नायिका की सेवा सुश्रषा करने को कहती है। विरह विदग्धा नायिका कहती है "कंस का वध किये काले धनुष" जैसी भृकुटियों से शोभित श्रीकृष्ण के कृपाकटाक्ष के वियोग की तीक्षणता से मेरा हृदय दग्ध हो गया। मुझे आश्वासन देने के लिए वह अब तक नहीं आया। उन के हृदय पर लगायी हुई तुलसी मालाओं को लेकर मेरे हृदय पर लगाकर ताप मिटाइए।" (161) नाच्चियार तिरुमोऴि में विरहवर्णन उस ताप को मिटानेवाला शैत्योपचार संबंधी अनेक पाशुर लब्ध है।(162)

वियोग श्रृंगार :

'कोयल' के माध्यम से विरह विदग्धा नायिका अपनी स्थिति को नायक से बतलाने की प्रार्थना करती है। साहित्य में विरह की दस अवस्थाएँ बतायी गयी है। वे हैं – अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याथि, जडता, मृत्यु। इन सारी अवस्थाओं का चित्रण यत्र तत्र आण्डाल ने किया। आण्डाल द्वारा चित्रित नायिका अपनी विरह वेदना को कोयल से इस प्रकार कहती है – "ओह कोयल मेरे स्वामी श्रीकृष्ण की याद में मेरी हड्डियाँ भी द्रवित हो गयीं। उसको देखने की लालसा के कारण पलकें बंद ही नहीं होतीं। बहुत समय के वियोग के दुःख सागर में फँसी हुई हैं। विष्णु के अवतारी श्रीकृष्ण रूपी नाव के बिना तड़प रही हूँ।" (163) इसी प्रकार की भावना कबीरदास की विरह भावना में मिलती है। माधुर्यभक्ति के अंतर्गत आनेवाली प्रवृत्तियों में एक और है 'ईर्ष्या। प्रियतम अपने पास न रहने के कारण प्रियतम के पास सदा रहनेवाली चीजों को देखकर उनसे जलना। माधुर्य भक्ति की विशेषता यह है कि माधुर्य भक्त प्रेम की चरमावस्था में भगवान पर अधिकार करने में समर्थ होते हैं। आण्डाल भी वैसी है। आण्डाल प्रेम की अधिकारिणी है। संत कवियों की तरह आण्डाल भी अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से सपने में ब्याह रचती हैं। आण्डाल की आत्मा रूपी नायिका 'पांच जन्य'

शंख को धन्य मानती है। (164) क्योंकि वह सदा प्रिय के पास रहता है। उससे इसलिए जलती है कि वह श्रीकृष्ण के अधरों पर बैठनेवाली वस्तु हैं। (165)

प्रकृति का उद्दीपक रूप

आण्डाल की विरहविदग्धा नायिका प्रकृति के उद्दीपक रूप के माध्यम से अपनी विरह व्यथा प्रकट करती है। विरहिणी नायिका व्याकुल होकर मेघों से अपनी विरह वेदना की जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत करती है। (166) प्रेम रोग से पीडित नायिका वर्णन (167) विरह ताप से पीड़ित नायिका की सेवा सुश्रूषा आदि में अतिश्रृंगारिकता का चित्रण मिलता है। (168)

आण्डाल की रचनाओं में रहस्यवाद :

प्रेमासक्ति और रहस्यमयता आदि माधुर्य भक्ति में मिलते हैं क्योंकि इसमें विरहानुभूतियों की अभिव्यक्तियाँ ज्यादा है। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'साधना क्षेत्र में जो ब्रह्म है, साहित्य क्षेत्र में वहीं रहस्यवाद है' । रहस्यवाद ब्रह्म से आत्मा के तादात्म्य का प्रकाशन है। (169) आण्डाल साहित्य में भावनात्मक रहस्यवाद पूर्णरूप से देखने को मिलता है। जो भावना अनुभूति परक है लेकिन अवर्णनीय है वहीं रहस्यवाद है, अंग्रेजी शब्द (Mysticism) का पर्यायवाची शब्द। विरह ताप से जलनेवाली नायिका कहती हैं 'अब शर्माने से कोई लाभ नहीं। सारे लोगों को मेरी स्थिति (वियोग स्थिति) के बारे में मालूम हो गया। देर न कीजिए। इस विरह दुःख की एक मात्र दवा है प्रियमिलन। इसीलिए जल्दी मुझे ले जाइए। (170) नायिका की स्थिति अवर्णनीय है, अकथनीय है, असंप्रेषित है। इस प्रकार आण्डाल पूर्ण रूप से माधुर्योपासिका है।

तिरुमंगै आलवार ने भी विरह वर्णन के अंतर्गत सूफ़ी कवि जायसी जैसे अति नग्न घोर श्रृंगारिकता का अतिशय वर्णन किया है। वे अपनी रचना सिरिय तिरुमड़ल में विरह विदग्धा नायिका का वर्णत करते है। विरह विदग्धा नायिका

रूपी आत्मा अपने प्रियतम नायक श्रीकृष्ण के वियोग में तड़प रही है। कवि ने लौकिक श्रृंगार के माध्यम से अलौकिक श्रृंगार का वर्णन किया है। विरह विदग्धा नायिका श्रीकृष्ण से मिलने की आतुरता के कारण सुध बुध खो बैठती है। अपना भविष्य जानने की उत्सुकता से वह हाथ देखनेवालीको बुलाती है। इसके अंतर्गत कृष्ण लीलाएँ माखनचारी, कालिय मर्दन आदि प्रसंगों का वर्णन कवि करते हैं। इनके विरह वर्णन सूफ़ी कवियों द्वारा वर्णित नायिकाओं के विरह जैसे अतिशयता के साथ घोर श्रृंगारिकता से पूर्ण है। (171) नायिका का विरह इतना बह जाता है कि अपने प्रति उपेक्षा करनेवाले प्रियतम से रूठकर उसे भुलाने का प्रयास करती हुई अपने मन से कहती है 'हे मन। बस करो। मूर्ख मन। उनके लिए प्रतीक्षा करना बेकार है। (172) नायिका का दुःख अकथनीय है। (173) इस प्रकार इस रचना में माधुर्यभक्ति का पूर्ण रूप से पोषण हुआ है।

विरह विदग्धा नायिका की माँ अत्यंत वेदना के साथ कहती है "चंदन लेप एवं सार सहित मोतियों की मालाएँ इनके हृदय पर धारण करने पर भी उनको आग जैसा ताप दे रहा है। आकाश से आनेवाली चन्द्रमा की किरणें भी उसके ताप को बढ़ा रही है। वह रोगग्रस्ता हो गयी। सागर की लहरों की ध्वनि से भी वह पीड़ित है। शरीर पीला पड़ गया। चूडियाँ हाथों से गिर रही है। मेरी प्यारी की स्थिति देखो।(174) एक एक पल भी उसे लंबा लग रहा है। नायिका की तीव्र विरहावस्था का वर्णन इनके पाशुरों में मिलते हैं। (175) इनके अलावा नम्मालवार ने भी विरह वर्णन को विस्तृत रूप से प्रकट किया है।

8. हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार पाशुरों में *नवधा भक्ति* :

भगवान से करनेवाली नौ प्रकार की भक्ति पद्धतियों को 'नवधा–भक्ति' की संज्ञा दी गयी है। श्रीमद्भागवत् सप्तम स्कंध में प्रह्लाद चरित्र के अन्तर्गत श्रवण,

कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म–निवेदन रूपा नवधा भक्ति का उल्लेख हुआ है।" (176)

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित नवधा भक्ति

हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य के परम श्रेष्ठ कवि सूर ने भागवत् परक पुष्टि संप्रदाय के अनुसार नवधा भक्ति के साथ–साथ दशम 'प्रेम लक्षणा भक्ति' को भी जो वल्लभाचार्य जी के अनुसार नवधा भक्ति की साधना का फल है, मान्यता प्रदान की है। (177)

8.1. श्रवण :

श्रवण का अर्थ है 'सुनना'। भगवान की लीलाएँ, उनका यश आदि का सुनना – सुनाना ही श्रवण भक्ति है। (178) गुण श्रवण के पश्चात् ही श्रद्धा का उदय होता है। अतः भगवदाभिमुख सूर ने भी इसे भक्ति और ज्ञान–दायिका के रूप में स्वीकार किया है। (179) भगवन्नाम श्रवण विरहित जीवन को उन्होंने स्पष्टतः दुःख भाजन माना है। (180) आलवारों ने श्रवण की प्रधानता दी है। भक्त नम्मालवार तो सभी लोगों के मुँह से सिर्फ भगवद् लीलाओं को ही सुनना चाहता है। (181) उनका कहना त्रिभुवन को मापे वामन के यशोगान सभी को समझाते हुए कहियेगा ताकि अब सुन लें। आलवारों के पाशुरों में अलग–अलग प्रकार की भक्ति भावनाओं का उल्लेख नहीं मिलता। सभी आलवारों के प्रत्येक पाशुरों में नवधा भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है।

8. 2. कीर्तन :

भगवान के नाम, लीला, यश आदिको का गान करना 'कीर्तन' कहलाता है। भगवान की लीलाओं को, महिमाओं को राग, लय, ताल सहित मधुर स्वर में गाना ही कीर्तन है। कीर्तन की विशेषताएँ भारत में प्राचीनकाल से ही स्वीकार की गयी

हैं। (182) सूर स्वयं प्रारंभ में ही स्वीकारते है 'सूर सगुण लीला पद गाते'। इस भगवान्नाम गान द्वारा उन्हें अमित और सच्चे सुख की उपलब्धि होती है। अतः उनका इस ओर झुकाव स्वाभाविक ही है। (183) इसके अतिरिक्त श्रीनाथ मंदिर में वे कीर्तन गाया करते थे। अतः कीर्तन में इनकी स्वाभाविक अनुरक्ति प्रकट हुई हैं। नाम कीर्तन की महिमा वेद, उपनिषद्, योगदर्शन, मनुस्मृति, गीता, पुराण, आदि में वर्णित है। आलवारों ने भी कीर्तन पर जोर दिया। कलियुग में हरिनाम संकीर्तन का महत्व विशेषतः प्रतिपादित किया गया हैं भक्त कुलशेखर आलवार का कहना है "उनका मन पतली कमरवाली नारियों के सौंदर्य से मोहित हुए लोगों से मिलना नहीं चाहता। उनके आराध्य के प्रति रखा गया अमित प्यार में पागल होकर 'हे रंगनाथ' नाम–स्मरण करते हुए उनके गुणगान गाकर नाचेंगे क्योंकि वे उसके प्रति पागल हो गये है।"(184) सारे आलवार अपनी अनन्य भक्ति के कारण भक्ति की तन्मयता में भगवान के कीर्तन गाने में अपने को खो बैठे है। तिरुमंगै आलवार सभी को जीवन भर नमो नारायण शब्द का उच्चारण करते हुए रहने की सलाह देते हैं।(185)

8. 3. स्मरण :

भगवान के दिव्य नामों को, महिमाओं का स्मरण करके उनके नामों को बार–बार उच्चारण करना, ध्यान करना, 'स्मरण' कहलाता है। नामस्मरण के प्रतिपादक अनेक पद सूरसागर में उपलब्ध होते है। भगवन्नाम स्मरण अनेक बाधाओं का नाशक, भगवद शरणागति प्रदायक तथा भक्ति प्रदायक है। अतः सूर ने दिन–रात प्रभु स्मरण करने का निदेश दिय है। (186)

आलवारों में प्रसिद्ध आलवार पेरियालवार का कहना है(187) कि तिरुमलेश, नारायण नामोच्चारण के सिवा शुभ–अशुभ की बातें क्या है?, मैं भी नहीं जानता। मुझे निंदा–स्तुति करने की आदत भी नहीं। तुम्हारे ध्यान की एक पद्धति भी मुझे नहीं मालूम, लेकिन हर पल तेरा नाम 'नमो नारायण' को स्मरण करते हुए वैष्णव

बनकर तुम्हारे मंदिर में सदा रहूँगा। अपने तिरुमोऴि में पेरियालवार ने नाम–स्मरण की महिमाएँ पूर्ण रूप से गायी है। (188) सदा रात एवं दिन, हर पल नाम रटने की बात पर बल देते हैं। उनका कहना है कि भगवान के नाम को रट रटकर वे पागल हो गये। उनके अनेक नामों को लेकर, पुकार कर उन पर पेरियालवार बलि–बलि जाते हैं। तोडंरडिप्पोडि आलवार (189) तिरुप्पालवार, आण्डाल, तिरुमंगै आलवार आदि सभी ने नाम–स्मरण की महिमा को स्वीकार किया है। कुलशेखर आलवार की चिरकाल वांछा यही रही कि विष्णु के नाम–स्मरण को हर दिन सभी भक्तों के साथ गाकर, तन्मयता से आँखों में से अश्रु बहाते हुए उसके गुणगान करने में विह्वल होकर नाचना। यह नाम स्मरण भक्ति की चरमावस्था है। (190)

8. 4. पादसेवन :

भागवत के अनुसार श्रीहरि के चरण अमित महिमाशाली है और वे प्रत्येक अघटित घटना को घटित कर सकने में समर्थ है। अतः सूर ने उसी रूप को अपनाते हुए सूर सागर का आरंभ 'चरण कमल बन्दौ हरिराई' से किया है। (191) सारे आलवारों द्वारा प्रतिपादित भक्ति दास्यभक्ति होने के कारण नालायिर दिव्य प्रबन्धम् के प्रत्येक पाशुर में पाद–सेवन की महिमा पूर्ण रूप से मिलती है। पोयगै आलवार अपनी रचना 'मुदल तिरुवन्दादि' में इस प्रकार पाद–सेवन करते हैं।(192) ''गजेन्द्र की रक्षा करनेवाले, शेषसाई महाविष्णु के चरणारविंद पर सुगंधित पुष्प चढ़ाकर उसके पवित्र चरणारविंदों की अर्चना कीजिए। भक्त कुलशेखर आलवार(193) पाद–सेवन करने में एक कदम औरों से आगे है। उनका कहना है अपनी नायिका नप्पिन्नै के लिए सात बैलों के संहार किये श्रीकृष्ण, वराहमूर्ति, श्रीरामचंद्र आदि अवतारों को धारण किये श्रीहरि का स्मरण करने वाले भक्तों के चरणों के नीचे भगवान की महिमाओं को अश्रुसहित गाते हुए पड़कर रहूँगा। उन भक्तों की पद–धूलि को सिर पर लगाकर महाभाग्य मानूँगा। सारे आलवारों की

भक्ति में एक प्रकार की उन्मादावस्था से पूर्ण भावोद्‌गार है जो उनकी उत्कृष्ट दास्यभक्ति का उज्जवल प्रमाण है।

8. 5. वंदन

भगवान की वन्दना–साष्टांग प्रणाम भक्त के आत्म–समर्पण और दास्य की परिचायिका तथा पूज्य के महत्व प्रतिपादिका है। अतः सूर ने वन्दन भक्ति का स्वीकार किया है।(194) आलवारों की भक्ति भावना में वन्दना, पुष्पों से पूजा करना, अर्चना करना, आदि यथेष्ट रूप से विद्यमान है। आलवारों के भक्ति भाव में वैधी भक्ति के अंतर्गत आनेवाली सारी पद्धतियों का वर्णन मिलता है। सगुण भक्ति में प्रचलित वैदिक–अनुष्ठानों पर आधारित वैधी भक्ति को आलवारों के पाशुरों में यत्र–तत्र देख सकते हैं। भक्त शिखामणि नम्मालवार का कहना है "वन्दना भक्ति को आप सब आश्रित कीजिए। छः भक्ति नियमों के विवरण प्रदाता, असीम सद्‌गुण, आद्यान्त रहित, भगवान विष्णु से निष्काम भावना से पूर्ण वन्दना भक्ति कीजिए। (195)

आलवारों की भक्ति पद्धतियाँ हृदय के भावोद्‌गारों पर आधारित होने के कारण परम अनुभूति परक है।

8. 6. अर्चन :

श्रद्धा सहित भगवान की उपासना करना ही अर्चन भक्ति है। 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' में विविध उपचारों के साथ की जानेवाली पूजा को 'अर्चन' माना गया है।(196) हिंदी के कृष्ण भक्त कवि सूर ने अगणित भावोपचारों द्वारा अपने आराध्य का अर्चन किया है। (197)

पाद सेवन, वंदन और अर्चन ये तीनों भक्ति साधन विशेषतः दास्य रूप से संबंध रखते हैं। पुष्टि संप्रदाय की सेवा–विधि में इनका विशेष महत्व है।

पाद–सेवन में मूर्तिपूजा, गुरुपूजा और भगवद् भक्त पूजा तीनों सम्मिलित है। इन पूजाओं के पश्चात् भक्त में दास्य भाव का आविर्भाव होता है और भक्त क्रमशः मानसिक पाद सेवन की कोटि तक जाकर भगवान के दिव्य चरणों की सेवा का अधिकारी बन जाता है।

वल्लभ संप्रदाय में 'अर्चन' का विशेष महत्व है। इस संप्रदाय में अष्टयाम पूजा में 'अर्चन' के पृथक–पृथक विधान हैं।(198) अतः 'अर्चन' के विधान के अनुसार सूर ने श्याम के स्वरूप विभिन्न रूप से वर्णन किया है।

8. 7. <u>दास्य</u> :

दास भाव से की जानेवाली भगवद् अर्चना 'दास्यभक्ति' कही जाती है। वैराग्य, दैन्य और विनय दास्य भक्ति के साधन है और शान्ता भक्ति के पोषक। इसके अन्तर्गत भक्त अपनी हीनता और भगवान की अहैतुकी कृपा और भक्त वत्सलता का परिचय देता है। श्री वल्लभाचार्य जी के 'अंतःकरण प्रबोध' में दास्यभक्ति का महत्व प्रतिपादित हुआ है तदनुसार सूर के विनय पदों के अतिरिक्त 'प्रह्लाद–चरित्र' चीरहरण, कालिय–दमन, गोवर्द्धन–लीला आदि प्रसंगों में भगवान की भक्त वत्सलता और भक्त के दैन्य का साथ–साथ वर्णन कर सूर ने दास्य भक्ति का महत्व प्रतिपादन किया है। उन्हें अपने कर्मों के प्रति ग्लानि और प्रभु की भक्त–वत्सलता का पूरा पूरा आभास है। वे भाव–पीड़ा से पीड़ित होकर उससे मुक्ति पाने के लिए प्रभु से मात्र प्रार्थना ही नहीं करते(199) अपितु सर्वात्मना आत्म समर्पण भी कर देते है। समर्पण ही तो सच्ची भक्ति है।

दीनता का भाव ही भक्ति की चरमसीमा पर पहुँचानेवाला साधन है। अतः भक्त दीनता से पूर्ण होते है। दैन्य भाव में पगे भक्तों को अपने आराध्य से महान और अपने से हीन कोई नहीं दिखाई पड़ता। फलतः वे उसके सामने अपना हृदय खोल देते हैं। सूर ने भी यही किया है। (200) भक्त में भगवान को उपलंभ देने

की प्रवृत्ति भी परिस्थित्यानुसार जन्म लेती है। सूर भगवान को उपालम्भ ही नहीं देते अपितु भक्ति के आवेश में आकर यहाँ तक कह देते हैं कि "अब मैं नंगा होकर नाचना चाहता हूँ और तुम्हें बिना विरद किये नहीं रहूँगा।"(201)

वैष्णव संप्रदाय के अनुसार वर्णित विनय की सात भूमिकाओं का पालन किया है – दीनता(202), मानमर्षता(203), भयदर्शन(204) भर्त्सना(205), आश्वासन(206), मनोराज्य(207) और विचारणा(208), सारे आलवार अपने को भगवान विष्णु के दास मानते हुए जीवन–भर विष्णु भक्तों के दास बनकर रहना जीवन का महाभाग्य समझते हैं। भक्त शिखामणि नम्मालवार का कहना है "महाबलि को धोखा देकर तुमने तीन कदमों में त्रिलोक का आक्रमण किया, उसी प्रकार अनजाने में ही मेरे प्राणों में प्राण बनकर तुम्हारा कैंकर्य करता आ रहा हूँ।(209) आगे वे कहते हैं सप्त लोकों को कुक्षी (पेट) में रखकर रक्षा करनेवाले मेरे पिता मेरे प्राणों में मिले हुए तुम्हें मैं अपने प्राणों के अलावा क्या दूँ? मैं तुम्हारा हूँ, मेरे प्राण तुम्हारा है। इसीलिए मेरा सब कुछ तुम ही हो।(210) सारे आलवारों द्वारा प्रतिपादित भक्ति दास्य भक्ति ही है। 'दास्यासक्ति' के संदर्भ में इसका विस्तार से वर्णन दिया गया है।

8. 8. <u>सख्य</u> :

पुष्टिमार्ग में सख्य भाव की भक्ति का विशेष महत्व है। सूरसागर में पुष्टिमार्ग के प्रभाव से लिखे गये सूर के पदों में सख्य भक्ति के दर्शन होते हैं। सूरदास की सख्य भक्ति में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर तो मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबंधों का निर्वाह किया गया है तथा दूसरी ओर भक्तिभाव की पूर्ण तल्लीनता तथा भावात्मकता की अनुभूति भी की गयी है। सूरसागर के सूक्ष्म अध्ययन से यह विदित होता है कि सूरसागर का अधिकांश भाग सख्याभाव से गाया गया है। 'सख्य–भाव' में भक्त भगवान की प्रत्येक लीला में भाग लेता है।

उसे भगवान के प्रति अनन्य मित्र का भाव हो जाता है और वह उसके कारण औचित्य की सीमा का भी उल्लंघन यदा–कदा कर जाता है।(211) इसका अर्थ यह नहीं कि सूर ने इन पदों में विलासिता भर दी है। वास्तविकता यह है कि सूर ने एक अलौकिक व्यक्ति की लौकिक लीला को मित्र रूप में चित्रत किया है। उनकी इस प्रकार सख्य भाव की भक्ति दशम स्कंध में व्यापक रूप से मिलती है। सूर ने मित्र भाव से श्रीकृष्ण के संयोग और वियोग दोनों का वर्णन किया है।(212)

आलवार के दिव्य प्रबंधम् में हम सख्यभक्ति को पूर्ण रूप से नहीं देख सकते। इसका कारण यह है कि आलवार अपने को भगवान के दास के रूप में स्वीकार करते हैं। इसीलिए दास्यासक्ति की प्रधानता दी है। वैसे तो पेरियालवार कुलशेखर आलवार ने श्रीकृष्ण की गोचरण लीला का वर्णन किया है। वहाँ भी माधुर्य रस से पूर्ण भक्ति ही मिलती है।(213) हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों की तरह तमिल आलवारों में सख्य भक्ति नहीं मिलती है क्योंकि आलवार, अपने को पूर्ण रूप से भगवान को अर्पित कर दिये थे।

8. 9. आत्म निवेदन :

आत्म–निवेदन भक्ति भाव की चरमिति है। इसी का एक रूप है शरणागति। सूरदास की भक्ति साधना में आत्म निवेदन या शरणागति का अपूर्व महत्व है। विनय के पदों में आत्म निवेदन के परिचायक अनेक पद हैं।(214) सूर ने जाति, कुल, विद्य आदि का अभिमान त्याग कर भगवान को अनन्य भाव से भजा है और उन्हीं चरणों में आत्म निवेदन किया है। (215)

आलवारों की भक्ति में पूर्ण रूप से आत्म निवेदन मिलता है क्यों कि मूल में वे सब दास्य भक्त है। तोंडरडिप्पोडि आलवार का कहना है (216) "तुलसी

मालाओं से सुशोभित, कावेरी नदी तट के पास रहनेवाले रंगनाथ! मेरा मन पवित्र नहीं है क्योंकि मैं पापी हूँ। मुँह में सच्ची बातें नहीं है। क्रोध के वश में आकर कटुवचन बोल रहा हूँ। मैं अधम हूँ, इसलिए तुम्हारे सिवा कोई मेरा उद्धार नहीं कर सकता।

भक्त आलवार का हृदय भगवान के चरणारविंदों पर बलि बलि हो जाता है। आलवारों के पाशुरों में संपूर्ण नवधा भक्ति का पोषण हुआ है। भक्ताग्रेसर नम्मालवार का कहना(217) है अपनी लीलाओं से देवताओं को मुग्ध करनेवाले आसमान से विशाल, नीलमेघश्यामल, त्रिलोकों को मापे वामन मूर्ति के चरणारविंद को मन में ध्यान करूँगा। जीभ से इसके गुणगान करूँगा। पूर्ण भक्ति से, प्रेम से उसका आलिंगन करूँगा, चरणों पर गिरकर वंदना करूँगा। कुलशेखर आलवार, पोयगे आलवार ने संपूर्ण समर्पण के साथ नवधा–भक्ति का पालन किया है।

निष्कर्ष :

इस अध्याय में हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवार पाशुरों में चित्रत भक्ति के विविध रूपों पर प्रकाश डाला गया है। भगवान के प्रति रखा गया श्रद्धा से पूर्ण गौरवभाव जिसमें असीम, पवित्र निष्काम प्रेमभावना है, उसी का दूसरा नाम भक्ति है। इन दोनों साहित्यों का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भक्ति वह मेरुदण्ड है,जो मनुष्यों को दुःखों से विमुक्ति प्रदान करके आत्मानंद देनेवाला है। हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य एवं तमिल आलवारों के पाशुरों में नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित 11 प्रकार की भक्ति पद्धतियाँ, भागवत् में वर्णित नवधा भक्ति पूर्ण रूप से प्राप्त है। हिंदी कृष्ण भक्त साहित्यकारों एवं तमिल आलवारों के पाशुरों का मूल आधार खासकर इनके द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण लीलाओं का मूलाधार श्रीमद् भागवत् ही है। भक्ति परवश्ता में इन दोनों ने शब्दोपासना, नादोपासना भी करके भगवद्ध्यान में डूब गये।

इन दोनों ने वैधी भक्ति में वर्णित पारंपरिक पूजा पद्धतियों का वर्णन किया है। भगवान पर अत्यंत प्रेम के साथ फूल चढ़ाकर उनके नाम स्मरण करते हुए, निश्चल मन से उनकी मूर्ति को आरती एवं नैवेद्य चढ़ाना आदि पूजा–पद्धतियों को दोनों ने वर्णन किया है। भागवत् में नवधा भक्ति के अंतर्गत भगवान के नाम का स्मरण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन करना, पादसेवन करना, दास्य–भक्ति, साख्यभक्ति के साथ आत्म निवेदन आदि भक्ति इनके साहित्य में यथेष्ट रूप से विद्यमान है, जिनकी संज्ञा नारदभक्ति सूत्र में 'एकादश भक्ति' के नाम से की गयी है। दास्य, साख्य, आत्म–निवेदन आदि रागात्मक भक्ति के अंतर्गत आती है जबकि बाकी अन्य प्रकार की भक्ति वैधी भक्ति के अंतर्गत आती है। आलवारों ने दोनों का वर्णन अपने भावोद्गारों के साथ प्रस्तुत किया। हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवारों में प्राप्त दास्य भक्ति नारद भक्ति सूत्रों के अंतर्गत आनेवाली एकादश भक्ति में मिलती है। नारद भक्ति क्षेत्र के चतुर्थ अध्याय में 'भगवान के प्रति रखनेवाला प्रेम वैसा ही होना चाहिए जो एक दास स्वामी के प्रति रखता है।

आलवारों के पाशुरों में वर्णित भक्ति पद्धतियों को देखने के बाद यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि –

⇒1. प्रत्येक आलवार पाशुरों में भाव भक्ति यथेष्ट रूप से प्राप्त है।

⇒2. प्रत्येक आलवार के पाशुरों में भगवद्भक्ति के पीछे भी एक सोद्धेश्य रहा है जो भक्तजनों के लिए अनुष्ठान योग्य है। उदः 'आण्डाल' की रचना तिरुप्पावै, जो जागरण गीत है। तिरुप्पावै का उद्धेश्य यही है कि 'सांसारिक माया रूपी निद्रा से पीड़ित जीव को कृष्ण प्रेम रूपी सुमधुर अमृत गान से जगाना।

⇒3. लौकिकता के माध्यम से उस अलौकिक भगवान को प्राप्त करना आलवारों में प्रमुख पेरियालवार की वात्सल्य भक्ति अन्य भक्तों की भक्ति से

भी एक कदम आगे हैं। उन्होंने पिल्लै तमिल नामक एवं ख़ास शैली को अपना कर अपनी वात्सल्य भक्ति भावना की प्रकट की। 'पिल्लै' का मतलब है 'शिशु' अपने प्रियतम परमात्मा के लिए उन्होंने एक विशेष सुलभ शैली का ही प्रवर्तन किया है। श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर गोचरण तक की लीलाओं का प्रत्येक खण्ड में विभाजित करके वर्णन किया है। इतना ही नहीं जन्म से एक साल तक के समय को वयो खण्डों के रूप में विभाजित करके प्रत्येक खण्ड में होनेवाली बाल सुलभ चेष्टाओं का वर्णन किया है।

⇒4. आलवारों के प्रबंधम् में हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य की तरह सख्य भक्ति को पूर्ण रूप से नहीं देख सकते हैं, इसका एकमात्र कारण यही है कि सारे आलवारों ने अपने को भगवान का दास मानने के कारण दास्य भक्ति से ही उनका साहित्य भर गया है।

⇒5. हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य में वात्सल्य वर्णन यशोदा के माध्यम से पूर्ण रूप से ब्रज की गोपियों के माध्यम से अंशतः मिलता है। तमिल के वात्सल्य वर्णन यशोदा एवं देवकी दोनों के माध्यम से पेरियालवार एवं कुलशेखर आलवार ने करवाया। एक ओर श्रीकृष्ण की नटखट चेष्टाओं को देखकर संतोष, गर्व के साथ यशोदा पुलकित होती है तो दूसरी ओर कारावास में रहनेवाली देवकी श्रीकृष्ण की बाल–लीलाओं की कल्पना करके, अंत में यशोदा को बडभागी के रूप में अपने को अभागिन मानकर खुद को कोसती है। इनके वर्णन में वात्सल्य एवं शोक रस का अद्‌भुत, अनुपम संगम देखने को मिलता है। यह साहित्यिक की नयी प्रवृत्ति भी है।

⇒6. कांतासक्ति या प्रेममाधुर्य भक्ति के वर्णन में हिंदी कृष्ण भक्त एवं तमिल आलवारों में ज़्यादा समनाताएँ होने पर भी दक्षिण के आलवारों ने एक नई शैली का परिचय दिया। हालाँकि दोनों वर्णन कृष्ण विरह पर होने पर

भी पेरियालवार ने उसका वर्णन गोपी की माँ के द्वारा प्रकट करवाया। कृष्ण प्रेम में विह्वल हुई अपनी बेटी को देखकर उसकी माँ संवेदना प्रकट करती हैं। पेरियालवार द्वारा वर्णित गोपी की माँ सविस्तार से यह बताती है कि उसकी बेटी कृष्ण प्रेम में कैसे पागल हुई है।

⇒7. हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य में नायिका अपनी विरह–वेदना सखी से या प्रकृति को सुनाती है जबकि आलवारों की नायिका भी अपनी सखियों को सुनाती है और नायिका की माँ खुद अपनी बेटी की विरहानुभूति का वर्णन करती है।

⇒8. 'विरह–वर्णन' में आलवारों से हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों से भी ज़्यादा निर्गुण भक्ति साहित्यकारों से साम्य दीखता है। क्योंकि हिंदी निर्गुण संतों में लौकिक रिश्तों के माध्यम से अलौकिक परमात्मा से मिलने की जो तड़प है, उत्सुकता है, तरस है उन्हीं को हम आलवार के पाशुरों में देख सकते हैं।

⇒9. इसमें संदेह नहीं सूरदास की तरह पेरियालवार भी वात्सल्य रस का सम्राट है। पेरियालवार 'पल्लाण्डु' के माध्यम से अपना आशीर्वाद भी प्रकट किया है।

⇒10. तिरुमंगै आलवार के विरह–वर्णन हिंदी के सूफी कवि जायसी के अति नग्न घोर श्रृंगारिकता से पूर्ण विरह वर्णन से साम्य रखता है।

⇒11. भक्त नम्मालवार, कुलशेखर आलवार, तोंडरडिपोड़ि आलवार की रचनाओं में तीव्र भाव भक्ति रस की धारा बहती है उसमें नयनों से आनंदाश्रु बहाने की क्षमता है।

⇒12. सारे हिंदी कृष्ण भक्त कवि वल्लभ संप्रदाय के बद्धकवि है, इसीलिए उनके वर्णन में विधि–अनुष्ठान की गरिमा होती है। जबकि आलवारों में

हृदय के भावोद्गारों की तीव्रता। विधि निषेध, कर्मकांड पर बल न देकर आलवारों ने पवित्र प्रेम से पूर्ण प्रेमाभक्ति की प्रधानता दी है।

⇒13. नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित प्रेमाभक्ति की विशेषताएँ, भक्ति की एकादश आसक्तियों का वर्णन विशद रूप से आलवार साहित्य में यथेष्ट रूप से मिलते हैं।

⇒14. भक्ति के विविध पक्ष, जो भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों में उल्लिखित है उन सबका समावेश हिंदी के कृष्ण भक्ति साहित्य एवं तमिल के आलवार के पाशुरों में यथेष्ट रूप से हुआ है।

⇒15. नम्मालवार, तोंडरडिप्पोड़ि आलवार, कुलशेखर आलवार में भाव–भक्ति का अधिक वर्णन मिलता है।

⇒16. दोनों साहित्यकारों ने श्रीमद्भागवत के आधार पर अपनी कृष्णलीलाओं के प्रसंगों का उल्लेख किया है।

इस प्रकार भक्तिशास्त्रों में वर्णित भक्ति के विविध पक्षों को संदर्भ में रखकर हिंदी के कृष्ण भक्त कवि और आलवार के पाशुरों को सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद यह कह सकते है कि इन दोनों के कृष्ण भक्ति साहित्य में नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित भक्ति की एकादश पद्धतियाँ, भागवत में वर्णित 'नवधा भक्ति' पूर्ण रूप से प्राप्त है। दोनों ने अपने हृदयोद्गारों से यह सिद्ध कराया कि भक्ति एक मेरुदण्ड है, जो मनुष्य को दुःखों से विमुक्ति प्रदान करके आत्मानंद देता हैं।

संदर्भ

1. सर्वेश मनसो : भक्ति रसायन 1.3
2. चतुर्विधा भजन्तेमां, जना सुकृतिनोर्जुन
   आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ
   – भगवद्‌गीता – अध्याय – 7 श्लोक 16
3. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एक भक्तिर्विषियते।
   प्रियो हि ज्ञाजिपरऽत्यर्थः अहं स च मम प्रियः
   – भगवद्‌गीता – अध्याय – 7 श्लोक 16
4. श्रवणं कीर्त्तनं विष्णेःस्मरणं पादसेवनम।
   अर्चनं वन्दं दास्यं साख्यमात्मनिवेउनम्।।
   इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षण।
   क्रियते भगवत्यद्ध तन्यो धीतमुत्तमम्।।
   –श्लोक 23,24ण भागवातसप्त में स्कंध 29 पंचम अध्याय
5. भागवद तृतीय स्कंध अध्याय 26 श्लोक 7 से 24
6. भक्ति विवेचन पृष्ठ 31
7. भक्ति विवेचन पृष्ठ 33
8. भक्तः एकान्तिनो मुख्या : ना.भ.सू. 67
9. गुणमाहत्म्यासक्ति–रूपासिक्त–पूजासक्ति–स्मरणासक्ति–दास्यासक्ति–सख्यासक्ति–वात्सल्यासक्ति–कान्तासकित–आत्मनिवेदनासक्ति–तन्मयतासक्ति–परमविरहासक्ति– रूपा एकधा अपि एकादशधा भवति–ना.भ.सू. 82
10. सूर सागर, दशम स्कंध बे.प्रे.पृष्ठ 107
    जो अष्टछाप और हिंदी कृष्णभक्त कवि पृष्ठ 652 से उद्‌धृत है।
11. मीरासुधा सिन्धु – पृष्ठ 988–989
12. मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्ण देव शर्मा – पृष्ठ 295
13. गिरिधारी शरणधारी आया, राख्या किरणनिधान
    अजामिल अपराधी तारयाँ नीच सदाण।
    मीरा प्रभुरीशरण रावली, विणतांदीस्यो काण
    मीराबाई पदावली – डॉ. कृष्णदेव शर्मा – पृष्ठ 297

14. तिरुप्पावै–पाशुर–498–ना.दि.प्र. पृष्ठ 226
'ओरुत्ति मकणाय पिरन्दु ओर इरविल
ओरुति मकणाय ओलत्ति वलर
दरिक्किलेन आकि ताणु तींगु निणैत्त
करूत्ते पिलैपित्तु कंजन वरिट्रिल
नेरूप्पु एणं निण्र नेडुमले उण्णै
अरुतित्तु वन्दोम, परै तरुदियाकिल
तिरुत्तक सेलवमुम् याम पाड़ि
वस्तुमुंतीरन्दु मकिलन्दु एलोर एम्बावाय।

15. कोण्डदु उलकं कुरल अरुवाय कोलिरियाय
ओण तिरलोण मार्वत्तु उकिरवैत्तदु। उण्डुवंम
ताण कडन्द एलउलको तामरैक्कण माल, ओरू नाल
वान कटन्द्न सेयद वल़क्क–
इरण्डाम्तिरुवन्दादि–भूदत्तुआलवार
पाशुर 2199 ना.दि.प्र.पृ. 839

16. वही – पाशुर – 2210

17. ब्रह्माण्ड कोटिधामैकरोमकृप ....वरीयान बलवान प्रेमवश्य भक्तिरसामृतसिन्धु
इत्यादिभिमुणौ – 7–22, श्लोक पृ.सं. 330

18. (1) कलि कलियुग जह और नहिं, केवल केशव नाम।। (7)

(2) काम काज जनि भूलि मन, भजिये हरि अभिराम।। (25)

(3) कै कंचन ते प्रीति तजि, सदा कहो हरि नाम।। (28)
नंददास–मध्यकालीन कृष्ण काव्य – डॉ.कृष्णदेवझारी पृ.सं. 224

19. त्रिभुवनकमपं तमालवर्ण
रविकर गौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृत्तान नाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेडनवद्या।।
सुधितुरग रजोधूम्रविषवक्
कचलुलित श्रमवार्यलंकृतास्ये।
मम निश्चि शरैविभिद्यमान
त्वचि विलसत्कवचेउस्तु मृष्ण आत्मा।।
भागवत प्रथम स्कंध – 34

20. महाभारत अध्याय 22 श्लोक 15–31

21. किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तम्
इच्छामित्वां प्रष्टु महं तचैव
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्र बाहो भव विश्वमूर्ते – गीता– 11 – श्लोक 46

22. (अलि हां) कैसैं कहौं हरि के रूप रसहि।
अपने तन में भेद बहुत विधि, रसना जानै न नैन दसहिं।।
जिन देखत ने आहि बचन बिनु, जिहिं बचन दरतन न तिसहिं।
बिनु बानी से उमंगि प्रेमजल, सुमरि–सुमरि बा रूप जसहिं।।
बार–बार पछितात यहै कहि कहा करौ जो बिध न बसहिं।
सूर सकल अंगनि की यह गति, क्यों समझावै छपद पसुहिं
–सूरसागर 'दशमस्कंध' पद सं, 4152, ना.प्र.सभा,काशी
जो आलवार भक्तों का तमिलप्रबंध और हिंदी कृष्ण काव्य
– डॉ.मलिक मोहम्मद से उद्धृत है।

23. जब से मोहिं नंदनंदन दृष्टि पड़यो माई
तब से परलोक लोक कछुना सोहाई।
मारन की चन्द्रकला,सीस मुकुट सो है
....
गिरिधर के अंग अंग मीरा बलि जाई।
मीरा सुधासिन्धु – स्वामी आनंदस्वरूप – पदसंख्या 6 पृ.सं.510

24. सोभित कर नवनीत लिए – सूरदास

25. इरण्डाम् तिरुमोलि – पेरियालवार पाशुर 23 से 43 तक, पाद से लेकर केश तक (कृष्ण के रूप सौंदर्य)

26. तिरुमोलि – नम्मालवार पाशुर 1319

27. सोहत है चँदवा सिर मोर के, जैसिए सुन्दर पाग कसी है
तैसिए गोरज भाल बिराजति जैसी हिये बनमाल लसी है।
'रसखानी' बिलोकति बौरी भई, दग मॅदि कै ग्वारि पकारि हॅसी है।
खोली री घूंघट, खोलौं कहा, वह मूरति नेनति माझ बसी है।
–सुजान रसखान – पृ.सं. 21

28. कनकरत्न प्रभा कलित मैनट्टि
सुरुचिर मकुटंबु चूपवे कृष्ण
तलुकैन कुटिल कुंतल युक्त मैन
सललित फाल देहमु जुपु कृष्ण सुन्दर प्रफुल्लता–शोभितंबैन
कनुगवबेजुकु चक्कगा जूपु कृष्ण
मुदिरिन संपंगि मोग्ग कैवड़िन
कमनीयमगु नासिकमु चूपु कृष्ण

सन्निभ दंत द्वयमु
रमणीय बिंबाधरमु जूपु कृष्ण
मेरुगैन कुरि कुरि मीसंबुलमरु
सोगसैन चुबुकंबु जूपवे कृष्ण
पलमरु सिरुले जोपमुलीनुचुन्न
चेक्कुटटमुल मच्चिक जूपु कृष्ण
इन्नि चिह्नबुल इरवैन वदन
परिपूर्ण चन्द्रबिम्बमु जूपु कृष्ण
शंखचक्र गदाब्ज सहितंवुलगुचु
नोनरु चतुर्बाहुवुलु जूपु कृष्ण
चिरुतग वनमाला वक्षमु जूपु कृष्ण
ब्रह्माण्ड मण्डलंबु बहु कोटिलुडं
सूक्ष्ममगु उदरमु चूपु कृष्ण
....
म्रोक्कनगु पादमु चूपु कृष्ण ।
श्रीकृष्णमंजरी – वेंगमांबा 13–31 द्विपदा पृ.सं. 3–6

29. पेरियालवार तिरुमोलि : पाशुर 23–43 ना.दि.प्र. पृ.सं. 49

30. कोण्डाल वण्णनै कोवलनाय वेण्णेय
उण्डवायन यन उल्लम् कवरंदानै
अण्डरकोण अगिअरंगन् एन अमुदिनै
कण्डकणक्ल् मट्टु ओणि काणावे – पाशुर 936
अमलणादिपिराई – तिरुप्पाणलवार

31. कालाम्भोधरनी लाङ्ग कनकांबर धारिणीम्
....
दिव्यैप्रबन्धैः सानंदं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्
– श्रीकृष्णप्रेमि महाप्रभु, विरचित श्री वैष्णव संहिता (भाग 1)
श्लोक 22 से 25 तक

32. नाच्चियार तिरुमोलि आण्डाल पाशुर – 640 ना.दि.प्र. पृ.सं.279

33. नाच्चियार तिरुमोलि – पाशुर 637–646, ना.दि.प्र. पृ.सं.277–279

34. तिरुमंगै आलवार – पाशुर 1763

35. वहीं पाशुर 1758–1767, ना.दि.प्र. पृ.सं. 683–687

i). पायुमोलि नी एनक्क पार्क्कुम विलि़ नी एनक्कु तोयुम् मधु नी यणक्कु तुंबियड़ि ना उणक्क दाम कण्णम्मा

ii) चुट्टुम विलि़च्चुटेट

iii) वाय उरैक्क वरुकुदिल्लै

— सुब्रह्मण्य भारती — कण्णम्माएनकादली — पृ.सं. 307

36. bhakthi is of 2 kinds. The Vaideeka Bhakthi and the Prema Bhakthi. To confirm to the injunctions in the scripture, to chant the name of the Lord as many times as prescribed, to fast and pray to go on pilgrimage, to perform ritualistic worship with the aid of the enjoined materials (pooja) – all these belong to the Vaideeka Bhakthi – Ramakrishna paramahansa – The Bhagavad Geetha – page 668

37. श्रवणं कीर्तनं विष्णोःस्मरर्ण पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मानिवेदनम् — 7–5–23, भागवत

38. पूजादिव्यनुरागः इति पाराशर्यः ना.भ.सू. 16–27–7

39. पत्रं पुष्पं फलं तोयं या म भकल्या प्रयच्छाति — गीता

40. अर्चनं तूपचारणं स्याम्नत्रोप पादनम्
परिचर्य्या तु सेवोपकरणादि परिक्रिया
— श्रीहरि भक्ति रसामृत सिंधु, पूर्व विभाग, लहरी — 2 श्लोक, 27

41. अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः 2
— भक्ति वर्द्धिनी, षोडश ग्रन्थ भट्टरमानाय शर्मा श्लोक 2 पृ. 72

42. History of Dharma – Shastra – P.V.Kane, Page 711

43. दि वैदिक एज़–डा.रमेशचंद्रमजुमदार — पृ. 160

44. यज्ञो वै विष्णुः यजुर्वेद 22/20

45. यो वै विष्णुः स यज्ञः शतपथ ब्रह्मण — 5/2/3/6

46. सूरसागर नवम स्कंध बे.प्रे.पृ. 60 अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय — पृ.573

47. हरि जू की आरती बनी
अति विचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी।
कच्छप अद्य आसन अनप अति डांडी शेष फनी
मही सराव सप्त सांगर धत बाती शेल घनी
रवि शशि ज्योति जगत परिपूरण हरत तितिर रजनी
उड़त फुल उडगन नभ अन्तर अर्जन घटा घनी
नारदांदि सनकादि प्रजापति सरनर असुर अनी
सूरदास सब प्रगट ध्यान में अति विचित्र सलनी,
सूरसागर द्वितीय स्कंध, पृ. 381

48. तिरुवासिरियमः नम्मालवार – पाशुर 2578 – ना.दि.प्र. पृ. 953

49. तिरुवायमोलि नम्मालवार पाशेर – पाशुर 2954 – वही– पृ. 1085

50. – वही – पाशुर 2925 – वही – पृ. 1075

51. – वही – पाशुर 2927, 2928

ओण्रू एणयल एण अरिवु अरुम्

....

नममुडै नाले, नालुम् निण्रु अडु नम पल़मै अम् ....
मालबदु वलमें।

52. मुदलतिरुवन्ददि – पोयगै–आलवार पाशुर सं 2146 – ना.दि.प्र. पृ. 821

53. नाच्चियार तिरुमोलि – पाशुर 507, 504, 505, 506 – वही – पृ. 229/231

54. An effective 'pass port' for attaing salvation is the constant recitation of the names of the Lord and Chanting His glory, No restriction of any kind is imposed on this method of liberation (Bhagavannama Sankeerthanam)

- The Hindu Speaks on religious Values- N.Ravi- P. 506

55. भागवत् एकादश स्कंध अध्याय – 2 श्लोक 40–41

56. ध्यानं रूपगुण क्रीडाा सेवादेः सृष्ठु चिन्तनम्

57. विषयान् ध्यायतयिचत्तं विषयोषु विषज्जते। लहरी मामनुस्मरतश्चितं मरुयेव श्रविलीयते। – भागवत 22 स्कंध, 24 अध्याय 27 श्लोक अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय – पृ. 566

58. – वही –

59. अनन्ययेत : सततं यो मां स्मरित नित्यशः
तस्याह सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः अध्याय 8, श्लोक 14

60. पेरुमाल तिरुमोलि – कुलशेखर पाशुर 648, ना.द्वि.प्र. पृ. 281

61. पेरुमाल तिरुमोलि – कुलशेखर पाशुर 654, 655

62. तिरुवायमोलि – नम्मालवार – पाशुर 3083, 3084 – ना.दि.प्र. पृ 1127
सिधिरण, सेरुय तामरै कण्णम् ऍष्रूएण्रू
इराप्पकगत वाय वेरी ....

63 हरि हरि हरि, तुमरो सबकोई

हरि हरि सुमिरत सब सुख होई,
रावरउक हरि गिनत न दोई जो गावे ताकि गति होई।
—सूरसागर द्वितीय स्कंध पद सं. 4323, ना.प्र. सभा, काशी

(1) हरि बिन सुख नहिं इहां न वहां
हरि हरि हरि समरो दिन रात, नातर जन्म अकारण जात
सौबातन की एक बात, सूर सुमरि हरि हरि हरि दिनरात
— सूरसागर द्वितीय स्कंध — पृ. 36

64. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय — पृ. 572—573

65. पेरियालवार तिरुमोलि पाशुर — 381—385

66. — वही — पाशुर 371 — 380

67. वाय् ओरु पक्कम .... परियालवार तिरुमोलि पाशुर 2379

68. तिरुमोऴि — पेरियालवार — पृ. 173, पाशुर 375

(1) अब मैं नाच्यों बहुत गोपाल
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय नंदेलाल
— सूरसागर प्रथम स्कंध — पृ. 12

(2) मीराबाई पदावली — डॉ.कृष्णदेव शर्मा — पृ. 232

69. पेरिय तिरुवन्दादि — नम्मालवार पाशुर 2671, ना.द्वि.प्र. पृ. 983

70. तिरुप्पावै — आण्डाल पाशुर संख्या 478, 480, 482, 485, 487, 488, 489

71. एल्ले इलंकिलिये — तिरुप्पावै — आण्डाल पाशुर — 488

72. तिरुमऴिचै आलवार — तिरुच्चंदवृत्तम् पाशुर 829

73. वहीं पाशुर — 854

74. पच्चैमामलै पोल मेनि पवल वाय कमल चेंकण
तोंडरडिप्पडि आलवार — पाशुर 873

75. कालाम्भोधरनी लाड.गं कनकांबर धारिणीम्
....
दिव्यैप्रबन्धै : सानंदं तुष्टुवु : पुरुषोत्तमम्
— श्रीकृष्णप्रेमि महाप्रभु विरचित श्रीवैष्णव संहिता (भाग—1)
श्लोक 22, 23,24,25

76. हिंदी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप—विकास, पृ. 177

77. विवके धैर्य भक्यादि हितस्य विशेषतः
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम।
सर्वसामर्थ्य सहितः सर्वत्रवाखिलार्थकृत्
शरणस्य समद्धार कृष्णं विज्ञापयाम्यहम – 20 – कृष्णाश्रय, षोड़शग्रंथ
भट्ट रमानाथ शर्मा– 68–69, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय,पृ.602

78. त्रिरुवभंगपूर्वकं नित्यदास नित्यकान्ता भजनात्मकं प्रेम कार्य प्रेमैव कार्यम्

11 ना.भ.सूत्र 66

79. भक्तिरसामृत सिन्धु – 2/5/23

80. हिंदी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप – विकास
– डॉ.तपेश्वरनाथ – पृ. 277

81. मानमर्षताः निरभिमान होकर इष्टदेव की शरण में जाना

82. हमें नंदनंदन मोललिये
....
सूरदास को और बड़ो सुख जूठनि खाह जिये – सूरसागर, प्रथम स्कंध
बे.प्रे. 17, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय – पृ. 603

83. कृपा अब कीजिए बलि जाएं
नाहिं मेरे और कोई चरण कमल बिनु ठाऊं
हौं असोच अकृत अपराधी सम्मुख होत लजाऊं
तुम कृपालु करुना निधि केशव अधम उधारन नाऊं
काके द्वार जाइहो ठाढ़ो देखत काहि तुनाऊं
सूर पतित पावन पद अंबुज क्यों सौ परिहरि जाऊं।
–सूरसागर प्रथम स्कंध, पृ. 12

84. गिरिधारी शरणं धारी आया, राख्शां किरपा निधान।
अजामिल अपराधी तारयाँ नीच सदाण।
इबताँ गजराज राख्याँ गणिका चढ़या विमाण।
अवर अधम बहुता थे तारयाँ भाख्या सणत सुजान।
भलण ब कुबधा तारयाँ गिरिधर, जाण्याँ सकल जहाण।
विरद बरवाणाँ गण्ताँ णा जाणा, थाकै वेद पुराण।
मीय प्रभुरी शरण रावली, विणता दीस्यो काण।
– मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्ण देव शर्मा – पृ. 295

85. तिरुमालै – पाशुर 897, ना. दि. प्र. 363

86. पेरियालवार – पाशुर – 434, ना. दि. प्र. 197

87. तिरुच्छंदवृत्तम् – तिरुमलिचै आलवार पाशुर 835 – ना. द्वि. प्र. 345

88. तिरुमालै – तोडरडिप्पोड़ि आलवार
मट्टुम ओर दैवमुण्डे ? मदि इला मानिडंगल पाशुर – 880, ना.द्वि.प्र.357

89. तिरुमालै तोंडरडिप्पोडि आलवार पाशुर – 904, 905, 906 प्रबंधम् 365

1. मेय्येल्लाम् पोकबिऊ विरिकुलालारिपट्टु – पाशुर 904

2. उल्लदे उरैयुम् मालै उल्लुवान् .... पाशुर 905

3. तावि अण्रु उलकम् एल्लाम् तलै विलाक्कोण्ड उन्ताय

90. पयिलुम चुडर ओलि मूर्तियै पंगय कण्णनै
पयिल इणिय नम् पार्कडल सेरन्द परमनै
पयिलुम् तिरुउडैयार एवरेलुम् अवर कंडीर
पयिलुम पिरप्पिडै एम्मै आलुम् परमरे –
– ना.दि.प्र. 1165, तिरुवायमोलि नम्मालवार – पाशुर 3187

91. तिरुवायमोलि़ – नम्मालवार पाशुर – 3188–3189
1. एन्दरो महानुभावुलु अंदरिकी वंदनमुलु
– रामभक्त त्यागराज की कृति (तेलुगु)

92. अहो भाग्यमहो भाग्यं नंद गोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानंद पूर्ण ब्रह्म सनातनम्
– श्रीमद्भागवत – दशम स्कंध – अध्याय 14, श्लोक 32

93. भक्ति रसामृत सिंधु – पश्चिम विभाग लहरी – 3
– सूरसागर, दशम स्कंध – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय 612

94. हरि तबै आपनि आँखि मुँदाई
सखा सहित बलराम छिपाँने जहाँ तहाँ गये भगाई।
कान लागि कहेउ जननी यशोदा बा घर में बलराम।
बलदाऊ को आबन दैहो श्रीदामा सो हैं काम।
दौरि दौरि बालक सब आबत छवत महरि के गात
सब आये रहे सबल श्रीदामा हारँ अब कतप्त।
सोर पारि हारि सुबलहिं धाएं, गहमो श्रीदामा जाह।
दै है सोह नंदबाबा की जननी पै लै आइ।
हँसि हँसि तारीदेत सखा सब भए श्रीदमा चोर।
सूरदास अँसि कहति यशोदा जीत्यो है सुत मोर।
– सूरसागर दशमस्कंध, पृ. 23 जो अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ. 612 से उद्धृत है

95. चरावत वृन्दावन हरि गाइ।
सखा लिये सँग सुबल श्रीदामा छोलत हैं सुख पाई।

सूरस्याम तब बैठि बिचारत सखा कहाँ बिरमाई। – सूरसागर–ना.प्र.सभा

96. ग्वालिनि कर तैं कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख को
....
अपने मुख लैं नावत।
– सूरसागर – 468/2086 जो हिंदी काव्य में कृष्ण चरित स्वरूप विकास पृ. 286 से उद्‌धृत है।

97. आजु दधि मीठो मदनगोपाल
भावत मोहि तिहारीा झूठो चंचल नयन विशाल
....
परमानंद प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप
– परमानंददास पद संग्रह पद सं 432
वल्लभ संप्रदाय और अष्टछाप पृ. 615

98. तिरुमोलि – पेरियालवार, ना.द्वि,प्र. पृ. 129 – पाशुर – 259

99. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामचंद्र शुक्ल

100. यशोदा हरि पालनै झुलावै
हलरावै, दुलराइ, जोइ–सोई कछुगावै।
मेरे लाल कौं आउ निदरिया, काहै न आनि सुचावै।
....
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नंदभामिनि पावै।।
सूरसागर – 42/662, ना.प्र.सभा

101. मेरो नान्हरियाँ गोपाल बेगि बडो किन होहि
इहि मुख मधरे बयन हासि कअहूँ जननि कहोगे कोहि''
सूरसागर दशमस्कंध– बे.प्रे. पृ. 209

102. सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरूनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।
चारू कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिये।
लट लटकानि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिये।
कठुला कंठ, ब्रज कहरि नख, राजत रूचिर हिए।
धन्य सूर एकापल इहिं सुख का सतकल्प जिए– सूरसागर 99/717

103. सूरसागर 263, 811
मैया मैं तो चंद खिलौनाना बेहौं
जैहौ लोटि धरनि पर अबहिं, तेरी गोद न ऐहौ

104. बाल बवनोद गोपाल के देखत मोंहि भावै,
प्रेम पुलकित आनंद भरि जसुमति गुन गावै
बाल समेत घन–साँवरो आँगन में धावै
बदन चूमि करालिये सुत जानि खिलावै
सिव, विविच्चि मुनि देवता जाको अंत न पावै
सो परमानंद ग्वालि को भली मनावै
– परमानंददास, पद संग्रह – पद सं. 23

105. मीरा सुधा सिन्धु – स्वामि आनंद स्वरूप पृ. 669, पद 281

106. वही पृ. 624, पद 142

107. मोहि बडो कर ले मोरी मैया, मोहि बडो कर ले मोरी।
मध मेवा पकवान मिठाई, जब माँग जब देरी
सब लडकन में बडो कहावै, तेरो पत्र बडेरी
बडी होवँगा रहल करूंगी, मारूँगा सब वैरी।
मार डाल अखाडै जीव, कंस को मारूँ वैरी।
मीराबाई के प्रभु गिरिधर नागर, मथुरा राज कटोरी – वहीं पृ. 634,पद175

108. ताल परुवम् – बच्चे को लिटाकर माँ द्वारा लोरियाँ गाना
अंबलि परुवम – चाँद दिखाना
सेंकीरै परुवम् – एक पैर पर दूसरा रखकर हाथ उठाना
चप्पाणि परुवम् – चलने के पहले बच्चे की चेष्ट
चलरनडै – ठीक तरह से नहीं चलना ठगमगाना (चलने की कोशिश)
अच्चो परुवम् – आंलिंगन, गलेलगाना
पुरम पुलगल – पीट पर बच्चे को रखकर चलना
अप्पूच्चि काट्टदल – उंगलियों से मुख छिपाकर डरानक काप्पिडल से बचाते रक्षाबँधना

109. तिरुमोलि पेरियालवार पाशुर 4 से 14 ना.दि.प्र.पृ 39

110. – वही – पाशुर 2343, ना.दि.प्र. पृ. 39,49

111. – वही– पाशुर 24, पृ. 43

112. – वही – पाशुर 38, पृ. 47

113. माणिक्कम् कट्टि वयिरम इडै कट्टि
....
वैयम अंलंदाने तालेलो – पाशुर 44, ना. द्वि.प्र. 48

114. एण् सिरुकुट्टन एण्क्कु ओर इण्णंमुदु एंबिरान्
तन सिरुकैकलाल काट्टि काट्टि अलैक्किरान्
अंजनवण्णनोडु आडल आड उरुदियेल
मंजिल मरैयादे मामदी मकिल़न्दु ओड़ि वा। – पाशुर 55 ना.द्वि.प्र. 52

115. पेरियालवार तिरुमोलि – पृ. 123

116. –वही– पृ. 127

117. – वही – पृ. 131

118. मत्तका कलिटु वसुदेवर तम्मुउै
चित्तम पिरिया देवकी तन वयिट्रल
अत्तत्रिण् पत्राम माल तोण्चिय अच्युतम
मुत्तम इरून्दवा काणीरे, मुकिल़ नगैयीर वन्दु काणीरै – पाशुर 28, पृ 42

119. नोक्कि मसौदै नुणक्किय मंजलाल
नाक्कु वलि़त्तु नीराट्टुम इन्नंबिक्कु
वाक्कुम नयनमुम् तरुक्कि परुगुम
इच्येतोण्डे वाय वन्दु काणीरे
मोय कुल़लीर, वन्दु काणीरे।
–पाशुर – 37, ना.दि.प्र. 46

120. एण् सिरुकुट्टन एण्क्कु ओर इण्णंमुदु एंबिरान्
तन सिरुकैकलाल काट्टि काट्टि अलैक्किरान्
अंजनवण्णनोडु आडल आड उरुदियेल
मंजिल मरैयादे मामदी मकिल़न्दु ओड़ि वा।
– पाशुर 55 ना.द्वि.प्र. 52

121. आलै नील करूंबु अण्णवन् तालेलो।
....
ताचिर कडे आयिन ताये – पाशुर – 7.8, देवकीय पुलंबल
ना.दि.प्र. 302, (देवकी का विलाप)

122. तिरुमंगै आलवार – पाशुर 1909, ना.दि, प्र. 736

123. हिंदी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप –विकास – पृ. 289

124. यथा व्रज गोपियाकानाम – ना.भ.सू. 21

125. मियों हरेमृंगाक्ष्यश्श्य संभोगस्यादि कारणाम।
मधुरापरपर्याय प्रियता ख्योदिताऽऽरतिः
भक्ति रसामृत सिन्धु – दक्षिणविभाग – 27, स्थायी लहरी

126. St. Thomas Aquinas : Gerald vann P. 5 (London)
जो हिंदी के कृष्ण तमिल आलवारों के प्रबंधम् – डॉ.मलिक महम्मद
से उद्धृत है। पृ. 258

127. कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।
नंदगोपसंतं देवि पतिं में कुरुते नमः भागवत – 10.22.4

128. भजं जेहि भव जो मिले ताहित्यों, भेद भेदा नहीं पुरुष नारी – सूरसागर
सर्व भाउ भगवान कान्ह जिनेके मन माही – रासपंचाध्यायी, नंददास शुल्क
पृ. 262

129. हम अलि गोकुलनाथ अराध्यो, मन वच क्रम हरिसों धरि पतिव्रत प्रेम योग
तप साध्यो माता पिता हित प्रीति निगम पथ तजि सुख दुख भ्रम नाख्यो
मानापमान परग परितोषम सस्थल थिति मन राख्यो। –
– सूर – दशम स्कंध, बे.प्रे. पृ 512

130. मेरे तो तुम हीं पति तुम समान को पावै,
सूरदास प्रभु तुमरी कृपा विनु को मो
दुख बिसरावै – सूरसागर, प्रथम स्कंध – बे.पे. पृ.

131. मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई
तात मात भ्रात बन्धु अपना नहिं कोई।
छांडि देई कुल की कान, क्या करेगा कोई।

(1) मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ
....
मीराबाई पदावली – डॉ.कृष्णदेवशर्मा – पृ. 187 , पद 20

132. मैं तो प्रीति स्याम सों कीनी।
कोऊ निदो कोऊ बन्धो अब तो यह कर दीपी।
जो पतिव्रत तो या ढोटा सो इन्हें समर्प्यो देह।
जो व्यभिचार नंदनदन ओं बाढ़यो अधिक सनेह।
जो व्रत गह्मो सो और न भायो मार्यादा को भ्रग।
परमानंद लाल गिरिधर को पायो मोटो संग
– परमानंददास पद संग्रह, पद सं. 202

133. तिरुमोऴि – पेरियालवार पाशुर – 261, ना.दि.प्र. 131

134. नाच्चियार तिरुमोऴि – आण्डाल पाशुर 511, ना.दि.प्र. पृ. 231

135. एणचेरुयम ऊरवर कव्वै, तोली इनि नम्मै
एणे चेरुयं तामरै कण्णन् एण्णै निरैक्कोण्डान,
मुण चेरुय मामे इलन्दु मेनि मेलिव एयदि
एण चेरुय वायुम् करुकण्णुम् पयाप्पु ऊरन्दवे
— तिरुवायमोलि — नम्मालवार पाशुर — 3364

136. एण्णै एण चेरियल ना.दि.प्र. पृ. 1225
एण ऊर एण सेल्लि एण् तोलिमीर
एण्णै इनि उमक्कु आसै इल्लै, अग पट्टेन
मुण्णै अमरर मुदलवन, वण द्वारापति
मण्णन् मणिवन्नन् वासुदेवन् वलैचुले — वहीं पाशुर 3368, पृ. 124

(1) सात्तिरम् पेसुकिराय कण्णम्मा
— कण्णम्मा — भक्ति एनकादली, पृ. 301

137. तमेव शरणंगच्छ सर्वभावेन भारत
तत्प्रसादात्परां शांतिं सीनं प्राप्यसि शाश्वतम्
गीता अध्याय — 18 — श्लोक 62

138. येत सर्वाणि कर्माणि मयिसन्यस्य मत्परा
अवेंन्येनै व योगेन मां ध्यायन्त उपासते — 6
तेषा महं समुद्धता मत्यसंसार सागरात
भवामि न चिरापार्थ, मरुयावेशित चेतसाम — 7 गीता — 12 श्लोक 6,7

139. नवरत्न षोड़शग्रन्थ भट्ट रमानाथ शर्मा — पृ 54

140. शरण आये की लाज उर धरिये।
साध्यो नहिं धर्म शील शुचि तप व्रत कछु
कहा मुख लै तुम्हें विनय करिये।
कछु चाहों कहौ सोचि मन में रहौं, श्रम अपने जाति
यहै निज सार आधार मेरे अहै, पतितपावन विरह वेद गावै
....
सूरसागर प्रथम स्कंध बे.प्र. पृ. 9

141. मैं तो थारी सरण परी ने रामा ज्यँ तारे त्यँ तार।
या जब में कोई नहिं अपना सुजियो, श्रावण मुरार
मीरा दासी राम भरोसे जम का फंदा निबाँर —
— डॉ.कृष्णदेवशर्मा — मध्यकालीन कृष्णकाव्य — पृ. 293

142. पेरिय तिरुवन्दादि — नम्मालवार पाशुर 2589 — गुरु के रूप में

143. पेरिय तिरुवन्दादि — नम्मालवार — पाशुर 2590

144. अरुल पुरिन्द चिन्दै अडियार मेल वैत्तु
पोरुल तेरिन्दु काण्कूट्ट अप्पोदु इरुल तिरिन्दु
नोक्किनेण नोक्कि निणैत्तेन अदु ओण् कमलम्
ओक्किणेन् एण्णैयुम अंगु ओरन्दु
– इरण्डाम तिरुवन्दादि – भूदत्त आलवार पाशुर 2240,ना.दि.प्र. पृ. 850

145. मच्चित्ता मदुगमप्राणाः बोधयन्तः परस्परम
कथयन्तश्य मा नित्य तुष्यन्ति च समन्तिच – गीता 10.9

146. नदति क्वचिदृत्कण्ठो विलज्जो नत्यति क्वचिल
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोनुचकार ह।।।

147. ना.भ.सू. 69,70, भागवत् 7–4–40 स्कंध

148. लाली मेरे आवति जित देखूँ तितलाल ....
मैं ज्यूँ हो गयी लाल – कबीरदास

149. बेचति ही दधि ब्रज की खोरि,
शिर के भार सुरति महिं आवति श्याम श्याम हेरत भई भोरि
घर घर फिरत गोपालहिं बेचति मगन भई मन ग्वारि किशोरी।
सुन्दर वदन निहारन कारन अंतर लजी सुरति की अरी
– सूरसागर दशम स्कंध – बे.प्रे. पृ. 2581

150. पेरियालवार तिरुमोऴि पाशुर – 244–253, पृ. 123–127

151. वहीं पाशुर – 244

152. नम्मालवार – तिरुवायमोलि पाशुर – 3629, ना.दि,प्र. पृ. 1321

153. न वासुरी सुख न रैन सुख – कबीरदास

(1) तूण्डिल पुलिविनैप्पलो वेलिये
चुडर विलक्किनैप्पोल नींडपोलुदाग
एनदु नेंजम् तुडित्तदडि – कण्णन् एन कादलन –
सुब्रह्मण्यभारती, पृ.294

(एकांत शय्या में लेटी मै माँ को देखकर भी खुश नहीं हूँ एकांत मुझे सता रही है दूध भी मुझे कडुवा लगने लगा। फँसा हुआ कीडा बनकर मैं जलने लगी।)

(2) सुखिया सब सुसार जो खावै और प्रीव
दुख्यिा दास कबीर जो नितरोवै।

154. अनयाऽऽ राधितो नूनं भगवान हरिरीश्वर
यथौ विहाय गोविंद प्रीतो यामनयद् रह – भागवत् 10/30/28

155. विरह दुःख जहाँ नांहि जामत, नहीं उपजै प्रेम
— सूरसागर, दशम स्कंध, बे. प्रे. पृ. 503

156. नाथ अनाथन की सुधि लीजै।
गोपी ग्वाल गाइ गोसत सब, दीन मलिन दिनहिं दिन छीजै।
नैन सजल धारा बाढी अति, बडतब्रज किन कर महि लीजै
सूरदास प्रभु आसमिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै।

157. परमानंददास पद संग्रह पद सं, 193

158. मीराबाई पदावली — डॉ.कृष्णदेवी शर्मा — 240, पद 70

159. एण्बु उरुकि इण वेल नेड़ुंकणकल
इमै पोरुन्दा पल नालुम्
तुण्ब कडलबुक्कु वैकुन्दन एण्बदु ओर
तोणि पेरादु अऴलकिण्रेन
अब्बु उडैयारै पिटिवु उरू नोयदु
नीयमु अरि दि कुयिले
पोणपुरै मेनि रिल कोडि उडै
पण्णियनै वर कृवाय।। — नाच्चियार तिरुमोलि—आण्डाल पाशुर 548,पृ247

160. — वही — पद 570, 574 पृ. 255, 571

161. नाच्चियार तिरुमोऴि — आण्डाल पाशुर 629, पृ. 275

162. — वही — पाशुर 629—636 तक

163. नाच्चियार — तिरुमोऴि पाशुर 547, ना.दि.प्र. पृ. 247

(1) नैना अंतर आवत् — कबीरदास

164. — वही — पाशुर 567—569, पृ. 253

165. — वही — पाशुर 570, 574, 571, पृ. 255

166. — वही — पाशुर 597, 606, ना.दि.प्र. पृ. 263

167. — वही — पाशुर 597—606, पृ. 263

168. — वही — पृ. 276

169. हिंदी साहित्य का इतिहास — डॉ.शिवकुमार शर्मा

170. नाच्चियार तिरुमोऴि — पाशुर 618, पृ. 269

171. सिरिय तिरुमडल – तिरुमंगै आलवार – पाशुर 2679 से 2698 तक
पृ. 995–1000

172. – वही – पाशुर 2699, पृ. 1000

173. – वही – पाशुर 2701, पृ. 1000

174. चोदम्म, पणम, चन्दन कुलंबुम
तडमलैक्क आँणयिलम तलंल आम
पोन्द वेंग्तिगल कंदिर चड मेलियुम्
वोरू कडल पलंबिलम पलबम
मांतलीर मेनि वण्णेमुम् पाण आम
वलैकलम् इरै निल्ला एण तन
एण्दणै इवलक्कु एण निणैत्त इरूदास
इडैवेन्दै इन्दै पियने – तिरुमंगै आलवार – पाशुर 1110, पृ. 445

175. तिरुमंगै आलवार – पेरिय–तिरुमोलि पाशुर – 1108–1117 पृ 444–447

176. श्रीमद्भागवत् – 7/5/23–24

177. श्रवणं कीर्तन पादरत, अर्चन वन्दन दास।
सख्य और आत्म निविदन प्रेम लक्षण जास
सूरसारावली वे.प्रे. पृ. 5

178. भद्रं कर्णेभि : श्रृणुयाम देवा,शुक्ल यजुर्वेद 25/21

179. सूरसागर 2/33

180. – वही– 3/12

181. नम्मालवार – पेरिय तिरुवन्दादि पाशुर –2600 पृ 963

182. कीर्तन – सुष्टु तिमीर यामि ..... ऋग्वेद 213317
(1) प्रसम्राजम् .... ऋ 8/16/1, साम, पूर्वाचिक 2/1/5/10
अथर्व 20/44/1

183. सूरसागर – जो सुख होत गुपाल हिं गाए 2/346
(1)नाम लीला गुणाा दीना मुच्चै भावतु कीर्तनम्
–हरिभक्ति रसामृत सिन्धु पूर्वभाग 2/26

184. पेरुमाल तिरुमोलि – कुलशेखर आलवार, ना.दि.प्र. पृ. 289

185. पेरिय तिरुमोलि़ – तिरुमंगै आलवार पाशुर – 952–956, पृ. 383

186. सूरसागर, 2/232/225, 2/348, 1/89–93, 94 आदि

187. तिरुमोलि पेरियालवार पाशुर 435, पृ. 197

188. तिरुमोलि पेरियालवार – पाशुर 434–442 तक, पृ 197–199

189. तिरुच्चंदवृत्तम् – तोंडरडिप्पोडि़ आलवार – पाशुर 854, पृ.359
(1) स्मरण – स्तवाम त्वा स्वाध्यं ..... ऋ 1/16/9
भर्गो देवस्य धीमहि ...... ऋ 3/62/10, शुक्ल यजुर्वेद 3/35
हृत्पुण्डरीक मध्यंतु – सामवेदीय मैत्रेय्युपनिषद 1/4/8
जो भक्ति दर्शन – डॉ.वेदप्रकाश शास्त्री से उद्‌धृत है
(1) पादसेवन– पदं देवस्य ऋ 8!102/15, साम.उत्तर 7/2/14/3
इदं विष्णु: ऋग्वेद 1/22/17, शुक्ल यजुर्वेद 5/15, सामवेद पूर्वा 3/1/3/9

190. पेरुमाल तिरुमोलि़ कुलशेखर आलवार – पाशुर 655, ना.दि.प्र. पृ. 283

191. सूरसागर 1/1, 1/94 1/308
(1) पादसेवन – पद संख्या ऋ 8/102/15, साम.उत्तर 7/2/14/3, इदं विष्णु: ऋ. 1/22/17, शुक्ल यजुर्वेद 5/15, सामवेद पूर्वा 3/1/3/9

192. मुदल तिरुवन्दादि – पौयगै आलवार पाशुर 2159, 2191, 2192, 2188
– ना.दि.प्र. पृ 825

193. पेरुमाल तिरुमोलि – कुलशेखर आलवार पाशुर – 660–667, पृ 287, 288

194. सूरसागर 1/1

(1) सेवकानां तथा लोके व्यवहार – प्रसिद्धति
–सिद्धांतं रहस्य, षोड़श ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक 78
(2) अभित्वा शूर नो नुमः ऋग्वेद 7/32/22 शुक्ल यजुर्वेद 27/35, सामवेद पूर्वा 3/1/5/1 अथर्व 20/121/1 समस्य मन्यते...साम पूर्व 2/1/5/3192. तिरुवायमोलि़ – नम्मालवार पृ. 1075,
पाशुर 2925

195. तिरुवाययमोलि़ – नम्मालवार पाशुर 2925, ना.दि.प्र. पृ 1075

196. अर्चनंतृपचारण स्यान्मंत्रोपपादनम्
परिचर्यातु सेवोपकरणादि परिष्कृिपा – भ.र.सि. पूर्वविभाग, 2/27

(1) अर्चनं – इन्द्राय मद्वने .... ऋग्वेद
सामवेद पूर्वा,.......... अर्चत प्रार्यत। साम.पू.
जो भक्तिदर्शनसे उद्धृत है।

197. सूरसागर 2/307 370, 372, आदि

198. तिरुवायमोऴि – नम्मालवार पाशुर 2954,ना.दि.प्र. पृ. 1085

199. नीवी ललित गही जदुराई – सूरसागर, 20/2300

200. अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय नंदलाल।
– सूरसारग प्रथम स्कंध, पृ. 12

201. हमे नंदनंदन मोल लिये – वही – सूरसागर 1/171

202. प्रभु हौं सब पतितनि को टीकौ – सूरसागर 1/138 पृ.178

203. अब हौं उघरी नचन चहत हौ, तुम्हें विरद बिन करिहौ।।

– सूरसागर 1/34, 130, 141 आदि

204. दीनता – 1/138, सूरसागर

205. मानमर्षता – सूरसागर 1/12 से 17 तक, 21 आदि

206. भयदर्शन – सूरसागर 1/130, 134, 141

207. भर्त्सना – – वही पद – 330, 335

208. आश्वासन – सूरसागर 1/85, 89

209. मनोराज्य – सूरसागर, 1/171

210. विचारणा – वही – 97–99

211. तिरुवायमोऴि – नम्मालवार पाशुर 3033–3036 तक– ना.दि.प्र. पृ. 1111,

212. तिरुवायमोऴि – नम्मालवार पाशुर 3034 – ना.दि.प्र. पृ. 1111

213. नीवी ललित गही जदुराई।। सूरसागर 10/1300

(1) आत्म – निवेदन उतवात पितासिनः ऋग्वेद

साम. उत्त. .... यं रक्षन्ति................ सामस.पू.
मुमुक्षुवै शरणमहं प्रपद्यो।। श्वेता.उ.6127

214. सूरसागर – 10/1066

215. तिरुमोलि – पेरियालवार – पाशुर 259, पृ. 129

216. सूरसागर – 1/110, 14, 1592, 559, 148 आदि

217. तिरुमालै – तोंडरडिप्पेडि आलवार पाशुर 901, ना.दि.प्र. पृ. 363

218. तिरुवासिरियम् – नम्मालवार, पाशुर 2930, ना.दि.प्र. पृ 1077

अध्याय – पाँच

अध्याय – पाँच

हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं नालायिर दिव्य प्रबंधम् में चित्रित भक्ति के साधन

प्रस्तावना

1. साधन का महत्व

2. भक्ति शास्त्रों में वर्णित भक्ति के साधन

2.1. विषय भोग और विषयासक्ति का त्याग हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में विषय भोग विषयासक्ति का त्याग

2.2. दुस्संग का त्याग हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में दुस्संग का त्याग

2.3. सत्संगति का महत्व हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में सत्संगति का महत्व

2.4. निरंतर भजन हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में निरंतर भजन का महत्व

2.5. गुरु महिमा हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में गुरु महिमा

निष्कर्ष

अध्याय – पाँच

हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य एवं नालायिर दिव्य प्रबन्धम् में चित्रित भक्ति के साधन

भक्त विभिन्न प्रकार की पद्धतियों के द्वारा अपने प्रियतम भगवान तक पहुचने का प्रयास करता है। उसके लगातार अभ्यास, अधिक श्रद्धा एवं भक्ति के कारण वह भगवान तक पहुँचने में, भगवान की लीलाओं के अनुभव करने में सफल हो जाता है। भगवान तक पहुँचने के लिए जिन कार्यों को अपनाता है उन्हें 'साधन' कहा जाता है। उन साधनों को वह लगातार अभ्यास करता है उस क्रिया को साधना कहते है। साधन को 'साधना' करके जो भक्ति (फल) प्राप्त करता है वहीं साध्य भक्ति है और वह भक्त 'साधक' कहलाता है। भक्ति साधनों को अत्यंत श्रद्धा के साथ उन्हें आचरण करके भगवान के प्रीतिपात्र बनने का प्रयास करता है। भक्ति में 'साधन' एक महत्व अंग माना जाता है।

भक्त भक्ति के साधन आचरण (साधना करना) साधक भक्त साध्यभक्ति मोक्ष

भावना पूर्वक साधन का उपयोग करना ही 'साधना' कहलाती है। एक आस्थाभाव, श्रद्धा भाव के साथ साधनों का आचरण करना चाहिए।

भक्ति को प्राप्त करानेवाले साधनों को शास्त्रों ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है :

नारद भक्ति सूत्र में वर्णित भक्ति के प्रमुख साधनों के अंतर्गत

(1) सांसारिक मोह एवं विषयासक्ति का त्याग

(2) लगातार भजन

(3) भगवान के यशोगान भजन एवं कीर्तन के माध्यम से गाना

(4) दुस्सांगत्य का त्याग

(5) सत्संगति

(6) गुरु महिमा

भक्त भगवान तक पहुँचने के लिए जिन कार्यों का आचरण करता है वहीं भक्ति के साधन है। उस अलौकिक प्रेम स्वरूप भगवान के प्रति रखे गये अव्यक्त प्रेम के कारण भक्त प्रियतम परमात्मा को शीघ्र पाने के लिए जिन पद्धतियों को अपनाता है, वहीं भक्ति की साधनाएँ हैं। साधना को प्राप्त भक्त साधक कहलाता है।

भक्ति को प्राप्त करने के बाद भक्त के व्यवहार आचरण कैसे होना चाहिए? इसका विस्तृत वर्णन नारद भक्ति सूत्र शांडिल्य भक्ति सूत्र, भागवत, भगवद्गीता आदि भक्तिशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों में बताया गया है। उस साधनों में से प्रमुख सांसारिक मोह एवं विषयासक्ति का त्याग। अपने को भगवान के सामने नीच दिखलाना (नैच्यानुसंधान) जो दास्य भक्ति के धरातल पर विकसित हुआ, भगवद् भक्तों से निरंतर संगति रखना, दुस्संग का त्याग, निरन्तर भजन, गुरु महिमा गायन, कर्मों का पूर्ण समर्पण आदि।

भक्ति साधनों में सर्व प्रमुख है भगवद्कृपा की प्राप्ति। भगवद् कृपा की प्राप्ति करना उतना आसान नहीं। उसके लिए पूर्व जन्म के सुकृत चाहिए। भगवद्गीता में अनेक स्थानों पर भगवद् कृपा का उल्लेख मिलता है। निरंतर भजन करनेवाले भक्तों पर भगवान कृपा करके उनके अज्ञान रूपी अंधकार को मिटाते हैं। (1) भगवान के कृपा–कटाक्ष के कारण ही अर्जुन को दिव्य रूप दर्शन करने का सौभाग्य मिल गया। (2) खुद भगवान कहते हैं कि "हे पार्थ! यह विश्वरूप जिसे तुमने देखा है, वह अति दुर्लभ है। सारे देवता लोग इसे दर्शन

हेतु सदा चाहते हैं। (3) इससे पता चलता है कि अर्जुन श्रीकृष्ण के कृपा कटाक्ष पात्र है।

भागवत में भी भगवद् कृपा की महिमा के बारे में बताया गया है। नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है कि ''भगवद् कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती है। (4) और नारद आगे कहते हैं सत्संगत्य की प्राप्ति भी भगवद्कृपा से ही संभव है। (5) भगवद्कृपा के बिना कुछ भी संभव नहीं।

भक्ति रसामृत सिन्धु में रूप गोस्वामी ने भी स्वीकार किया है कि भगवत्प्रेम श्रीहरि कृपा से उत्पन्न है। (6)

1. साधन का महत्व :–

भक्ति की प्राप्ति के लिए साधना की अत्यावश्यकता है। साधन की प्राप्ति ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही होती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए भक्ति के साथ–साथ श्रद्धाा की जरूरत है। (7) श्रद्धा के साथ काम करनेवालों को जितेन्द्रियता के साथ ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद परम शांति मिलती है। तभी भक्ति की साधना वह कर सकता है।

2. भक्ति शास्त्रों में वर्णित भक्ति के साधन :–

भक्तिशास्त्र में भक्ति साधनों का वर्णन मिलते हैं। उपनिषद् में उसके लिए तपस्या, आत्म संयम एवं निष्काम कर्मों की आवश्यकता बताया गया है। (8) ज्ञान की प्राप्ति से साधन पूर्ण होकर मुक्ति मिलती है। भक्ति भी ज्ञान के साधन से ही प्राप्त होती है। इन साधनों से प्राप्त हुई मुक्ति का नाम मर्यादा है। ये साधन सर्व साध्य नहीं। अतः अपनी शक्ति से ब्रह्म जो मुक्ति भक्तों को देता है, वहीं पुष्टि कहलाती है। (9) गीता में ध्यान, तपस्या, योग, अभ्यास, समर्पण आदि को साधना के रूप में बताया गया है। श्रद्धा के साथ भजनेवाले योगियों को भगवान श्रीकृष्ण

उत्तम मानता है। भक्ति साधन के अंतर्गत श्रद्धासे मिले हुए योग की ही प्रधानता है। (10)

भागवत् में भक्ति साधनों के निष्काम होकर आचरण करनेवाला कर्म, सगुणाकार, भगवद्पूजा, समस्त प्राणियों में भगवान को देखन, सत्संग, शास्त्रों का अध्ययन, नाम संकीर्तन पर बल दिया गया है। (11)

नारद भक्ति सूत्रों के अंतर्गत अध्याय तीन में भक्ति के साधन के अंतर्गत निम्न लिखित बताये गये हैं (12)

1. भगवान के गुणगान (वेद, पुराण) आदि श्रद्धा के साथ गाना (12.1)

2. संसार के विषय भोगों को त्याग करके रागानुराग को त्याग करके, इन्द्रिय निग्रह करना। (12.2)

3. भगवान की महिमाओं को श्रवण करके गान करके अपनी दिन चर्या को नहीं छोडना।(12.3)

4. दुस्सांगत्य को छोडना। क्योंकि दुस्सांगत्य के कारण काम, क्रोध, मोह उत्पन्न होकर बुद्धि का सर्वनाश हो जाता है।(12.4)

5. सज्जनों का संग जो भक्ति की प्राप्ति से ही संभव है। (12.5)

6. सदा भगवन्नाम स्मरण (12.6)

एकाग्र स्थान में बैठकर, त्रिगुण (काम, क्रोध, लोभ) तजकर, सांसारिक बंधन से मुक्त होकर भगवान के प्रति अविच्छिन्न अनुराग रखना।

नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित भक्ति के साधन का समावेश हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवार साहित्य में किस प्रकार हुआ? उस विस्तार से अध्ययन किया जायेगा।

2.1. विषय भोग और विषयासक्ति का त्याग :

भक्ति के लिए विषय भोग याने सांसारिक मोह को त्यागना चाहिए। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने से यह संभव है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं "विषयों के बारे में सोचने से उन पर आसक्ति होगी। आसक्ति से कामना उत्पन्न होगी। कामना से क्रोध, क्रोध से मोह पैदा होता है। मोह के कारण स्मृति विभ्रम में बदल जाती है। स्मृति भ्रंश होने के बाद मनुष्य की बुद्धि का सर्वनाश हो जाता है। (13)

इसीलिए भगवान कृष्ण इच्छाओं को त्यागने का उपदेश देते हैं। उनका कहना है जो इच्छाओं को त्यागकर, निरपेक्ष होकर अहंकार ममता को तजेगा उसे परमशान्ति मिल जायेगी। (14)

नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित काम, क्रोध, लोभों को छोड़ने के लिए गीताकार भी कहते हैं। श्रीकृष्ण का कहना है काम, क्रोध, लोभ आत्म विनाश के लिए नरक के द्वार है। विवेकी लोगों को इसे त्यागना है। (15)

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों के भक्ति–साधन :

i) विषय भोग और विषयासक्ति का त्याग

हिंदी कृष्ण भक्त कवियों ने भी भक्ति केलिए वैराग्य पूर्ण विषयासक्ति को त्यागकर जीवन बिताने की आवश्यकता प्रकट की। सूरदास का कहना है 'हरि। हम महापापी एवं आत्माभिमानी है। विषय भोगों में आकर्षित होकर जीवन के परमार्थ को भूले हैं। रात–दिन दुखी होकर प्रार्थना करते हैं। लेकिन विषयवांछा मुझे छोडती नहीं।" (16) रसखान विषय भोग के अंतर्गत आनेवाले कांता मोह को

छोडने की बात कहते हैं। उनका कहना है कि कंचन एवं कामिनी के उन्नत उरोज–स्वर्ण कलश नहीं वरन् चाम में मढ़ी आम की गुठली है, सुन्दरियों की वेणी नहीं अपितु नरक को ले जानेवाली सीढ़ियाँ है। इन पर मुग्ध होकर कृष्ण प्रेम भक्ति से भटक जाना मूर्खता है। (17)

कृष्ण भक्ति साहित्य के अग्र कवि सूरदास तो अनश्वर जीवन के बारे में वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण से विषय भोग (या) विषयासक्ति को त्याग करते हुए इस प्रकार बड़ी दीनता से प्रार्थना करते हुए कहते हैं "अब मुझे जल्दी क्यों न उद्धार करते आप दीन बन्धु है, करुणामय स्वामी है, जनता के दुःख्ा निवारक है। मैं ने अपार पाप किया जो नदी की तरह बहने लगा, जिसमें ममता, मोह की बूँद भर गयीं। मैं विषयवांछा रूपी नदी में डूब गया हूँ। गुरु जन के उपदेश के आधार से उसे पार कर सकता हूँ। क्रोध का गज, लोभ का नाला हैं मुझे नहीं मालूम मेरा उद्धार कैसे होगा। आशा (विषयभोग) रूपी बिजली क्षण–क्षण, दिन–रात तन पर चमक रहीं है। पाप से पूर्ण जल से मैं त्रस्त हूँ अर्थात् विषयभोग एवं लालसा के कारण मैं दुःखी हूँ। हे नाथ आप तो पतित पावन है अपने विरुद् की संभाल कीजिए याने मेरी रक्षा करके पतितोद्धारक हो जाइए। (18)

भक्त कुलशेखर आलवार का कहना है नश्वर इस जगजीवन को शाश्वता समझनेवाले विषय भोगियों से मैं मिलूँगा नहीं, हे रंगनाथ। तुम्हारे नाम को सदा पुकारनेवालों के प्रति ही मेरा प्रेम है। (19) आगे वे कहते हैं उनके लिए संपदा, वैभव नहीं चाहिए बल्कि अपने आराध्य का निरंतर ध्यान करना है। वे ख़ुद कहते हैं "पतली कमर वाली ऊर्वशी, मेनका का नाच मैं चाहता नहीं बल्कि तिरुमला में बैठकर हरि ध्यान करते हुए तप करना चाहता हूँ। (20)

तोडंरडिप्पोड़ि आलवार अपनी रचना तिरुमालै में श्रीकृष्ण की भक्ति को अमृत समान भोजन मानकर इस प्रकार पूछते हैं "नारियों के मोह पाश में फँसकर खाकर, रात में सोते वक्त सदा शरीर पर ही चिंता करके, जीनेवालों को शीतल

तुलसीमालाओं से शोभित विष्णु के दास बनकर भजन कीर्तन करके जीनेवाले अमृत जैसे मधुरमय भोजनरूपी जीवन का स्वाद कैसे मालूम है? (21)

नम्मालवार लोगों को संबोधित करके कहते हैं "सब कुछ छोड़ दीजिए (अर्थात् सांसारिक भोग, मोह, माया) और आपके प्राणों को श्रीकृष्ण (विष्णु) को दे दीजिए जिससे भवसागर से पार करेंगे। (22) इस प्रकार आलवारों की भक्ति में सांसारिक भोगों को त्यागने का उपदेश मिलता है।

दैन्य भाव :

भक्त अपने को अधम के रूप में मानकर अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मों के लिए प्रायश्चित् की प्रार्थना करते हुए अपने आराध्य प्रियतम परमात्मा द्वारा उद्धार किये गये पतितों का नाम लेकर अपने उद्धार की प्रार्थना बड़ी दयनीयता से करते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि भगवान इसके पापों को क्षमा करेंगे। यह दास्य भक्ति के धरातल पर विकसित हुआ अंग है। दास्य भक्त अपने को अतिमलिन, हीन, दीन मानकर आराध्य को पतित पावन, उद्धार कर्ता मानते हैं। विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के अनुसार इस प्रकार की भक्ति भावना "नैच्चानुसंधान" के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार की भावना में दीनता की प्रधानता होती है। अपने को अधम रूप में चित्रित करनेवाले भक्तों के घमंड, दर्प, अहंकार दूर हो जाते हैं।

नारद भक्ति सूत्र में कहा गया कि परम समर्पण स्थिति में भक्त को स्त्री, धन किसी के प्रति आकर्षण नहीं होता और नास्तिकों की बातें नहीं सुनता। अभिमान, दंभ आदि गुणों को त्याग देना है। सब कुछ उसको समर्पण करके उनकी भक्ति में सदा मग्न होना चाहिए। (23)

हिंदी के कृष्ण भक्त एवं आलवारों द्वारा वर्णित दैन्यभाव :

हिंदी कृष्ण भक्त कवि ने भी अपने को अधम, पापी मानकर अपने आराध्य से उद्धार की प्रार्थना करते हैं। हिंदी कृष्ण भक्ति शाखा के अग्र कवि सूर

सूरसागर के "पंचरत्न" के अंतर्गत आनेवाले 'विनय' में अपने को अधम मानकर श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहते हैं। सूरदास कहते हैं 'हे नाथ! अब मेरा उद्धार करो। मैं तो पतितों में प्रसिद्ध हूँ। मैंने तो तुम्हारा पवित्र नाम ले लिया। अजामिल से भी मैं पतित हूँ। मेरे पापों को देखकर यमराज भी नरक लोक के ताले बन्द कर देगा। तुम तो पतितों का उद्धार करनेवाले हो। अब देर मत करो। मुझे मोक्ष प्रदान करो तब ही मैं सत्य मानूंगा कि तुम पतित पावन हो। सूर पग पग में अपने को नीच, अधम मानते हैं। अपने को पतितों के नायक मानते हैं और कहते हैं कि उनके समान कोई पापी नहीं। (24) और अपने को पतितों के शिरोमणि (25) मानते हैं।

सभी आलवार अपने आराध्य के सामने अपने को तुच्छ मानकर उनकी कृपा की प्रार्थना करते हैं। तिरुमंगै आलवार का कहना है "सद्गति को चाहते हुए भी दुष्कर्म करके भटकता रहा। नारियों के सौंदर्य के पीछे घूमते हुए गूँगे के सपने की तरह दिनों को नष्ट किया। अब मन्मथ के पिता, हमारे नायक, उनका ध्यान करनेवालों के हृदय वासी का नाम 'नारायण' महामंत्र की महिमा को पहचान लिया।(26)

तोंडरडिप्पोडि आलवार अपनी रचना 'तिरुमालै' में अपने अधम गुणों को चित्रित करके कहते हैं – "कपट में ही सदा रहकर, दुष्टों के सहवास में मग्न होकर, नारियों की कृपा दृष्टियों में फँसकर रहा। तब मेरे आराध्यक ने मुझ पर कृपा करके, मेरे हृदय में आकर अपनी ओर प्रेम बढ़ाकर मेरा उद्धार किया है।(27)

पेरियालवार अपनी रचना "तिरुमोलि" में इस प्रकार अपने को अधम के रूप में मानकर कहते है 'मेरे वाक् में पवित्रता नहीं है। इसीलिए माधव। निर्मल, आदि नामों को मैं नहीं ले सकता। नाम लेने की योग्यता भी मुझ में नहीं हैं। स्वादिष्ट मेरी जिह्वा तुम्हारे सिवा किसी और का नाम लेना नहीं जानती। तुम्हारे नाम लेने में मुझे संकोच हो रहा है। क्योंकि मैं पापी हूँ, कठिन वचन बोल रहा है

– "ऐसा मानकर तुमने मेरे प्रति क्रोध दिखाया तो भी मैं सह लूँगा। कौए की कूक को भी अच्छे शकुन के रूप में सज्जन लेंगे। ऐसा तुम भी मेरे वचन को स्वीकार करो। लोकों के सृष्टिकर्ता। गरुड़वाहनधारी मेरा उद्धार करो।"(28)

इस प्रकार आलवारों ने अपने को अधम, पापी, पतित मानकर अपने आराध्य से अपने उद्धार की प्रार्थना की है। उनका दृढ़ विश्वास है कि उनका आराध्य करुणा निधि, भक्त वत्सल और पतितों पर भी कृपा दृष्टि प्रसारित करके उद्धार करेगा। अतः यह भक्ति की उत्तमावस्था है।

2.2. दुस्संग का त्याग :

दुर्जनों के सागंत्य को त्याग करने में भी भक्ति के साधन निहित है। श्रीमद्भगवद्गीता में देव गुण, राक्षस गुण के अंतर्गत दुष्टों का स्वभाव बताया गया है। गुणों के अनुसार उन्हें 'असुर' से अभिहित किया गया। गीताचार्य श्रीकृष्ण का कहना है "अज्ञान आडंबर अभिमान, गर्व, क्रोध, पौरुष वचन आदि गुण असुरी संपदा में जन्म व्यक्ति के स्वाभाविक गुण हैं। (29) ऐसे लोग बल एवं गर्व के साथ काम, क्रोध, अहंकार से वशीभूत होकर सर्वान्तर्यामी भगवान को न पहचानकर भेदभाव के साथ दूसरों को द्वेष दृष्टि से देखकर उनकी निंदा करते हैं। (30)

इस प्रकार के लोग ही दुष्ट कहलाते हैं। भागवत में अजामिल की कथा मिलती है जो कैसे अपने बुद्धि परिवर्तन के कारण सन्मार्ग से भटककर दुःस्संगात्य में फँस गया था। (31) आखिर अंतिम समय में अपने छोटे प्रिय पुत्र का नाम लेकर सांस छोड़ा तो वह विष्णु का नाम था। अनजाने में ही भगवान के नाम लेने से उसका उद्धार हुआ था। भक्ति रसामृत सिन्धु में भगवान से भगवान के विमुख जनों के सांगत्य से दूर रहने को आवश्यक बताया गया। (32)

नारद भक्ति सूत्रों में दुःस्संगति को त्यागने की बात कई बार कही गयी है। नारद भक्ति सूत्र 43,44 में दुष्ट संगति को छोडने की बात पर बल दिया

गया।(33) साथ साथ दुस्संगत्य से होनेवाले नष्ट भी बताये गये। दुस्संगत्य से काम, क्रोध, मोह उत्पन्न होकर मनुष्य बुद्धिहीन (स्मृति भ्रंश) हो जाता है, फलतः बुद्धि का सर्वनाश हो जाता है। (34) दुस्संगात्य के कारण बुरा कार्य उत्पन्न होकर पानी के बुलबुलों की तरह उत्पन्न होकर सागर जैसा बन जाता हैं। (35)

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित दुस्सांगत्य का त्याज्य

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों के पाशुरों में दुस्सांगात्य को त्याज्य बताया गया है। सूरदास का कहना है जो लोग हरि के विमुख है वे ही दुष्ट है। सूरदास कहते है "हरि विमुख जो लोग है उनका सांगत्य छोड़िये। जिसके सांगत्य से कुबुद्धि पैदा होती है, भजन में भंग होता है। दूध पीने पर सर्प अपना विष छोड़ता नहीं (सज्जनों के सांगत्य में भी दुर्जन अपना दुष्ट स्वभाव छोडता नहीं) दुस्सांगत्य से काम, क्रोध, लोभ, मोह में दिन–रात फँसाता है। कौए को कपूर का गंध, कैसे मालूम? कुत्ते को गंगा नदी से स्नान कराने से क्या फायदा? गधे को अरगाज लेपन कराना जैसा है दुष्ट सहवास। बन्दर के अंगों पर भूषण डालने से क्या लाभ? (36) बाण पत्थर को नहीं बेध सकता चाहें तरकत खायी हो जाय। सूरदास कहते हैं कंबल पर दूसरा रंग नहीं चढता। कृष्ण भक्ति रूपी रंग उस पर चढ़ गया है।

आलवारों ने भक्ति रहित मनुष्यों की संगति को त्यागने का उपदेश दिया है। नम्मालवार "तिरुवायमोऴि" में अपने आराध्य के प्रति भक्ति न करनेवालों की निंदा करते हुए कहते हैं "गजेन्द्र का आर्तानाद' सुनकर मेरे आराध्य ने उसकी रक्षा की है। नीलमेघश्यामल श्रीकृष्ण की महिमाओं को बोलकर गाकर भजन न करनेवालों की जिन्दगी व्यर्थ है। भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति न करनेवालों की जिन्दगी बेकार है। (37) आगे वे कहते हैं "गोवर्धनगिरि को उठाकर गायों को पत्थर की वर्षों से बचाया श्रीकृष्ण के गुणगान एक दूसरे से कहकर, कूद कूद

करके उसकी महिमाओं को गाना है। ऐसे भगवान श्रीकृष्ण के गुणगान न करनेवाले दुःख सागर नरक में फँसकर कष्टों को भोगेंगे। (38)

इस प्रकार आलवारों ने विशेषतः दुस्सांगत्य के बारे में वर्णन नहीं किया, बल्कि हरि विमुख लोगों को दुष्टों के रूप में लेकर उनकी निंदा की।

2.3. सत्संग की आवश्यकता :–

सज्जनों के साथ साथ मिलकर रहना ही "सत्संगति" है। सज्जनों के साथ मिलने से उनके सौम्य स्वभाव सत्वगुण का प्रभाव अनायास ही हम पर पड़ता है। महाभारत में 'कर्ण' की कथा एक उत्कृष्ट उदाहरण है। वह धर्मपालक होने पर भी दुर्गुणों से पूर्ण दुर्योधन को साथ देकर 'दुष्ट चतुष्टय' में एक हो गया।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं "जो भक्त सदा मुझ में मन लगाकर प्राणों को भी अर्पण करके सदा मेरी चर्चा करते हैं तथा आपस में बोध–विनिमय करते हैं, वे नित्य सुखी रहते हैं और निरंतर मुझ में रमते हैं। (39) भागवत् में श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं "सत्संग के वश में मैं हूँ। वैसा साधन न योग में हैं, न सांख्य में, न धर्मपालन में और न स्वाध्याय में। व्रत, यज्ञ, तीर्थ और राम–विनय भी सत्संग के समान मुझे वश करने में समर्थ नहीं। (40) भागवत् में प्रह्लाद की कथा सत्सांगत्य का फल है। हरि द्वेषि असुर राजा हिरण्यकश्यप की धर्मपत्नी लीलावती गर्भ के समय नारद के आश्रम में रहने के कारण विष्णु भक्त प्रह्लाद का जन्म हुआ। आदि शंकरजी ने अपनी रचना 'भजगोविंद' में सत्संगति पर बल दिया है उनका कहना है "साधुओं के सदा सांगत्य से निर्मोह उत्पन्न होगा। निर्मोह उत्पन्न होने से चित्त अचंचल होकर निर्मल हो जायेगा। निश्चय मन जिनके पास हो वे जीवन्मुक्त हो जायेगा। (41)

नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है कि सत्पुरुषों का सांगत्य पाना दुर्लभ है। सत्सांगत्य पाने केलिए भी भगवद् कृपा चाहिए। (42) क्योंकि भगवान और प्रेमी भक्त महात्माओं में कोई भेद भाव नहीं। (43)

<u>हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों के पाशुरों में 'सत्संगति का महत्व'</u> :

हिंदी के श्रेष्ठ कृष्ण भक्त कवि सूर ने श्रीकृष्ण के नाम महत्व के साथ–साथ सत्सांगत्य पर जोर दिया है। उनका कहना है "हे मन्! श्रीकृष्ण के नाम का स्मरण करो। गुरु उपदेशों को मानो। साधुओं की संगति करो। भक्ति से संबंधित भागवत् आदि कथाओं को पढ़ो, गाओ। कृष्ण के सायुज्य बिना यह जीवन व्यर्थ हो जाता है। कृष्ण नाम रूपी बहते हुए रस को प्यासा बनकर पीओ। श्रीकृष्ण की शरण में जाकर, जीवन को सार्थक करो। (44)

सूर ने एक और जगह पर सत्संग को मुक्ति क्षेत्र कहा है। उनका कहना है आत्मरूपी तोता रस पीने वन को गया, जिस में रामनाम रूपी अमृत रस था। श्रवण रूपी पात्र में भरा हुआ था। चारों ओर वाराणसी जैसा मुक्तिक्षेत्र बन गया क्योंकि उधर सत्संग था। अर्थात् साधुओं की संगति काशी जैसे पुण्य क्षेत्र की तरह पवित्र है। (45) ठीक इसी प्रकार माधुर्योपासिका मीरा ने भी सत्संगति को महत्व दिया है। वह कहती है 'हे मन! राम नाम रूपी रस पीओ। कुसंग को त्याग करो। सत्संग में बैठकर सदा हरि चरण के सुख ले लो। काम, क्रोध, मद, लोभ, एवं मोह को मन से बाहर निकालो। मीरा के प्रभु उनके रंग में भी गाता है।(46)

नाम्मालवार "तिरुवाय्मोलि" में विष्णु के भक्त वैष्णवों के सांगत्य में रहने का उपदेश देते हैं। विष्णु भक्तों की वन्दना करने से ही सारे दुः,ख दूर हो जायेगा। उनका कहना है "देखने में श्रेष्ठ वैष्णवों के समूह को देख लिया है। देख लिया है। हे भक्त जन। सभी आ जाइए। उनके साथ रहकर उनके चरण

की वन्दना करके उन की सेवा करेंगे। भ्रमरों से मण्डित तुलसीमालाओं से शोभित लक्ष्मी पति माधव की महिमाएँ सभी गायेंगे और उनके साथ घूमेंगे।" (47)

भक्त कुलशेखरालवार भक्तों के सांगत्य को गंगा स्नान जैसा पवित्र मानते हुए कहते हैं – "पंकज वासिनी लक्ष्मी के नायक। एक ही बाण से सप्त ताल वृक्ष को नीचे गिराये, गोचरण करनेवाला, श्रीकृष्ण की महिमाओं गानेवाले भक्तों की पद धूलियों को अगर पा लिया तो गंगा में स्नान करने की कामना भी नहीं होती। यहीं काफ़ी है।" (48) वे आगे कहते हैं "आदि अंत का कारक, सभी कालों में रहनेवाला, जगत के कण कण व्यापी, देवताओं के शिरोधार्य भक्त जन, भक्ति के बिना रहनेवाले नास्तिकों को भी सन्मार्ग दिखाकर उन्हें सज्जन बनानेवाले रंगनाथ के परम भक्त शिरोमणियों के पास मेरा मन सदा प्रेम बरसायेगा। (49)

इस प्रकार आलवारों का कहना है भक्त जनों के सांगत्य से दुष्ट भी सज्जन हो जायेंगे। यहीं सांगत्य का फल है। सत्सांगत्य से आत्मा भगवान के भजन, कीर्तन, गुणगान में रमती है, जिससे ब्रह्मानंद पाकर परमशान्ति की प्राप्त कर लेती है।

2.4. <u>निरंतर भजन</u> :

भगवान के गुण, रूप, महत्व, उनकी महिमा, कृपा आदि के गुणगान करना ही भजन है। "निरंतर भजन" में सदा उनका स्मरण रहता है। श्रीमद्भगवद् गीता में भक्तियोग के अंतर्गत सदा भगवान में मन–बुद्धि रमाने का उपदेश दिया गया है। (50) इसका आचरण करने का साध्य ही भजन है। शांडिल्य भक्ति सूत्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पराभक्ति की प्राप्ति का साधन है भजन।(51)

नारद भक्ति सूत्रों में भजन के महत्व का वर्णन मिलता है। भगवन्नाम स्मरण सदा करना चाहिए। (52) सूत्र 79 व 80 में बताया गया है कि सदा सर्वभावों से निश्चिन्त होकर भगवान का भजन करना चाहिए। (53) भक्तों के कीर्तनों के द्वारा किये गये गुणगानों से भगवान भक्तों पर अनुग्रह करते हैं। (54)

भगवन्नाम कीर्तन का माहात्म्य तो श्रीमद्‌भागवत में विशेष रूप से कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन पक्ष को अपनी भक्ति में बड़ा महत्व दिया हैं उन्होंने लिखा है कि श्रीकृष्ण नाम कीर्तन चित्त रूपी दर्पण का मार्जन है, संसार रूपी महादावाग्नि का शमन है, श्रेय रूप कुमुद को विकास करनेवाली चन्द्रिका का प्रकाश कर्ता, विद्या–वधू का जीवन है, आनंद सिन्धु को बढानेवाला है, प्रतिपाद में पूर्णामृत का आस्वादन देता है एवं आत्मा को सबसे निमग्न करता है, ऐसा श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन परम विजय को प्राप्त हो। (55)

श्रीमद् भागवत में भजन की महिमा अनेक स्थानों में बातयी गयी हैं भागवत में कीर्तन का महत्व शुकदेव इस प्रकार बताते है 'कलियुग में सब दोष ही भरे हैं, लेकिन यह वही गुण है श्रीकृष्ण के कीर्तन जिससे ही मनुष्य सारे बन्धनों से छूटकर परमात्मा को पा जाता है। (56)

भक्ति रसामृत सिन्धु में कहा गया है "भगवान के नाम तथा लीला को ऊँचे स्वर में गाना ही कीर्तन है। (57) भगवान के भजन से मन में प्रशांतता आ जाती है, मन निर्मल हो जाता है।

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित 'निरंतर भजन का महत्व'

हिंदी कृष्ण भक्त एवं आलवारों के पाशुरों में "निरन्तर भजन का महत्व : हिंदी कृष्णभक्ति शाखा के अग्र कवि सूर अपने मन को हरि भजन करने का उपदेश देते हुए कहते हैं (58) – "हे मन! वाचा, कर्मणा गोविंद के पद का भजन करो। हे करुणानिधि। दीनबंधु तुम्हारे भजन से मुझे सहज समाधि में रुचि पैदा

करें। मिथ्या, विषय भोग, लोभ मोह, वाद–विवाद आदि को छोड़कर तुम्हें अपना लिया। अपने चरण को हृदय में रखने के कारण उसके प्रताप से मुझे सकल सुख मिल जायेगा।

सूरदास का कहना है भजन के बिना सुख की प्राप्ति नहीं होगी। भजन न करने से होनेवाले नष्ट के बारे में बताते हुए सूर कहते हैं। (59) ''अब माँगने से सुख कैसे प्राप्त होगा हे अभागे जैसा बोया है वैसा काटना पड़ता है। यह तेरे कर्मों का फल है। तुम ने तीर्थ यात्रा, व्रत आदि नहीं किया, दान नहीं दिया, यह यज्ञ नहीं किया। अब तक सत्कर्म नहीं किया, आगे करेगा भी नहीं। बबूल बोकर उसमें से अंगूर फल की लालसे से देखता है कि फल लगे है (या) नहीं अर्थात् बुरे कर्म करके अच्छा फल चाहते हो। सूरंदास कहते हैं तू भगवान का भजन न करके काल के संग लगा, फिर रहा है (अर्थात् मौत साथ लगी घूम रही है, अब तो भगवान् का भजन कर लो।

माधुर्योपासिका मीरा भी निरंतर भजन करने को कहती है। उनका कहना है 'हे सखी! अब गोविंद के गुणों का ही गान करूँगी। अगर राजा रूठ गया तो मुझे अपने नगर से ही निष्कासित कर सकेगा, किन्तु श्रीकृष्ण ही रूठ गये तो मैं कहाँ जाऊँगी। राणा ने मेरे लिए विष का प्याला भेजा था जिसे मैं चरणामृत समझकर पी गयी। बाद में मुझे मारने के लिए पिटारी में साँप रखकर भेजा था। किन्तु वह भी मुझे शालग्राम के रूप में ही प्रतीत हुआ। और अब तो मैं पूर्णतः कृष्ण प्रेम में डूब गयी हूँ, अब उसे अपने पति के रूप में पाना है। (60) एक और पद में भी मीरा ने इसी प्रकार के भाव को व्यक्त किया है ''मीरा हरि के गुणगान गाकर मग्न हो गयी। (61)

आलवारों ने भी निरंतर भजन की आवश्यकता को स्वीकार किया है। भक्त आलवार कहते हैं ''असुर, वीर जगत् में रहनेवाले प्राणियों को खाकर घूमनेवाले हैं। ऐसे दुष्ट असुरों का अंत करके साधु सज्जनों की रक्षा करनेवाला है श्रीपति विष्णु।

उनके लीलागान को गीतों में गाकर, उनके संकीर्तन कूद कूद कर गाकर बड़ी तन्मयता से भक्ति न करनेवालों का जन्म व्यर्थ है। ऐसे लोगों को जन्म राहित्य नहीं होता। (62)

नम्मालवार आगे कहते हैं "मधुसूदन के बिना मेरा कोई और नहीं।" किसी से भी फायदा नहीं। जीवन भर उनके गुणगान करके, उनकी महिमा से संबंधित गीतों को गाकर, नाचकर बिताया। मेरी आपदाओं में सहायक बनकर मेरा उद्धार किया। यह मेरा सौभाग्य है कि वामन ने मुझे अपनी ओर ले लिया। (63)

इस प्रकार हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवार पाशुरों में भक्ति शास्त्रों में वर्णित भजन के महत्व का वर्णन मिलता है।

भक्ति की श्रेष्ठता : कर्म, ज्ञान, योग से भक्ति की श्रेष्ठता :

हिंदी कृष्ण काव्य एवं आलवारों के पाशुरों के संदर्भ में : कर्म, ज्ञान, योग से भी भक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। पवित्र मन से, शुद्ध प्रेम के साथ किसी प्रकार के विधि–निषेध के बिना उस प्रियतम भगवान की साकार मूर्ति की उपासना ही भक्ति है।

नारद भक्ति सूत्र में भी भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ बताया गया है। (64) साथ–साथ शांडिल्य का कहना है कि भक्ति सदा द्वेष रहित है।(65)

ज्ञान और योग मार्गों में निर्गुण ईश्वर की उपासना पर बल दिया गया। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है – "निर्गुणवादियों केलिए साधन मार्ग में संकट विशेष है क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्त गति दुःख से प्राप्त की जाती है। अर्थात् देहधारियों की (मनुष्यों को) निर्गुणोपासना करना बहुत कठिन है, दुःख प्रद है। यह जन सुलभ नहीं है। (66) और कृष्ण कहते हैं "जो मेरे में पूर्ण श्रद्धा के

साथ मन लगाकर निरंतर श्रद्धा से मेरे भजन में मन को लगाकर मेरी उपासना करते हैं, वे योगियों में श्रेष्ठ योगी है, वे भक्त मुझको ही प्राप्त करते हैं। (67)

इस से स्पष्ट है कि योग से भक्ति श्रेष्ठ है। गीता में खुद भगवान कहते है "सभी कर्मों को त्याग करके मेरी शरण में आओ मैं तेरा उद्धार करूँगा। (68)

श्रीमद् भगवद्गीता में स्थान स्थान पर भक्ति और ज्ञान का वर्णन मिलता है। ज्ञान और भक्ति दोनों ही अंतरंग भाव है। इसीलिए अंतरंग में रहनेवाले परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। गीता में कहा गया है "इंद्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है जो साधन जितना ही अंतरंग होगा उतना ही भगवान के निकट होगा। (69) इस दृष्टि से इन्द्रियों से होनेवाले कर्म ज्ञान अथवा भक्ति सहायक होकर ही परमात्मा की भक्ति में साधन होती है।

भागवत् में भागवतकार ने ज्ञान और मुक्ति से बढ़कर भक्ति को बतलाया है। पंचम स्कंध में शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं "भगवान भक्त को मुक्ति भी सहज में दे देते हैं लेकिन भक्ति योग को सहज में नहीं देते। (70)

भागवत् दशम स्कंध में भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताया गया है। ब्रह्म स्तुति में कहा गया है "हे प्रभु जो लोग शुभदायिनी आपकी भक्ति को त्याग करके ज्ञान के लिए क्लेश करते हैं उनके हाथ में क्लेश ही लगता है और कुछ नहीं जैसे खोखले धानों के कूटनेवालों को भूली और परिश्रम के सिवा कुछ नहीं मिलता।"(71)

इस प्रकार भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ है। उसकी प्राप्ति के लिए शास्त्रग्रन्थों के अध्ययनों की आवश्यकता है। न कि वेद, पाठ यज्ञ यागादि करने की। बल्कि पवित्र हृदय से परम श्रद्धा के साथ भगवान की वन्दना करना है जिससे भगवान प्रसन्न होते हैं। इससे स्पष्ट है कि भगवद् प्राप्ति के लिए पवित्र भक्ति की ही आवश्यकता है।

2.5. गुरुभक्ति (या) गुरु महिमा :

भक्ति के साधन के अंतर्गत आनेवाला एक और प्रमुख अंग है 'गुरु महिमा' या 'गुरुभक्ति'। हिंदू धर्म, संस्कृति और सभ्यता में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। गुरु के बिना कोई भी काम और ज्ञान नहीं होता है। गुरु को त्रिमूर्तियों के स्थान पर रखकर उनके प्रति गौरव रखा गया है।

'गुरुब्रह्मा, गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः'

कहकर भारतीय अपनी श्रद्धा प्रकट करते है। मन्त्र सिद्धि जीवन की सफलता बहुत कुछ गुरु कृपा पर ही निर्भर होती है। इसीलिए श्रुतियों में 'आचार्य देवोभव' कहा गया है। भगवान तक पहुँचाने के लिए गुरूपदेश की आवश्यकता है।

भक्ति शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ शांडिल्य भक्ति सूत्र में यह बताया गया है कि भगवान से भक्ति रखना और गुरु से भक्ति रखना दोनों बराबर है। अर्थात् गुरु देवता के समान है। उनके साहचार्य में रहना है। (72)

हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों द्वारा वर्णित 'गुरुभक्ति'

हिंदी के सारे कृष्ण भक्त कवियों ने गुरु की महिमाओं को स्वीकार किया है। सगुण भक्त कवियों की अपेक्षा हिंदी के निर्गुण कवि गुरु को परमात्मा से भी बढ़कर माना है। कबीर इसीलिए 'गुरु' को भगवान से भी बड़ा माना है क्योंकि भगवान तक पहुँचानेवाला व्यक्ति गुरु ही है।

गुरु–भक्ति सब भक्तियों में श्रेष्ठ है क्योंकि कठोर परिश्रम और अनेक कष्टों को भोग कर भी जो दुर्लभ ज्ञान, गूढ रहस्य विद्यादि मानव को प्राप्त नहीं होते, वे गुरु–भक्ति एवं गुरु के आशीर्वाद से सहज ही प्राप्त हो जाते है।

गुरु–भक्ति का स्वरूप यत्र–तत्र श्रीमद् भागवत में प्रतिपादित है। सप्तम स्कन्ध में गुरु के अनुशासन में रह कर वेदाध्ययन की आज्ञा दी गई है।(73) और दशम स्कंध में रामकृष्ण के माध्यम से गुरु को इष्टदेव के रूप में प्रतिपादित कर गुरु की महत्ता का निदर्शन किया गया है। (74) पुष्टि मार्ग में भी गुरु भक्ति को मानव जीवन का परम उत्कर्ष विधायक साधन माना गया है।

गुरु की कृपा होने पर ही प्रभु–दर्शन, प्रभु–वश्यतादि की प्राप्ति होती है। 'शिक्षापत्र' में स्पष्ट रूप में कहा गया है कि आचार्य (गुरु) की कृपा से हरि उसी प्रकार भक्त के घर में निवास करते हैं, जैसे योगी के हाथ में पारद। (75)

सूरदास जी ने भी गुरु की अनिवार्य आवश्यकता को स्वीकार करते हुए, गुरु का स्थान भक्ति मार्ग में अत्यन्त उच्च माना है। गुरु भक्ति को सूर ने भगवद् भक्ति का प्रधान लक्षण माना है। (76)

सूर ने भी गुरु के माध्यम से ब्रह्म से सम्बन्ध स्थापित कर अपनी समस्त चित्त वृत्तियों को कृष्णाभिमुखी बना दिया था।

इसके साथ ही सूर ने सकल भ्रम–नाश के लिए गुरु के उपदेश की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए माया भुजंगिनी के विष को दूर करने के लिए गुरु रूपी गारुड़ी द्वारा प्रयुक्त कृष्ण–नाम मन्त्र को अमोघ रूप में मान्य ठहराया है।(77)

'पुरञ्जन' की कथा के अन्त में शब्द मात्र से शब्द ब्रह्म के प्रकाशक रूप में(78) वृत्रासुर प्रसंग में गुरु की कृपा में भगवत् कृपा के ख्यापन रूप में तथा भवसागर में डूबते हुए को बचाने वाले के रूप में एवं सत्पथ के दीपक के रूप में

गुरु का महत्व प्रतिपादित कर सूर ने निजवृत्त कृष्ण लीला गान गुरु की कृपा से ही संभव माना है। (79)

सूर ने कृष्ण लीला रहस्य का ज्ञान तथा लीलाओं के प्रत्यक्षवत् दर्शन का कारण भी गुरु कृपा को ही स्वीकार किया है। भक्ति प्राप्ति का अमोध उपाय उन्होंने गुरु सेवा को माना है। (80)

तमिल के आलवारों में से 'मधुरकवि' आलवार को छोड़कर कोई भी विशेष रूप से गुरु की महिमा नहीं गाये है। आलवारों ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को ही अपने माँ–बाप, हितोपर्दश देनेवाले सद्गुरु सब कुछ मान लिया है। आलवार किसी भी विशेष संप्रदाय से बद्ध नहीं थे जैसे हिंदी के कृष्ण भक्त वल्लभ संप्रदाय से जुडे। आलवारों ने श्रीवैष्णव धर्म के सिद्धांतों का पूर्ण रूप से पालन करते हुए भावभक्ति की प्रधानता दी है।

आलवारों में 'मधुर कवि' ही एक मात्र कवि जिन्होंने गुरु महिमा संबंधी एक प्रत्येक कृति 'कण्णिनुण् चिरुत्ताम्बु' की रचना की। उन्होंने उस रचना को अपने सद्गुरु नम्मालवार पर लिखा है। मधुर कवि अपने गुरु नम्मालवार के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहते हैं 'गुरुमहिमा (नम्मालवार की महिमा) गा गाकर उनके चरणारविंदों की वन्दना करूँगा। उनके सिवा कोई देवता मुझे नहीं। (81) आगे वे गुरु महिमा इस प्रकार गाते है – 'मेरे गुरुजी ने मुझे प्यार से शिष्य के रूप में अपना लिया है जिससे मेरे अज्ञानांधकार मिट गया। ज्ञान प्रदाता गुरु की ख्याति को मैं चारों ओर फैलाऊँगा। (82)

अगले भक्ति साधन है 'पूर्ण समर्पण' – इसका सविस्तार वर्णन भक्ति के विविध पक्षों के अंतर्गत आनेवाले अध्याय में दे चुका है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों की रचनाओं में एक अनुपम भक्ति रस पल्लवित है। भक्ति में जाति, वर्ण, वर्ग गत भेदभाव को स्वीकार न करके पवित्र प्रेम से पूर्ण भक्ति को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रसार एवं प्रचार करके दोनों साहित्यकारों ने भक्ति को जन सुलभ बनाया।

⇒1. भक्तिशास्त्रों में वर्णित पराभक्ति दोनों साहित्य में यथेष्ट रूप से देखने को मिलती है। दोनों द्वारा वर्णित भक्तिभावों का एक अनुपम संगम देखने को मिलती है।

भक्त भगवान तक पहुँचने के लिए जिन पद्धतियों को शास्त्र बद्ध अनुष्ठानों का अनुकरण करता है इन्हें भक्ति के साधन की संज्ञा दी जाती है। भक्त भक्ति के साधनों को लगातार श्रद्धा से पूर्ण विनय के साथ आचरण या साधना करके भगवद् मिलन का प्रयास करता है।

⇒2. भक्ति के साधनों में महत्वपूर्ण है 1. सांसारिक मोह एवं विषयासक्ति का त्याग, 2. सत्सांगत्य, 3. दुस्संग का त्याग, 4. भगवान का निरन्तर भजन, 5. गुरु महिमा गायन, 6. कर्मों का पूर्ण समर्पण आदि है। इन सब का समावेश दोनों के साहित्य में हुआ है।

भक्ति शास्त्र के प्रमुख ग्रंथ नारद भक्ति सूत्र एवं शांडिल्य भक्ति सूत्र में इन्हें विस्तार रूप से उदाहरण सहित वर्णन किया गया है। इनके आलावा भक्ति को प्रतिपादित करनेवाले प्राचीन ग्रन्थ भागवत्, श्रीमद्भगवद्गीता आदि में भी इनके संबंध में विस्तृत रूप से बताया गया है। भक्ति साधनों का प्रमुख ध्येय है भगवद् प्राप्ति है। भगवद् प्राप्ति के लिए अपनानेवाली पद्धतियाँ है भक्ति के साधन।

साधनों को निरन्तर परिश्रम करके श्रद्धा के साथ साधना करनी है या आचरण करना है।

नारद भक्ति सूत्रों में कहा गया है कि भगवद् प्राप्ति के लिए भी पूर्वजन्म का सुकृत चाहिए। नारद भक्ति सूत्रों में 'सांसारिक मोह एवं भोगों को त्याग करके इन्द्रिय निग्रह होकर रहने की बात बतायी गयी है। इसी बात का महत्व भगवद्गीता में भी प्रतिपादित किया गया है।

सभी संत कवियों ने विषयासक्ति को छोड़ने का उपदेश दिया है। उनका विश्वास है अगर आराध्य की शरण में जाकर रहे, तो विषय वांछा से उन्हें मुक्ति मिलेगी। हिंदी के कृष्ण भक्त कवि तमिल के आलवार दोनों ने विषयासक्ति छोड़ने का हितोपदेश दिया है। हिंदी के निर्गुण भक्त कवियों ने इस विषयवांछा को 'माया' का नाम देकर उससे दूर रहने का उपदेश दिया है। कबीर ने तो 'माया' की तुलना 'कनक' और 'कामिनी' से की। कृष्ण भक्त कवि सूरदास अपने को बड़ा पापी मानकर हरि से विषय–वांछाओं से बचाने की प्रार्थना करते है। भक्ताग्रेसर कुलशेखर आलवार को तो संपदा, वैभव नहीं चाहिए। इस माया को छोड़कर तिरुमल पहाड़ पर बैठकर हरि ध्यान करते हुए तप करना चाहते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है हरि–ध्यान से माया दूर हो जायेगी। तोंडरड़िप्पोडि आलवार को तो विष्णु के दास बनकर रहने में जो सुख मिलता है वह कहीं अन्य सांसारिक सुख में नहीं जाना चाहता है। आलवारों के साहित्य में सैकड़ों पद ऐसे है जो मनको उपदेश देनेवाले है, जिसमें विषयभोग को त्याग करने को कहा है।

हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्यकारों एवं आलवारों की भक्ति में दैन्य भाव ज़्यादा दीखता है। सारे आलवार मूलतः दास्य भक्त है। वे अपने को अति मलिन, हीन, दीन मानकर अपने उद्धार की प्रार्थना करते हैं। तोंडरड़िप्पोडि आलवार अपनी रचना 'तिरुमालै' में अपने अधम गुणों का चित्रण अत्यंत दीनता से करते हैं। सूर के 'विनय' एवं 'तिरुमालै' में समानताएँ ज़्यादा है। पेरियालवार तो तिरुमोऴि में

अपने को इतना अधिक पापी मानते हैं कि भगवान के पवित्र नाम लेने की योग्यता उसमें नहीं है।

दूसरे साधन के अंतर्गत आता है 'दुस्संग का त्याग'। संगति के फल के बारे में भक्तिशास्त्रों के प्रमुख ग्रन्थों में बताया गया है। सत्संगति से होनेवाले लाभ, दुस्सांगत्य से होनेवाले नष्ट के बारे में बताकर सत्संगति पर बल दिया गया है। नारद भक्ति सूत्र में दुःस्संगति को त्यागने की बात कई बार कही गयी है। नारद भक्ति सूत्र 43, 44 में दुष्ट–संगति को छोड़ने की बात पर बल देकर दुस्सांगत्य से होनेवाले नष्ट के बारे में बताये गये। हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवारों ने दुस्सांगत्य को त्याज्य बताया है और सत्संगति रखने का उपदेश दिया है। सूरदास जी के लिए हरि से एवं हरिविमुख से रहनेवाले लोग दुष्ट है। क्योंकि उनके सांगत्य से बुद्धिभ्रष्ट होती है। ठीक इसी प्रकार आलवारों ने भक्ति रहित मनुष्यों की संगति को त्यागने का उपदेश दिया है। नम्मालवार के अनुसार कृष्ण की स्तुति न करनेवालों की जिन्दगी बेकार है।

भक्ति के तीसरे साधन है 'निरन्तर भगवद् भजन' हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल आलवारों ने निरंतर भजन करने को कहा।

⇒3. भक्तशिखामणि नम्मालवार अपने 'तिरुवायमोऴि' में श्रीकृष्ण की महिमाएँ एक दूसरे से कहकर, कूद–कूदकर उसकी महिमाएँ गाने को बताते है। ठीक उसी प्रकार का वर्णन भक्ति शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ नारद एवं शाडिल्य भक्ति सूत्रों में, श्रीमद्भागवत् भगवत्गीता में मिलते हैं। निरन्तर भजन पर सारे भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों ने जोर दिया है। सभी भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों में कर्म, ज्ञान, योग से भी भक्ति की श्रेष्ठता बतायी गयी है।

हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवारों ने भी भक्ति को सर्वोपरि स्थान देकर उसका मधुर रसास्वादन किया है, नारद भक्ति सूत्र में 'सातुकर्मज्ञानयोगशयधिकतरा– फल रूपतामक करके भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ बताया है।

भक्ति के साधन के अंतर्गत 'गुरुभक्ति' या 'गुरुमहिमा' भी एक हैं।

⇒4. हिंदी के सारे कृष्ण भक्त कवि गुरु महिमाओं को स्वीकार करके उन्हें गान किया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि गुरु की कृपा से ही इस सांसारिक बंधन से पार करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। तमिल के आलवारों ने विशेष रूप से किसी से दीक्षा नहीं ली हैं। लेकिन पारंपरिक वैष्णावाचार्यों से विद्या प्राप्त की। बारह आलवारों में से मधुर कवि आलवार को छोड़कर किसी के पाशुरों में 'गुरुमहिमा' का उल्लेख तक नहीं मिलता। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को ही अपने माँ–बात, सखा, गुरु बंधु मानकर उनसे नाता जोड लिया। खुद उसे अपने परम गुरु के रूप में स्वीकारते हैं।

⇒5. आलवारों में एक श्रीमधुरकवि आलवार जिन्होंने नम्मालवार को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया है, उन पर ही एक रचना प्रस्तुत की। उस रचना का नाम है 'कण्णिनुन् चिरुत्तांबु' यह गुरुभक्ति एवं गुरुमहिमाओं से संबंधित सर्वोत्कृष्ट रचना जिसमें अपने गुरु नम्मालवार के प्रति मधुर कवि अपने विनय एवं आदर भाव प्रस्तुत करके उनकी महिमाएँ गायी है।

⇒6. इस प्रकार हिंदी के कृष्णभक्त कवि एवं तमिल आलवारों के पाशुरों में भक्ति शास्त्रों में वर्णित प्रमुख भक्ति के साधन एवं उनकी महिमाएँ यत्र–तत्र गायी गयी है। इन दोनों भाषा के साहित्यकारों ने भक्ति की तन्मयता को स्वानुभव के द्वारा प्राप्त अनुभूतियों को एवं अपने हृदय के भावोद्‌गारों प्रकट

किया है। दोनों अच्छे गायक थे। इसी वजह से हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवार द्वारा रचित साहित्य पूरा गीति साहित्य है। अपने सुमधुर वाणी से अपने प्रियतम की प्रत्येक लीलाओं को तन्मयता के साथ गाते हुए विह्वल होकर उनकी प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के भक्ति साधनों को अपनाये हुए थे लोग सचमुच धन्य है। इनके द्वारा किये गये भक्ति साधनों में अनायास से भक्तिशास्त्रों में वर्णित भक्ति के सभी साधनों का समावेश हो गया है। याने इनके द्वारा अपनाये गये भक्तिसाधनों को सैद्धांतिक विवेचन करके जन सामान्य अनुष्ठान हेतु शास्त्रों का निर्माण हुआ है। इनके द्वारा वर्णित भक्ति के साधनों के अंतर्गत आनेवाले हैं 1. सत्सांगत्य, 2. दुस्संग का त्याग, 3. भगवान के प्रति दीनता, 4. निरंतर भजन, 5. गुरु महिमा, 6. कर्मों का पूर्ण समर्पण आदि। इन सबको हम इनकी रचनाओं में यथेष्ट रूप से देखते हैं। भक्ति शास्त्र के ग्रन्थों के संदर्भ में उन्हें देखा जाए तो यह निष्कर्ष पर अवश्य पहुँचते हैं कि इनके साहित्य भक्तिशास्त्रों के ग्रन्थ जैसे है।

⇒7. भक्ति शास्त्रों में वर्णित सारे भक्ति–साधन इनकी रचनाओं में यथेष्ट रूप से उपलब्ध है। अनायास से उनके मुँह से निकले हुए गीतों का सैद्धांतिक विवेचन के संदर्भ में तुलना करके दिखाने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ

1. तेषा मेवानुकंपार्थ महमज्ञनजं तमः।
नाशयाम्यात्म भावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता।।– गीता अध्याय 10, श्लोक 22

2. मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्। – गीता अध्याय 11–47

3. सुदर्दश मिदं रूपं दृष्टवानसियन्मम्।
देवा अप्स्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।। – गीता अध्याय – 11–12

4. नारद भक्ति सूत्र – 38
मुख्यतस्तु महत्कृप्यैव, भगवत्कृपालेशाद् वा।।

5. लभ्यते पि तत्कृप्यैव – नारद भक्ति सूत्र – 40

6. भावोत्थोऽति प्रसादोत्थः श्री हरेरिति स द्विधा। भक्ति रसामृत सिन्धु
रूपागोस्वामी – 1–4–3

7. श्रद्धावान लभते ज्ञानं, तत्परस्संयतेन्द्रिय।
ज्ञानं लब्धवा परां शांति अचिरेणाधि गच्छति –श्लोक 39 गीता अध्याय–4

8. तस्यौ तपो दमः कतैति प्रतिष्ठा – केनोपनिषद – 4–8

9. कृति साध्यं ज्ञान भक्ति रूपं शास्त्रेण बोध्यते (3) भागवत 3–29–14
ताश्यां विहिताश्यां मुक्ति मर्यादा।
तद्विहितानामपि स्वस्वरूप बलेन स्वप्रापणं पुष्टिरित्यु।
– अणुभाष्य–वल्लभाचार्य

10. योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना
श्रद्धावान भजतेयोमां समेयुक्तमों मतः – गीता – 6, श्लोक – 47

11. भागवत 3–29–14

12. नारद भक्ति सूत्र – तृतीय अध्याय पूरा
    (1) नारद भक्ति सूत्र 36
    (2) नारद भक्ति सूत्र 35
    (3) नारद भक्ति सूत्र 37
    (4) नारद भक्ति सूत्र 43

13. ध्यायते विषयान्पुंस : संगस्तेपूपजायते
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधाऽ भिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोह : सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रशंत् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।
– गीता – अध्याय 2, श्लोक 62, 63

14. विहाय कामान् यस्वर्व
पुमांशचरित निस्पृहः
निर्मिमो निरहंकार :
स शांति मधिगच्छति – गीता 2–71

15. त्रिविधं नरकस्येधं द्वारं नाश्नमात्मनः
कामः क्रोधस्तय लोभ : तस्मां देवत्रयमं त्यजेत – गीता 16–21

16. हरि हौं महा पतित अभिमानी
परमाथ्थ लौं बिरत, विषयरत भाव–भगति नहि नैकंहु जानी।
निसि दिन दुखित मनोरध करिकरि पावत हूँ तृष्णा न बुझानी
सूरसागर प्रथम स्कन्ध 149, पद संग्रह ना.प्र.स

17. है कुच कंचन के कलसा न ये आम की गाँठ मद्वीक की चाम में।
बेनी नहीं मृगनैननि की यौ नसेनी जम राज के धाम मैं।।
– रसखान, मध्यकालीन कृष्ण काव्य, पृ. 347

18. अब मोहिं भीजत क्यों न उबारी
दीन बंधु करुनामय स्वामी जन के दुःख निवाये।
ममता घटा, मोह की बूँदे सलिता मैन अपाये।
बूढत कतहूँ, थाह नदि पावत गुरु जन ओट अधारो।
गुरजन क्रोध, लोभ का नारी सूझत कहूँ न उधाये।
तृसना तड़ित चमकि छिनही छिन अहनित यह तन जाये।
यह सब जल कलिमलदि गदे हैं बोरत सहस प्रकारो।
–सूरदास पतितन को खगी बिरदहिंनाथ सम्हारो
– सूरपंचरत्न लाला भगवानदीन – विनय – पृ. 5

19. पेरुमाल तिरुमोलि़ कुलशेखर आलवार पाशुर 668, पृ. 289

20. – वही – पाशुर 682, ना.दि.प्र. 292

21. पेण्डिराल सुगंगल उयप्पाण पेरियदु ओर इडुबैंप्पूण्डु
उण्डु इराक्किडक्कुम अप्पोदु उडलुक्के करैन्दु नैंदु
तण तुलाय मालै मार्बन तमर्कलाय पाडि आडि
तोण्डु अमुदम उण्णा तोलमबर चोरू अगक्कुमारे
– तिरुमालै –तोंडरडिप्पोड़ि आलवार – पाशुर 356, ना.दि.प्र.पृ.876

22. वीडुमिन मुट्रवुम्
वीडु चेयद उम्मुयिर
वीडुडै यानिडै
वीडु चेरयिन – नम्मालवार – तिरुवायमोलि – पाशरु 2910, पृ. 1068,

23. स्त्री धन नास्तिक (वैरि) चरित्रं न श्रवणीयम्
अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्
तदर्पिताखिलाचारः सन् काम क्रोधाभिमानादिक
तस्मिन्नेव करणीयम् – ना.भ.सू. 63

24. नाथ जू अब कै मोहि उबारे।
पतितन में विख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारे।।
बड़े पतित नाहिन पासंगहु अजामेल को हो बिचारे।
भाजै नरक नाऊँ मेरी सुनि जमहु देय हठि तारो।।
छुद्र पतित तुम तारे श्रीपति अब न करो जिय गाये।
'सूरदास' साँचो तब माने जब होय मम निस्तारो।।
सूरसागर – विनय – पृ. 25, पद 58

24. हरि हौं सब पतितन को नायक।
के करि सकै बराबरि मेरी और नहीं कोउ लायक –
सूरसागर विनय पद 104, पंचरत्न, पृ. 46

25. हौं तो पतित सिरोमनि माधो।
अजामिल बातन ही तार्‍यौ हुतो जो मो तै आधो।। विनय 107 पद

26. पेरिय तिरुमोलि – तिरुमंगै आलवार पाशुर 950, ना.दि.प्र. पृ 381

27. तिरुमालै – तोंड़रडिप्पोडि आलवार पाशुर 887, ना.दि.प्र. पृ. 359

28. वाक्कु तूयमै इल्लमैयिणाले
माधवा उण्णै वाय्कोल्ल माट्टेन
नाक्कु निण्णै अल्लाल अरिवसम् अण्रू
मूर्क पेचुकिराण इवण एण्रू
मुणिवायेलुम एण नाविणुक्कु आर्ट्‌ण
काक्कै वायिलुम कट्टुरै कोव्वार
कारणा, करुण कोडियने
–पेरियालवार – तिरुमोलि पाशुर 433, ना.दि.प्र. पृ. 195

29. दंभो दर्पोभिमानश्च, क्रोधः पारूष्य मेवच
अज्ञान चाभिजाततस्य पार्थः संपदमासुरीम्।। गीता 16–4

30. अहंकारं बलं दर्पं, कामं, क्रोधं च संश्रिता।
मामात्म परदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका। – गीता 16'18

31. भागवत् 6.1, 56–61

32. संगत्यागो विदूरेण भगवद्‌विमुखैर्जने – भक्ति रसामृत सिन्धु – 1–2–27

33. नारद भक्ति सूत्र : अध्याय 3, सूत्र 43
दुस्संग : सर्वर्थेव त्याज्यः

34. कामक्रोध मोह स्मति भ्रंश बुद्धिनाश (सर्वनाश) कारणत्वात्
– नारद भक्ति सूत्र : अध्याय 3, सूत्र – 44

35. तरङ्‌गायित अपीमें सड्‌.गात् समुर्द्रायन्ते (न्ति)।
– नारद भक्ति सूत्र : अध्याय 3, सूत्र – 45

37. छाँडि मन हरि विमुखन को संग
जाके संग कुबुद्धि उपजै परत भजन में भंग।।
कहा भयौ प्य पान करोये विष नहिं तजत भुअंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निसि दिन रहत उमंग।
कागहि कहा कपूर ख्वाए, स्वान न्हवाए गंगा
स्वर को अरगज लेपन, मरकट भूषण अंग।
पहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग ।।
–सूरदास – पंचरत्न – विनय पद 34, पृ. 16

37. तिरुवायमोलि – नम्मालवार पाशुर 3165, पृ. 1155

38. – वही पाशुर 3168, पृ. 1155

39. मच्चित्ता मद्‌गतप्राण बोधयन्तः परस्परं
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च। – गीता 10–9

40. न राधेयति मां योगो, न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्यत्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा।।
व्रतानि यज्ञच्छन्दासि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरून्धे सत्संगः सर्व संगापहो हि माम।। – भागवत – 12 – 1,2

41. सत्संगत्वे नित्संगत्वम्
नित्संगत्वे निर्मोहत्वम्
निर्मोहत्वे निश्चल चित्तम्
निश्चल चित्ते जीवन्मुक्तिः – शंकर – भजगोविंदम्

42. मुख्यतरूत् महत्कृप्यैव – भगवद्‌कृपालेशाद्‌वा, ना.भ.सूत्र 38

43. तस्मिस्तज्जने भेदभावात् – ना.भ.सूत्र 41

44. रे मन कृस्न नाम कहिं – लीजै
गुरु के वचन अटल करि मानहु साधु समागम कीजै।
पढिये गुनिये भगति भागवत और कहा कहि कीजै।।
कृस्न नाम बिनु जनम वादि ही वृथा जिवन कहा जीजै
कृस्न नाम रस ब्रह्मो जात है तृसावत है पीजै।
'सूरदास' प्रभु सरन ताकिये जन्म सफल करि लीजै –
– सूरदास – पंचरत्न –विनय पद 60, पृ. 42

45. सुवा चलि ता बन को रस पीजै
जा वन राम–नाम अमित रस, स्रवन पात्र भरि लीजै।
बन बारानसि मुक्ति क्षेत्र है, चलि तोको दिखराऊँ
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भव्य हो पाऊँ
– सूरसागर प्रथम स्कंध पद 340,

46. राम नाम रस पीजै– मनुआ राम नाम रस
तज कुसंग सत्संग बैठनित हरि चरणां सुख लीजै
काम क्रोध मद–लोभ मोह कूँ चित्त से बहाय् दीजै
मीरा के प्रभु गिरिधर ताहि के रंग में भीजै –
– मीराबाई पदावली – मध्यकालीन कृष्ण काव्य पृ. 246

47. तिरुवाय़मोलि़ – नम्मालवार पाशुर 3353, पृ. 1221

48. तोडुउला मलर – मंगै तोलिणै
तोयत्तुम् चुडर–वालियाल
नीडुमा मरम चेट्रदुम श्वैये निर्णन्दु
आडि पाडि अरंगा ओ एण्स
अलैक्कुम तोण्डर अडिपोडि
आड़नाम पेरिल गंगेनीर कुडैन्दु
आडुम वेट्कै एण आवदे।
–कुलशेखर आलवार – पेरुमाल तिरुमोलि़ पाशुर 659,

– ना.दि. प्र. पृ. 284

49. कुलशेखर आलवार – पेरुमाल तिरुमोलि पाुशर 663, ना.दि.प्र. 284

50. मरुयेव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय – गीता 12.8

51. भक्त्या भजनोपसंहाराद् गौण्या परायै तद्धेतुत्वात – शांडिल्य भक्ति सूत्र 56

52. नारद भक्ति सूत्र 36, अव्यावृत्त भजनात्

53. सर्वदा सर्वभावेन निश्चिते भर्गवानेव भजनीय : ना.भ.सू. 79

54. कीर्त्यमान : (कीर्तनीयः) शीघ्र मेवा विर्भवत्य नुभाक्यति (च) भक्तान्
– ना.भ.सूत्र 80

55. चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणां
श्रेयः कौरव–चन्द्रिका – वितरणं विद्यावधू जीवनं
आनन्दाम्बुधि वर्द्धनं प्रतिपद पूर्णामृस्वादनं
सर्वात्मस्नपन पर विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्
– श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक श्लोक – 2, भागवत दर्शन –
– डॉ. हरिबंशलाल शर्मा,

56. कले दौषनिध राजन्नस्ति को महन्गुणः
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः पर ब्रजेत।। – भागवत 11–6–44

57. नामलीला गुणादीनां उच्चैर्भाषा तु कीर्तनम् – भ.र.सि. 1.2.48

59. गोविन्द पद भज मन बच क्रम करि।
रुचि रुचि सहज समाधि साधि सठ दीन बन्धु करुनामय उर धरि
मिथ्या बाद बिबादा छाँडि सठ विषय लोभ मद मोहै परि हरि।
चरन प्रताप आन उर अन्तर और सकल सुख या संख तरहरि
....
नाम प्रताप आनि हिरहै, महँ, सकलविकार जाहिं सब टहहरि–
– सूरसागर पंचरत्न, विनय पद 30, पृ. 14

59. अब कैसे पैयत सुख माँगे
जैसोइ बोइयै तैसोई लनिऐ, कर्मन भोग अभागे
तीरथ ब्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे
पछिले कम सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे।
बवत बबूर, दाख फल चाहत, जावत है फलं लागे
सूरदास तुम राम न भजिके, फिरत काल सँग सँलाग
– सूरसागर के सौ रत्न विनय पद 13, प्रभुदयालमीतल, पृ. 23
साहित्य संस्थान मथुरा का प्रकाशन

60. माई म्हाँ गोविन्द गुणगुण।
राजा रूठ्याँ नगरीत्यागँ हरि रूठ्याँ कहँ जाण।
....
मीरा तो अब प्रेम दिवॉणी, सॉवलिया वर पाणा –
– मीरापदावली – 39, – डॉ.कृष्णदेवशर्मा – पृ 210

61. मीराँ मगन भई हरि के गुणगाय। ....
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीय ̃ हाथ दियो जाय – मीराबाई पदावली 41
पृ. 213

62. तिरुवायमोलि – नम्मलवार पाशुर 3166, ना.दि.प्र. पृ. 1155
तण्कडल वदृत्तु उल्लारै
तमक्कु इरैचा तडिन्दु उण्णम्
तीण् कल्ल काल असुरस्क्कु
तींगु इलैक्कुम तिरुमालै
पणकल् तलैकोल्ल पाडि
परन्दुम, कुदित्तुम् उल्लादार
मणकोल उलकिल पिरप्पार
वल्विणै मोद मलैन्दे

63. तिरुवायमोलि नम्मालवार पाशुर 3080, ना.दि.प्र. पृ 1127
'मधुसूदर्ण अण्रि ....

64. ना.भ.सूत्र 25

65. द्वैषादयस्तु नैवम् – शा.भ.सू. 45, पृ 92

66. क्लोशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेत साम्
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते – गीता 12–5

67. मय्यावेश्य मनोये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते में युक्ततमा मताः – गीता अध्याय 12, श्लोक 2

68. सर्वधर्मान् परित्याज्या मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सव पापश्योऽमोक्षयिष्यामि मा शुचः – गीता 18.63

69. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेश्यः परत्मनुः स
मनसत्तु पराबुद्धियों बुद्धेः परतस्तु सः ' भगवद्गीता

70. मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् – भागवत् पंचम स्कन्ध,
– श्लोक 6, पृ 28

78. श्रेयः सृतिं भक्तिमृदस्य ते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एवं शिष्यते
नान्यदूयथा सूलितुषावधातिनाम् – भागवत दशम स्कंध अध्याय 14
श्लोक 4 ब्रह्म स्तुति जो 'अष्ट छाप और
वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत है।

72. देवभक्तिरितरस्मिन् साहचर्यात् – शां.भ.सू. 18

73. गुरौ सुदृढ़ सौहृदः।
धन्दांस्यधीयीत गुरोराहतश्चेत् सुयन्त्रितः।। भागवत 7/12/1, 3

74. भक्त्या देवमिवादृतौ ।। भागवत् 10/45/32

75. श्रीममदाचार्य कृपया तिष्ठति स्वगृहे हरिः।
एव विधः सदा हस्ते योगिनः पारदो यथा।। शिक्षा पत्र 1

76. नर तै जनम पाइ कह कोनों।
श्रीमद् भावगत सुनि नहिं स्रवननि गुरु गोविंद नहिं चीनों।
सूरसागर 1/65 तथा
(1) जनम तो बादि हि गयौ सिराई।
हरि सुमरन नहिं गुरु की सेवा मधुवन वस्यौ न जाई
सूरसागर 1/155

77. अजहूँ सावधान किन होइ
माया विषम भुजंगिनी कौ विष उत्रयो नाहिन तोहि
कृष्ण सुमन्त्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायो।
बारम्बार निकट स्रवननि ह्वै गुरु गारुडी सुनायो।
– सूरसागर 2/32

78. सूरसागर 4/13 (407)

79. सूरसागर – वही – 19/ 492, 1110

80. गुरु सेवा करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मनमें आई।।
उठके प्रात गुरुन सिर नावे
श्री आचार्य प्रभु प्रगट बनाई। कृपा भई तब म नमें आई।
सेवा को फल मेवा पावे। सूरदास प्रभु हृदय समावे।।
– सूरदासकृत 'सेवाफल', नाथ द्वारा निज पुस्तकालय को पोथी
नं. 46/5 तथा कांकरौली विद्याविभाग की पोथी नं 242/10

81. कण्णिणुन् चिरुताम्बु – मधुर कवि आलवार पाशुर 938, ना.दि.प्र. पृ. 377

82. – वही – पाशुर 943, ना.दि.प्र. पृ. 377

उपसंहार

उपसंहार

भगवान के प्रति की गई अटूट, अव्यक्त प्रेमभावना भक्ति कहलाती है। दूसरे शब्दों में इसे भगवान के प्रति श्रद्धा के साथ करनेवाली पूजा कहीं जा सकती है। भक्ति की व्याख्या, विवेचन भारत प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में पूर्णरूप से विद्यमान है। भक्ति प्राप्त करने के बाद भक्त इहलोक में रहकर भी पारलौकिक सुख को भोगता रहता है। वह शांत होकर निश्चल मन से, विषय भोगों को त्याग कर सत्संगति का लाभ उठाता है। उसका कोई शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं। वह सृष्टि के सभी तत्वों में उस पारलौकिक परब्रह्म का दर्शन–तादात्य करता है।

भारतीय भक्ति शास्त्र–ग्रंथ जैसे नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता आदि में भक्ति के साधन –महत्व का वर्णन मिलता है। हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य एवं तमिल आलवार साहित्य में स्पष्ट रूप से भक्तिशास्त्र के प्रमुख ग्रंथों में प्रतिपादित भक्ति के विविध रूप साधन पद्धतियाँ आदि की अच्छी झलकियाँ मिलतीं हैं।

भक्ति भावना के स्रोतों की खोज में विद्वान लोग वैदिक युग तक जाते हैं। आरंभिक वैदिक युग में प्रकृति प्रमुख स्थान पर है और इंद्र सर्वोपरि देव है। उपनिषदों में भक्तिदर्शन उभरा है और जब विष्णु आये तब वैष्णव धर्म को विकास मिला। प्रायः महाभारत के शांतिपर्व के नारायणीय उपाख्यान में श्वेतद्वीप का उल्लेख किया गया है जहाँ वैष्णव भक्ति का विवेचन है। विष्णु – नारायण – वासुदेव का मिलन वैष्णव धर्म को नई गति देता है, जिसे भागवत धर्म भी कहा गया। 'भगवद्गीता में भक्ति को योग का धरातल दिया गया, पर उसे उच्चतर मूल्यों से सम्बद्ध किया गया : द्वेषरहित, निःस्वार्थ, सर्वप्रेमी, दयालु, अहंकार मुक्त, निर्वेदी, क्षमाशील, सन्तुष्ट, जितेन्द्रिय, संयमी, समभावी आदि। पुराण युग में गाथा–संसार बना, देवत्व के मानुष रूप की प्रक्रिया में गति आयी। लीला–जगत् निर्मित हुआ। ईसवीं की आरंभिक शताब्दियों में भक्ति का प्रस्थान ग्रंथ 'भागवत्'

आया। इस प्रकार भक्ति का प्रस्थान भागवत् है जिसे प्रस्थानत्रयी ब्रह्मसूत्र, उपनिषद, गीता के क्रम में चतुर्थ प्रस्थान कहा गया। इसके मौखिक रूप ने छठी – नवीं शताब्दी के बीच निश्चित आकार लिया और यही समय आलवार संतों का है, जिन से भक्ति साहित्य का आरंभ हुआ। द्रविड में जन्म, कर्नाटक में विकास, महाराष्ट्र में आदर, गुजरात में वार्धक्य और अन्त में वृन्दावन में नवयौवन की प्राप्ति हुई भक्ति स्वयं बताती है। भक्ति चिंतन की लंबी परंपरा है। हिंदी भक्ति काव्य का मुख्य वृत्त प्रायः चौदहवीं–सत्रहवीं शताब्दी के मध्य स्वीकार किया गया है, जो राजनीतिक दृष्टि से सल्तनत काल से आरंभ होकर शाहजहाँ के समय तक जाता है। लेकिन भक्ति चिंतन का आरंभ पहले हो चुका था।

आलवार छठी–नवीं शताब्दी के मध्य सक्रिय थे और भक्ति प्रवाह में उनका प्रदेय यह है कि संस्कृत भाषा का वर्चस्व तोडते हुए उन्होंने तमिल भाषा में सामान्य जन को सीधे ही संबोधित किया। वहाँ पांडित्य के स्थान पर अनुभूति का आग्रह है और भक्त – भगवान के बीच का सीधा संवाद है। आलवार प्रायः सामान्य वर्ग से आये थे और अपनी भावमयता से उसके पद वर्षों तक मौखिक परंपरा में जनता में प्रचलित रहें। सभी वर्णों के साथ अन्त्यज तथा महिमा आण्डाल तक इन में थी और समाज पर इन का व्यापक प्रभाव रहा है। आलवारों के गीत जो पाशुरों के नाम से प्रसिद्ध है, 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' में संकलित है। श्रुति और स्मृति पर आधृत भक्ति के नाना संप्रदायों से मध्य युगीन वैष्णव भक्ति साहित्य भी अधिक प्रभावित हुआ है। इन संप्रदायों में रामानुजाचार्य का 'श्रीसंपद्राय', विष्णु गोस्वामी का 'रुद्र संप्रदाय', निम्बार्काचार्य का 'निम्बार्क संप्रदाय', मध्वाचार्य का 'द्वैतवादी या माध्य संप्रदाय', रामानंदजी का 'विशिष्टाद्वैतवादी रामानंद संप्रदाय', वल्लभाचार्य का 'पुष्टि संप्रदाय', चैतन्य महाप्रभु का 'गौडीय अथवा चैतन्य संप्रदाय', हितहरिवंश का 'राधा–वल्लभी संप्रदाय' और 'हरिदासी संप्रदाय' आदि प्रमुख हैं।

तमिल के आलवार भक्तों के समान हिंदी के अष्टछाप और अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने भी कृष्ण भक्ति की रसधारा को प्रवाहित किया है। भक्ति के क्षेत्र में अग्रणी इन कवियों में अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, कुंभनदास, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, के अलावा हितहरिवंश रसखान एवं संप्रदाय निरपेक्ष कवयित्री मीराबाई जैसे अन्य कविगण आते हैं

हिंदी के कृष्ण भक्त काव्य और आलवारों के साहित्य में भक्तिशास्त्रों में वर्णित शास्त्रबद्ध विनय भक्ति की सभी भूमिकाओं का समावेश दिखाई देता है। आलवारों के साहित्य में विनय भक्ति की सभी भूमिकाएँ जैसी दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोरथ, विचरण आदि सभी उपलब्ध है।

दीनता : अर्थात् अपने को अतिहीन कहना और असफलता का सारा दोष अपने सिर पर लेना। भक्तिशास्त्र के ग्रंथों में इसे "नैच्यानुसंधान" की संज्ञा दी गयी हैं। मानमर्षता : अर्थात् अहंभावना को त्यागकर, निरभिमान होकर इष्टदेव की शरण में जाना।

भयदर्शन में जीव को भय दिखलाकर इष्टदेव से अनुरक्त होने का विवश करने (या) मन को संबोधित करके जीवन की अशाश्वतता को समझाने की बात होती है।

भर्त्सना में अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करके आत्मनिंदा की जाती है। इसे भक्ति साहित्य में भक्ति साधनों के अंतर्गत आनेवाला साधन "अधमभावों का उदात्तीकरण या दैन्य भाव" नाम से अभिहित किया जाता हैं।

आश्वासन में अपने आराध्य की प्रार्थना करते हुए उस पर दृढ़ विश्वास रखा जाता है।

मनोरथ में इष्टदेव से अभिलाषओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना की जाती है।

विचरण में दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन करके मन को सांसारिक मोह से विरक्त करके भक्तिमार्ग की ओर बढ़ने का निर्णय लिया जाता है।।

वैष्णव संप्रदाय में भक्त को भगवान की शरण में जाने के लिए 6 नियमों का पालन करना आवश्यक माना गया है। हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों के भक्ति साहित्य में इनका पालन पूर्ण रूप से हुआ है। 1. अनुकूलस्य संकल्पः 2. प्रतिकूलस्य वर्जनम्, 3. रक्षिष्यतीति विश्वासों, 4. गोप्तृत्व वर्णनम (गोप्ता या रक्षक का गुणगान), 5. आत्म निक्षेप तन मन और कर्म सब कुछ ब्रह्म को समर्पित करना, 6. कार्पण्यं षड्विधाशरणागतिः दीनता प्रकट करते हुए परमात्मा के सामने अपने पापों को स्वीकार करके निवारण के लिए भगवान से प्रार्थना करना।

प्रेम की पराकाष्ठा में उद्भुत रहस्यवाद, अतिश्रृंगारिकता से पूर्ण विरहवर्णन शंकराचार्य का अद्वैतवाद, वैष्णवों की दास्यभावना आदि सभी भक्तितत्व हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल आलवारों की रचनाओं में समान रूप से मिलते हैं। पेरियालवार और सूरदास वात्सल्य वर्णन में समानताएँ ज्यादा हैं। पौयगै आलवार, नम्मालवार की भक्ति सूरदास और मीराबाई की भक्ति में समानताएँ ज्यादा हैं। रसखान एवं कुलशेखर आलवार की भक्ति भावना, मीरा बाई और आण्डाल की भक्ति भावना में समानताएँ ज्यादा है। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भक्तिशास्त्र के ग्रंथों में वर्णित भक्ति के स्वरूप, भक्ति की साधनाएँ यथेष्ट रूप से दोनों के साहित्यों में मिलती हैं।

हिंदी के कृष्ण भक्ति साहित्य में वर्णित भक्ति पद्धतियों पर तमिल आलवारों की प्रेमाभक्ति का स्पष्ट प्रभाव पड़ा हुआ है। आलवार साहित्य का प्रभाव हिंदी पूरे भक्ति साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक हैं क्योंकि दक्षिण में उद्भुत एवं विकसित वैष्णव भक्ति उत्तर में फैल गयी थी। हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष के रूप में साबित कर सकते हैं कि आलवार संतों की भक्ति में विनय से पूर्ण दास्य भक्ति, लौकिक प्रेम बंधन से जुड़ी हुई प्रेममाधुर्य भक्ति, वात्सल्यभाव से पूर्ण वात्सल्य भक्ति यथेष्ट रूप से चित्रित है जिनके आधार पर शायद भारतीय भक्ति शास्त्रों का विकास हुआ होगा।

कृष्ण भक्ति भारत की प्राचीनतम उपलब्धि है। हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य में चित्रित भक्ति के स्वरूप और तमिल काव्य नालयिर दिव्य प्रबन्धम में चित्रित भक्ति के स्वरूप में साम्य ज्यादातर दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों साहित्य में भक्तिशास्त्रों में वर्णित भक्ति के स्वरूप यथेष्ट रूप से विद्यमान है। दोनों ने भक्ति को शांत रूपा, निष्काम रूपा, परमानंद रूपा अमृत स्वरूपा के रूप में स्वीकार किया है।

भक्ति को परमानंद स्वरूपा सिद्ध करते हुए नंददास ने उसका आस्वादन करते हुए कहा कि वह आनंद दायिनी है। उस आनंद को जिन्होंने आस्वादन किया है वह संसार सागर को शीघ्र पार करता है। ठीक इसी प्रकार कुलशेखर आलवार ने भी अपनी रचना इरण्डाम तिरुमोऴि में सिद्ध किया कि भक्ति परमानंद स्वरूपा है। सूरदास एवं नम्मालवार ने सिद्ध किया कि वह अमृत स्वरूपा है। भक्ति को अमृत स्वरूपा इसलिए कहा गया क्योंकि भक्ति को प्राप्त लोग इस लोक में रहकर भी पारलौकिक आनंद को पाते हैं। नारद भक्ति सूत्र दो में वर्णित भक्ति सूत्र का पूर्णरूपेण निरूपण सूरदास एवं नम्मालवार के काव्य में हुआ है।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों के लिए भक्ति अमृत जैसी है। भगवान के प्रति रखी गयी असीम, अटूट, अनन्य, अव्यक्त भक्ति में शांति है, प्रेम है, अमृत जैसी मधुरता है, मादकता देनेवाला तन्मयत्व है। जो कृष्ण भक्ति को पूर्णरूप से प्राप्त करता है, वह निश्चय एवं शांत होकर कृष्ण–प्रेम में विह्वल हो जाता है, भक्ति की परवशता में भगवान के गुणगान रूपी अमृत का सदा सेवन करता रहता है। कृष्ण भक्ति जन सुलभ होने पर भी उसकी पहचान सभी के लिए असाध्य है। इस संदर्भ में भक्त आलवार तिरुमऴिचै आलवार का कहना है सत्यवादी ही कृष्ण–भक्ति को पहचान सकता है। कृष्णभक्ति आस्वाद परक है, अनुभूति परक है और अवर्णनीय है।

हिंदी कृष्ण काव्य एवं आलवार के पाशुरों में वर्णित भक्ति में नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित एकादश भक्ति के साथ साथ गुणों के आधार पर रखनेवाली भक्ति (तामसी, राजसी, सात्विकी) के साथ–साथ भगवद्गीता में भगवान कृष्ण द्वारा वर्णित आर्त भक्ति, ज्ञानी भक्ति जिज्ञासु भक्ति, अथार्थी भक्ति को भी हम देख सकते हैं। नारद भक्ति सूत्रों में पराभक्ति के विभिन्न प्रकार की भक्ति पद्धतियों का वर्णन मिलता है। उन सब का समावेश इन दोनों के साहित्य में हुआ है।

भगवान के गुणगान एवं माहात्य को गाने में भक्त आसक्त बनकर रहता है। अपार रूप सौंदर्य के दर्शन के लिए तड़पता है। उस रूप सौंदर्य के दिव्य दर्शन पाकर अपना सुधबुध खो बैठता है। उस अलौकिक, अत्यंत मनोहारी रूपी भगवान की पूजा करने की आकांक्षा रखता है। उनके दिव्यनामों का उच्चारण एवं स्मरण करते हुए उनका शरण में जाता है। भक्त सदा भगवान के सामीप्य चाहता है। एक पल के लिए भी वह भगवान से बिछुडना नहीं चाहता है। एक सखा की तरह अपनी सख्यासक्ति को प्रकट करता है। भगवान को अपना लाड़ला मानकर उनकी बाल लीलाओं का वर्णन करता है। एक विरहिणी, नायिका बनकर प्रभु के लिए तड़पता रहता है। इस प्रकार की भक्ति भक्तिशास्त्रों में कांतासक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी पूर्ण भक्ति के कारण वह अपना सब कुछ उस अलौकिक भगवान के दिव्य चरणों में अर्पित करके आत्म निवेदन करता है। भक्ति की तीव्र उत्कण्ठा के कारण वह उन्माद की तरह तन्मयावस्था में भगवद् मिलन के लिए तड़पता रहता है। भगवान से रखी गयी तीव्र भक्ति के कारण, उसका वियोग भक्त के लिए असहनीय बन जाता है। वह भगवान से मिले बिना न जी सकता हैं। ऊपर लिखित एकादश भक्ति की अवस्थाओं का वर्णन हिंदी के कृष्ण भक्त कवि एवं आलवार साहित्य में मौजूद है। जिस प्रकार सूरदास, मीराबाई कृष्ण के अनुपम सौंदर्य पर बलि बलि जाते हैं तमिल आलवारों में से प्रसिद्ध पेरियालवार, नम्मालवार अपने आराध्य कृष्ण के रूप सौंदर्य पर मुग्ध हो जाते हैं।

भक्त भगवान को प्राप्त करने के लिए जो ज्ञान से प्रयास करता है, कार्यों का आचरण करता है वहीं भक्ति के साधन कहलाता है। साधना को प्राप्त करने के बाद भक्त साधक कहलाता है। भक्ति के साधन के अंतर्गत निम्नलिखित विषय भक्तिशास्त्र के प्रमुख ग्रंथों में बताये गये हैं। भक्ति के साधन हैं:

1. भगवान के गुणगान अत्यंत श्रद्धा के साथ गाना।
2. सांसारिक सुखों का त्याग करके इन्द्रिय निग्रही बनना।
3. अपनी दिनचर्या करते हुए परमात्मा का स्मरण एवं कीर्तन करना।
4. सत्संगति।
5. दुस्सांगत्य का त्याग।
6. सदा भगवान का नाम रटना।
7. गुरु महिमा गाना।

हिंदी के कृष्णभक्ति साहित्य एवं तमिल आलवारों के साहित्य में भक्ति की प्रत्येक साधन की परिपुष्टि हुई है। हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रमुख कवि सूरदास ने निरंतन भजन के महत्व को स्वीकार किया है। और अपने मन को सत्संगति में जाने को कहा है। विषय भोगों को त्यागने को कहा है। तमिल आलवार के पाशुरों में, निरन्तर भजन के महत्व का वर्णन मिलता है। आलवारों में प्रसिद्ध नम्मालवार का कहना है "विष्णु भजन के बिना बिताया जानेवाला जन्म व्यर्थ है। भक्ति की सभी प्रकार के साधनों पर दोनों साहित्यकारों ने बल दिया है और सिद्ध किया है कि भक्ति की प्राप्ति के लिए इन साधनों को आवश्यक बताया है। इन दोनों की भक्ति में प्रेमाभक्ति यथेष्ट रूप से विराजमान है। कुलशेखर आलवार अपनी रचना "पेरुमाल तिरुमोळि" में प्रेमाभक्ति में डूबकर अपने को पागल घोषित करते हैं।

हिंदी कृष्ण कवियों के काव्य एवं आलवारों के पाशुरों में चित्रित भक्ति का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला जा सकता हैं

⇒1. दोनों साहित्यकारों ने लौकिक रिश्तों से भी बढ़कर अपने आराध्य श्रीकृष्ण को प्राणाधिक प्रिय माना है। हिंदी कृष्ण कवि और आलवार भक्त दोनों कृष्ण परप्रेमी है और कृष्ण प्रेम में पागल है।

⇒2. रसखान एवं कुलशेखर आलवार की अनन्य भक्ति की यह विशिष्टता रही कि दोनों द्वारा प्रयुक्त की गई उपमाएँ भी एक हैं। दोनों की भक्ति एक ही प्रकार की है। दोनों की चाह भी एक है, यह उत्तर–दक्षिण के भक्तें की आत्माओं का अनुपम संगम हैं। रसखान भगवान कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि अगर उसको मनुष्य जन्म फिर लेना पड़ता है तो ब्रज में रहनेवाले ग्वालों के घर में जन्म लें। धेनु का जन्म लेना पड़ता है तो नंद के घर की हो अगर पत्थर होकर रहना पड़े तो गोवर्धनगिरि के पत्थर बनकर रहें। ठीक इसी प्रकार भक्त कुलशेखर आलवार इसी प्रकार अपनी चाह प्रकट करते हैं कि अगर उसे पत्थर बनना हो तो तिरुमल तिरुपति पहाड की सीढ़ियाँ बन जाए जिस पर भक्तजनों की पाद धूलि गिरती रहती है।

⇒3. हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं आलवारों की रचनाओं में एक अनुपम भक्ति रस बहता भक्तिशास्त्रों में वर्णित भक्ति की पद्धतियाँ एवं साधन, नारद भक्ति सूत्रों में वर्णित 'एकादश भक्ति', 'प्रेमा भक्ति का निरूपण, शांडिल्य भक्ति सूत्रों में वर्णित 'पराभक्ति', भागवत में वर्णित 'नवधाभक्ति' आदि दोनों के साहित्य में पूर्ण रूप विद्यमान है।

⇒4. तमिल आलवारों द्वारा कल्पित नायिका का नाम (जो संघसाहित्य में चित्रित नायिका भी है) 'नप्पिन्नै' (राधा) है। आलवारों ने 'नप्पिन्नै' के माध्यम से विरह विदग्धा नायिका के हाव–भाव चेष्टाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है। विशेषकर आण्डाल एवं पेरियालवार ने 'नप्पिन्नै'को विशेष रूप से चित्रित किया।

⇒5. हिंदी कृष्णकाव्य और तमिल साहित्य के आलवारों के पाशुरों को भक्ति शास्त्र के ग्रंथों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके दिखाया गया है कि दोनों की भक्ति में कई समानताएँ है। दोनों के साहित्य में वर्णित भक्ति को भक्तिशास्त्र के संदर्भ में देखा गया है।

⇒6. नम्मालवार द्वारा रचित ग्रंथों की तुलना वेदों से की गयी है, उनकी रचनाएँ तिरुवृत्तम् (ऋग्वेदसार), तिरुवासिरियम (यजुर्वेदसार), पेरिय तिरुवन्दादि (अथर्ववेदसार), तिरुवायमोलि (सामवेदसार) आदि नामों से प्रसिद्ध है।

⇒7. प्रत्येक आलवार को विष्णु का प्रत्येक अंश माना गया है 1. पोयिगै आलवार को विष्णु के शंख 'पाँचजन्य', 2. भूदत्त आलवार को विष्णु की गदा, 3. पेयालवार को विष्णु के खड्ग 'नादंक', 4. तिरुमलिचै आलवार को विष्णु के सुदर्शन चक्र, 5. नम्मालवार को विष्णु के विश्वक्सेन अवतार, 6. मधुर कवि आलवार को विष्णु के गरुड़ वाहन, 7. कुलशेखर आलवार को विष्णु के कौस्तुभमणि, 8. पेरियालवार को भी गरुड़ अवतार, 9. आण्डाल को साक्षात लक्ष्मी का अवतार, 10. तोंडरडिप्पोडि आलवार को विष्णु की माला 'वनमाली' का अंश, 11. तिरुप्पाणालवार को विष्णु के 'श्रीवत्स' का अंश, 12. तिरुमंगै आलवार को विष्णु के सारंग नामक धनुष्य का अवतार आदि माना गया है। हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य एवं आलवारों के काव्य में चित्रित भक्ति की समानताएँ–असमानताओं की चर्चा की गयी है।

⇒8. मीराबाई एवं आण्डाल की प्रेमामाधुर्य भक्ति में समानाएँ बहुत मिलती हैं।

⇒9. विरह वर्णन में आलवार हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों से भी एक कदम आगे है। उसमें परमात्मा से मिलने की तीव्र विरहानुभूति में हिंदी के निर्गुण सन्तों द्वारा वर्णित विरह–वर्णन से साम्य ज्यादा दीखते है।

⇒10. हिंदी के कृष्ण कवियों ने विशेष रूप से 'पुष्टि–संप्रदाय' से दीक्षा पाकर सिद्धांतों का पालन किया जब कि आलवारों ने किसी विशेष संप्रदाय से दीक्षा नहीं ली। दोनों के कृष्ण वर्णन का आधार श्रीमद्भागवत् ही है।

⇒11 आलवारों ने विरह वर्णन को नायिका के माध्यम से साथ–साथ, नायिका की माँ के द्वारा प्रस्तुत किया है। आलवारों की नायिका की माँ कृष्ण प्रेम में पागल हुई अपनी बेटी की विरह दशाएँ संवेदना से प्रस्तुत करती है। साहित्य में यह एक नई प्रवृत्ति है।

⇒12. सूरदास एवं पेरियालवार की वात्सल्यभक्ति की तुलना करके, पेरियालवार के वात्सल्यवर्णन के अंतर्गत उनकी नयी शैली 'पिल्लै तमिल' शैली का वर्णन देखने को मिलता है।

⇒13. पल्लाण्डु' के द्वारा पेरियालवार अपने आराध्य को कई करोड, सहस्र, शत वर्ष जीने का आशीर्वाद देते है। इसके पीछे कवि का सोद्देश्य यही है

कि भगवान की महिमा गान सदा इस जगत में लोग करते रहे। यह भी साहित्य की एक नई प्रवृत्ति है।

⇒14. वात्सल्य वर्णन में सारे हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों ने यशोदा के माध्यम से किया है जब कि आलवारों ने यशोदा के साथ–साथ देवकी के माध्यम से भी किया है। यह आलवार पाशुरों की अपनी विशेषता है। देवकी अपने को कोसती है और यशोदा को बड़भागी समझती है। आलवारों ने देवकी द्वारा चित्रित वात्सल्य वर्णन में करुणा एवं शांत रसों का समावेश किया है।

⇒15. प्रत्येक आलवार के पाशुरों में नारद भक्ति सूत्र में चित्रित भावभक्ति, प्रेमाभक्ति, भक्ति के साधन, शांडिल्य भक्ति सूत्र में वर्णित पराभक्ति आदि यथेष्ट रूप से देख सकते है।

⇒16. प्रत्येक आलवार के पाशुरों में भगवद्भक्ति के पीछे भी एक सोद्धेश्य रहा है जो भक्तजनों के लिए अनुष्ठान योग्य है। उदः 'आण्डाल' की रचना तिरुप्पावै, जो जागरण गीत है। तिरुप्पावै का उद्धेश्य यही है कि 'सांसारिक माया रूपी निद्रा से पीड़ित जीव को कृष्ण प्रेम रूपी सुमधुर अमृत गान से जगाना।

⇒17. आलवारों के प्रबन्धम् में हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य की तरह सख्य भक्ति को पूर्ण रूप से नहीं देख सकते हैं, इसका एकमात्र कारण यही है कि सारे आलवारों ने अपने को भगवान का दास मानने के कारण दास्य भक्ति से ही उनका साहित्य भर गया है।

⇒18. तिरुमंगै आलवार के विरह–वर्णन हिंदी के सूफी कवि जायसी के अति नग्न घोर श्रृंगारिकता से पूर्ण विरह वर्णन से साम्य रखता है।

⇒19. भक्त नम्मालवार, कुलशेखर आलवार, तोंडरडिप्पोड़ि आलवार की रचनाओं में तीव्र भाव भक्ति रस की धारा बहती है उसमें नयनों से आनंदाश्रु बहाने की क्षमता है।

⇒20. भक्ति के विविध पक्ष, जो भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों में उल्लिखित हैं उन सबका समावेश हिंदी के कृष्ण भक्ति साहित्य एवं तमिल के आलवार के पाशुरों में यथेष्ट रूप से हुआ है।

⇒21. सूर के विनय एवं तोंडरडिप्पोडि आलवार की रचना 'तिरुमालै' में वर्णित दैन्यभक्ति में समानताएँ ज्यादा मिलती है।

⇒22. भक्ति के साधनों में महत्वपूर्ण है 1. सांसारिक मोह एवं विषयासक्ति का त्याग, 2. सत्सांगत्य, 3. दुस्संग का त्याग, 4. भगवान का निरन्तर भजन, 5. गुरु महिमा गायन, 6. कर्मों का पूर्ण समर्पण आदि है। इन सब का समावेश दोनों के साहित्य में हुआ है।

⇒23. भक्तशिखामणि नम्मालवार अपने 'तिरुवायमोलि' में श्रीकृष्ण की महिमाएँ एक दूसरे से कहकर, कूद–कूदकर उसकी महिमाएँ गाने को बताते है। ठीक उसी प्रकार का वर्णन भक्ति शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ नारद एवं शाडिल्य भक्ति सूत्रों में, श्रीमद्भागवत् भगवत्गीता में मिलते हैं।

⇒24. हिंदी के सारे कृष्ण भक्त कवि गुरु महिमाओं को स्वीकार करके उन्हें गान किया है। तमिल के आलवारों ने विशेष रूप से किसी से दीक्षा नहीं ली हैं।

⇒25. बारह आलवारों में से मधुर कवि आलवार को छोड़कर किसी के पाशुरों में 'गुरुमहिमा' का उल्लेख तक नहीं मिलता। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को ही अपने माँ–बात, सखा, गुरु बंधु मानकर उनसे नाता जोड लिया। खुद उसे अपने परम गुरु के रूप में स्वीकारते हैं।

⇒26. आलवारों में श्रीमधुरकवि आलवार जिन्होंने नम्मालवार को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया है, उन पर ही एक रचना प्रस्तुत की है जिसका नाम है 'कण्णिनुन् चिरुत्तांबु' यह गुरुभक्ति एवं गुरुमहिमाओं से संबंधित सर्वोत्कृष्ट रचना है।

⇒27. इन दोनों भाषा के साहित्यकारों ने भक्ति की तन्मयता को स्वानुभव के द्वारा प्राप्त अनुभूतियों को एवं अपने हृदय के भावोद्गारों प्रकट किया है। दोनों अच्छे गायक थे। इसी वजह से हिंदी कृष्ण भक्त कवि एवं तमिल के आलवार द्वारा रचित साहित्य पूरा गीति साहित्य है।

⇒28. भक्ति के स्वरूप को सोदाहरण दोनों साहित्य में दिखाया गया है। हिंदी के सूरदास, परमानंददास, मीराबाई और तमिल के सभी आलवारों की रचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करके यह सिद्ध कराया गया है कि भक्ति निष्काम रूपा है भक्ति प्रेम स्वरूपा है, अमृत स्वरूपा है, शांत रूपा है।

दोनों के साहित्य में भक्ति को सर्वोपरि महत्व देते हुए ईश्वर–नाम–महिमा, स्तुति, ईश्वर शरणागति अथवा गुरुमहिमा, सत्संग और वैराग्य आदि का उल्लेख बराबर किया गया है। यद्यपि दोनों भाषाओं के कृष्ण भक्त कवियों के जीवन काल में पर्याप्त अंतर है तथापि दोनों भाषाओं के पदों में अद्भुत साम्य है। आलवारों का 'दिव्य प्रबंधम्' तमिल भक्ति आंदोलन का ही नहीं भारत के सम्पूर्ण भक्ति साहित्य का स्रोत ग्रंथ है। वास्तव में प्रेम लक्षणा भक्ति के संदर्भ में हिंदी और तमिल के कृष्ण भक्ति काव्य अमर हो गये है। इस कसौटी पर भक्ति शास्त्र के संदर्भ में दोनों को एक साथ देखा गया है।

//श्री कृष्णार्पणमस्तु //

संदर्भ ग्रंथ सूची

पुस्तक सूची (हिंदी)

	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक
1.	हिंदी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका	रामनरेश शर्मा	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी प्रथम संस्मरण
2.	भक्ति का विकास	डॉ.मुंशीराम शर्मा	
3.	वैष्णव धर्म	पशुराम चतुर्वेदी	
4.	भक्ति सिद्धांत	श्रीदेवी	मंजु प्रकाशन,405 चौ पटियाँ रोड लखनऊ
5.	ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.रामकृष्ण आचार्य	विनोद पुस्तक मंदिर, अस्पताल रोड, आगरा
6.	तमिऴ वैष्णव कवि 'आऴवार'	डॉ.रवीन्द्रकुमार सेठ	साहित्य शोध संस्थान 8ए/141, करोऴबाग नई दिल्ली – 110 005
7.	आऴवार भक्तों का तमिल प्रबंधम्	डॉ.मलिक मोहम्मद	विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
8.	श्री श्रीविष्णु पुराण भाषा (सचित्र) (मूल श्लोक, हिंदी अनुवाद सहित)	आचार्य श्यामसुंदर सुमन	
9.	भागवत दर्शन	डॉ.हरिबंशलाल शर्मा	भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़
10.	हिंदी भक्ति रसामृत सिन्धु	डॉ.नगेन्द्र	हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
11.	हिंदी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.के.रामनाथन	हिंदी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्व–विद्यालय, तिरुपति

12.	हिंदी सगुण भक्ति काव्य के दार्शनिक स्रोत	श्रीरामचंद्र देव	
13.	मीराबाई एवं तरिगोंड वेंगमांबा की रचनाओं में श्रीकृष्ण	एम.फिल. शोध प्रबंध	
14.	भक्तिशास्त्र के आधार पर रामचरित मानस का विश्लेषण	श्री अमिताभन का का शोध प्रबंध (कोच्चिन विश्व–विद्यालय)	
15.	अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमा भक्ति	डॉ.देवीशंकर अवस्थी	
16.	मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य में मधुरभाव की उपासना	डॉ.पूर्णमासी राम	राजेश्वर प्रसाद मलहोत्रा अभिनव भारती प्रकाशन इलाहाबाद
17.	हिंदी काव्य में कृष्ण चरित–भावात्मक स्वरूप एवं विकास	डॉ.तपेश्वरनाथ	हिंदी प्रचारक संस्थान वाराणसी
18.	भक्ति काव्य के स्रोत	डॉ.गिरिधर प्रसाद शर्मा	
19.	हिंदी काव्य में भक्ति का स्वरूप	डॉ.नित्यानंद शर्मा	
20.	गीत गोविन्दम	संस्कृत	
21.	अष्टछाप और वल्लभ–संप्रदाय	डॉ.दीनदयाल गुप्त	
22.	प्राचीन कवियों की काव्य कला	प्रेमनारायण टंडन	
23.	यजुर्वेद संहिता		
24.	विष्णु सहस्रनाम		
25.	श्री वैष्णव संहिता (भाग – I & II)	श्रीकृष्ण प्रेमी महाप्रभु	अखिल भारत साधु संगम, मुंबई प्रकाशन
26.	नारद भक्ति सूत्र	स्वामी त्यागसानंदा	श्रीरामकृष्ण मठ

27.	मीरा काव्य का गीति–काव्यात्मक विवेचन	डॉ.माधुरीनाथ	
28.	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (द्वितीय भाग)	डॉ.दीनदयाल गुप्त	हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
29.	आलवार भक्तों का तमिल प्रबंधम् और हिंदी कृष्ण काव्य	डॉ.मलिक महोम्मद	विनोद पुस्तक मंदिर आस्पताल रोड, आगरा
30.	मीराबाई पदावली	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	रीगलबुक डिपो, दिल्ली
31.	सूरसागर के सौ रत्न–प्रभुदयाल मीतल	डॉ.नगेन्द्र	साहित्य संस्थान, मथुरा
32.	सूर पंचरत्न	स्व.लाला भगवान–दीन तथा पं.मोहन वल्लभ पंत	रामनारायण लाल अरुणकुमार, इलाहाबाद
33.	आधुनिक कृष्णकाव्य में पौराणिक आख्यान	डॉ.रामशरण सिंह	
34.	मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति परंपरा और लोक संस्कृति	डॉ.रामेश्वरदयाल	
35.	कृष्ण भक्ति साहित्य में रीतिकाव्य परंपरा	डॉ.राजकुमारी मित्तल	
36.	कृष्णलीला साहित्य	डॉ.लक्ष्मीनारायण नन्दवाना	
37.	कृष्णभक्त मुसलमान कवि	डॉ.नूरजहाँ बेगम	जवाहर पुस्तकालय,मथुरा
38.	कृष्ण कथा कोश	डॉ.रामशरण गौड़	
39.	उत्तर मध्यकालीन हिंदी कृष्ण काव्य परंपरा में गोविंदसिंह कृत कृष्णावतार	डॉ.शकुन्तला गक्खड	
40.	कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत	डॉ.श्यामसुंदर लाल दीक्षित	
41.	हिंदी मराठी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.र.श.केलकर	
42.	108 उपनिषद	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य	संपादक : वेदमूर्ति तपोनिष्ठ, प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, उत्तर प्रदेश

43.	गीत गूढार्थ दीपिका का तात्विक विमर्श	डॉ.परमात्मासिंह	अक्षयवट प्रकाशन, 26 बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद – 2
44.	हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास	डॉ.धीरेन्द्र वर्मा	
45.	धर्म संप्रदाय और मीरा का भक्तिभाव	डॉ.लाजवन्ती भटनागर	
46.	मीरा काव्य का गीति–काव्यात्मक विवेचन	डॉ.माधुरीनाथ	सत्यम् प्रकाशन, 6–ए तुलारामबाग, इलाहाबाद
47.	नारद भक्ति सूत्र	स्वामि त्याग	श्रीरामकृष्ण मठ
48.	शांडिल्य भक्ति सूत्र	स्वामि हरीष आनंद	
49.	हिंदी भक्ति रसामृत सिंधु	प्र.संपादक नगेन्द्र, सं. डॉ.विजयेन्द्र स्नातक	दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
50.	ऋग्वेद	डॉ.ए.बी.रघुनाथाचार्य	संस्कृत विभाग, श्रीवेंकटेश्वर विश्व–विद्यालय
51.	तमिल इलक्किय वरलारु	डॉ.मु. वरदराजन	
52.	तमिल इलक्कियमुम् वरलारुम्	डॉ.वी.यु.स्वामिनाथ अय्यर	
53.	तमिल साहित्य : एक झाँकी	डॉ.शेषन	
54.	भगवद्गीता (तेलुगु) मूल संस्कृत		
55.	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ.रामकुमार वर्मा	
56.	हिंदी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	
57.	भारतीय कृष्णकाव्य और सूरसागर	डॉ.नगेन्द्र	
58.	हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डॉ.गणपति चंद्रगुप्त	
59.	हिंदी गीतिकाव्य	डॉ.रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी	
60.	भक्ति दर्शन	डॉ.वेदप्रकाश शास्त्री	

पुस्तक सूची (तमिल)

	पुस्तक का नाम	लेखक
1.	भक्तियोग विलक्कम्	श्रीमद् स्वामी चिद्भावनंद
2.	तमिल इलक्किय वरलारु	डॉ.मु.वरदराजन
3.	तमिल इलक्कियमुम् वरलारुम	डॉ.वी.यु.स्वामिनाथ अय्यर
4.	तिरुप्पावै : नाच्चियार तिरुमोलि	एन.रामस्वामी अय्यंगार
5.	आलऋवारकल वरलरू	गोविंदराज मुदलियार
6.	तिरुच्चन्दवृत्तम, अमलणादिपिरान कण्णिनुण् चिरुत्तंबु	
7.	श्री तिरुमंगैयालवार अरुलिय पेरिय तिरुमोलि	
8.	उपनिषद सार : छान्दोग्य बुहदारध्यकम ब्रह्मसूत्र	
9.	नालायिर दिव्य प्रबंधम्	के.वरदाचार्य स्वामी
10.	नालायिर दिव्य प्रबंधम् (तृतीय, चतुर्थ भाग)	के.वरदाचार्य स्वामी
11.	तमिल इलक्कियमुम् वरलारुम्	डॉ.बी.यु.स्वामिनाथ अय्यर
12.	नालायिर दिव्य प्रबंधम् (मूलमुम् उरैयुम)	डॉ.जयद्रक्षकन्

संदर्भ ग्रंथ (अंग्रेजी)

1. Path way to God in Hindi Literature - R.D.Ranade
2. Narada Bhakthi Sotras - Sri Ramakrishna Matt Publication
3. Mysticism in Maharastra - R.D.Ranada
4. Sandilya Bhakthi Sutras with Swapneswara Bhasya - Swami Harsha nanda
5. The Hindu Speaks on Religion - By N.Ravi, The Hindu Publication.